[1995] 1 उम॰ नि॰ प॰ 191

जे॰ पी॰ उन्नीकृष्णन्

बनाम

आन्ध्र प्रदेश राज्य

4 फरवरी, 1993

मुख्य न्यायमूर्ति ललित मोहन शर्मा, न्यायमूर्ति एस॰ रत्नवेल पाण्डियन, न्यायमूर्ति एस॰ मोहन, न्यायमूर्ति बी॰ पी॰ जीवन रेड्डी और न्यायमूर्ति एस॰ पी॰ भरुचा

संविधान, 1950—भाग 3—मूल अधिकार—मूल अधिकार के रूप में अधिकार की मान्यता—यह आवश्यक नहीं है कि प्रश्नगत अधिकार को भाग 3 में मूल अधिकार के रूप में अभिव्यक्त रूप से वर्णित किया जाए — भाग 3 में वर्णित अधिकारों में नए अधिकार पढ़े जा सकते हैं और उनका उक्त अधिकारों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

संविधान, 1950—उद्देशिका—भाग 3 और 4—मूल अधिकार और नीति के निदेशक तत्व—वे एक दूसरे के पूरक हैं—मूल अधिकार—उद्देशिका और नीति के निदेशक तत्वों को ध्यान में रखते हुए, निर्वचन किया जाना चाहिए।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—जीवन (प्राण) का अधिकार—शिक्षा का अधिकार—अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन (प्राण) के अधिकार में निहित है और उससे उद्भूत होता है।

शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार—उक्त अधिकार मूल अधिकार है, जो जीवन के अधिकार से उद्भूत होता है।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता—इसके अन्तर्गत शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार आता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21, 41, 45 और 46—शिक्षा का अधिकार—अन्तर्वस्तुएं और प्राचल (पैरामीटर)—इनका अवधारण अनुच्छेद 41, 45 और 46 के उपबंधों के प्रकाश में किया जाएगा—इस प्रकार अवधारित किए जाने पर इससे प्रत्येक बालक/नागरिक को 14 वर्ष की आयु तक निःशुल्क शिक्षा अभिप्रेत हैं—14 वर्ष की आयु के पश्चात् उक्त अधिकार राज्य की आर्थिक क्षमता की सीमाओं द्वारा परिसीमित है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21, 14 और 15—प्राइवेट शिक्षा-संस्था—सरकारी सहायता का अनुदान—अन्य बातों के साथ-साथ, ये शर्तें कि संस्था को प्रवेश के मामले में केवल योग्यता के नियम का ही अनुसरण करना होगा और वह उस फीस से अधिक फीस प्रभारित नहीं करेगी, जो सरकारी संस्थाओं में प्रभारित की जाती है—इन शर्तों को सहायता अनुदान की शर्तों का रूप दिया जाएगा—सरकार को इस संबंध में निदेश जारी—अतः प्राइवेट सहायता प्राप्त संस्था सरकारी संस्था द्वारा प्रभारित फीस से अधिक फीस प्रभारित नहीं कर सकती है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 19 (1) (छ), (6)—व्यापार का अधिकार—शिक्षा-संस्था स्थापित करने का कार्यकलाप न तो व्यापार है और न वह कारबार या वृत्ति ही है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 30, 19, 1(छ), 14, 226—शिक्षा-संस्था स्थापित करने का अधिकार—उक्त अधिकार से मान्यता या संबंधन का अधिकार संलग्न नहीं है—संबंधन/मान्यता प्राइवेट शिक्षा-संस्था का प्राण है—संबंधन/मान्यता प्रदान करने वाले प्राधिकरण/प्राधिकारी अन्य बातों के साथ-साथ, प्रवेश के विषय में ऋजुता को सुनिश्चित करने वाली शर्तों पर बल देने के लिए कर्तव्याबद्ध हैं—उच्चतम न्यायालय द्वारा विरचित संबंधन/मान्यता प्रदान करने वाले प्राधिकरणों/प्राधिकारियों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों की प्रकृति की स्कीम।

आन्ध्र प्रदेश शिक्षा-संस्था (प्रवेश का विनियमन और कैपिटेशन फीस का प्रतिषेध) अधिनियम, 1983—धारा 3क, सहपठित संविधान, 1950—अनुच्छेद 14—गैर-सहायता प्राप्त प्राइवेट वृत्तिक महाविद्यालय—परस्पर योग्यता के निर्देश के बिना धन का संदाय करने वाले अभ्यर्थियों को प्रवेश देने और प्रवेश हेतु कोई भी रकम प्रभारित करने की शक्ति—उक्त उपबंध से संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32 और 226—शिक्षा—प्रवेश—आन्ध्र प्रदेश में प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालय—राज्य अधिनियम की धारा 3क के अधीन 'संदाय वाले स्थानों' पर छात्रों को प्रवेश दिया जाना—राज्य अधिनियम की धारा 3क अविधिमान्य—उक्त धारा के अधीन प्रवेश दिए गए छात्रों को अध्ययन जारी रखने की अनुज्ञा—तथापि महाविद्यालयों को छात्रों के पाठ्यक्रम के शेष वर्षों के लिए 'मुक्त छात्रों' से केवल सरकारी फीस प्रभारित करने के लिए निदेश—क्योंकि उन्होंने सभी छात्रों से अनुज्ञात फीस प्रभारित करके और 50% संदाय वाले स्थानों पर कैपिटेशन फीस लेकर दोहरा फायदा उठाया—शेष रकम के बारे में 6 मास के भीतर सरकारी खाते में विप्रेषित किए जाने का निदेश—उक्त निदेश का अनुपालन न किए जाने पर मान्यता और संबंधन को प्रत्याहृत कर (वापस ले) लिया जाएगा।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार—उक्त अनुच्छेद में नकारात्मक भाषा के प्रयोग से यह अभिप्रेत नहीं है कि जीवन और स्वतंत्रता के सकारात्मक (निश्चयात्मक) अधिकार प्रदत्त नहीं किए गए हैं।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 12—राज्य का परिकरण—प्राइवेट शिक्षा-संस्था—राज्य द्वारा मान्यता या विश्वविद्यालय से संबंधन (सहबद्ध होना) उसे राज्य का परिकरण नहीं बनाते हैं।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14 और 226—शिक्षा—वृत्तिक महाविद्यालय—अन्य राज्यों से आने वाले छात्रों से दुगनी ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) प्रभारित करना अवैध नहीं है।

संविधान—1950—अनुच्छेद 32—स्कीम के प्रवर्तन के लिए परमादेश जारी किया जा सकता है, यदि न्यायालय द्वारा ऐसी प्रस्थापना की जाती है—मुनाफाखोरी एक बुराई है—यदि बिजली जैसी लोक उपयोगिता की वस्तु को नियंत्रित किया जा सकता है तो निश्चय ही वृत्तिक महाविद्यालयों को नियंत्रित किए जाने की भी आवश्यकता है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32, 21 और 14—कैपिटेशन फीस—प्राइवेट वृत्तिक महाविद्यालयों में प्रवेश और उनके द्वारा प्रभार्य फीस के संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा विरचित स्कीम—50% स्थान 'मुक्त स्थान' होंगे और शेष 50% स्थान 'संदाय स्थान' होंगे—'संदाय स्थानों' में से 5% स्थान योग्यता के आधार पर अनिवासी छात्रों द्वारा भरे जा सकते हैं—जिसका निर्धारण संबंधित महाविद्यालय द्वारा किया जाएगा, न कि प्रवेश परीक्षा के आधार पर—ऐसे छात्रों द्वारा संदेय फीस मुख्य निर्णय में उप-वर्णित स्कीम के खण्ड (6) के अनुसार संदेय होगी।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32, 21, 14 और 144—कैपिटेशन फीस—उच्चतम न्यायालय के आदेश का कार्यान्वयन करने में गतिरोध के कारण 1993-94 के लिए प्राइवेट चिकित्सा, दंत और परिचर्या महाविद्यालयों में 'संदाय स्थानों' के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट फीस संरचना—यह फीस संरचना अनंतिम और अस्थायी है तथा उसका केन्द्रीय सरकार और समुचित केन्द्रीय निकाय द्वारा तैयार की गई फीस संरचना के अनुसार समायोजन किया जा सकता है—प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालयों में 50% तक स्थानों पर विदेशी छात्रों को प्रवेश देने की पद्धति अनुज्ञेय नहीं है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32, 21 और 14—कैपिटेशन फीस—प्राइवेट वृत्तिक महाविद्यालयों में प्रवेश और फीस के संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा विरचित स्कीम—अल्पसंख्यक शिक्षा-संस्थाएं—सरकार यह विनिश्चय करेगी कि क्या कोई विशेष संस्था अल्प संख्यक शिक्षा-संस्था है। संस्था के कुल स्थानों में से 50% प्रतियोगिता परीक्षा/परीक्षण के आधार पर राज्य सरकार के अभिकरणों द्वारा भरे जाएंगे और चयनित अभ्यर्थी सरकार द्वारा यथाअवधारित इस वर्ग को लागू फीस का संदाय करेंगे—शेष 50% स्थान पूर्णतः परस्पर-योग्यता के आधार पर किसी विशिष्ट धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक वर्ग के अभ्यर्थियों को प्रवेश देकर संस्था के प्रबंधतंत्र द्वारा भरे जा सकते हैं और चयनित अभ्यर्थी सरकार द्वारा यथाविहित फीस के संदाय की शर्त का पालन करेंगे।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32, 21 और 14—उच्चतम न्यायालय द्वारा विरचित और पश्चातवर्ती आदेशों में विस्तारित/उपान्तरित स्कीम—केरल राज्य में अल्पसंख्यक संस्थाओं की स्थिति—संस्थाओं का स्वरूप कि क्या वे अल्पसंख्यक संस्थाएं हैं या नहीं—राज्य सरकार द्वारा अवधारित नहीं—उनके द्वारा सम्बन्धित अल्पसंख्यक समुदायों में से संस्थाओं की क्षमता के 50% की सीमा तक किए गए प्रवेशों में इस प्रक्रम पर हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

चिकित्सीय और इंजीनियरी शिक्षा देने के कार्य में रत या रत होने का विचार रखने (की प्रस्थापना करने) वाली प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं द्वारा फाइल की गई इन रिट याचिकाओं में, कुमारी मोहिनी जैन **बनाम** कर्नाटक राज्य और अन्य वाले मामले में न्या॰ कुलदीप सिंह और आर॰ एम॰ सहाय वाले खण्ड न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय की शुद्धता को प्रश्नगत किया गया है। याचियों का, जो आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु राज्यों में मैडिकल/इंजीनियरिंग कालेज चला रहे हैं, यह कहना है कि यदि मोहिनी जैन वाले मामले में किया गया विनिश्चय सही है और उसका संबंधित राज्य सरकारों द्वारा अनुसरण और क्रियान्वयन किया जाता है—जैसा करने के लिए वे वस्तुतः आबद्ध हैं—तो उन्हें बंद किया जाना होगा; उनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। अतः सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करना आवश्यक है कि उक्त विनिश्चय में ठीक-ठीक क्या अधिकथित किया गया है। कर्नाटक विधानमण्डल ने वर्ष 1984 में कर्नाटक एजूकेशनल इन्स्टीट्यूशन्स (प्रोहिबीशन आफ कैपिटेशन फीस) [कर्नाटक शिक्षा-संस्थाएं (प्रति व्यक्ति फीस का प्रतिषेध) अधिनियम] अधिनियमित किया। सरकार को ऐसे स्थानों की संख्या विनिर्दिष्ट करने का अधिकार प्राप्त है, जो किसी प्राइवेट शिक्षा-संस्था या ऐसी संस्थाओं के वर्ग या वर्गों में "सरकारी स्थानों" के रूप में आरक्षित (अलग) रखे जा सकेंगे; सरकार यह भी विनिर्दिष्ट कर सकती है कि प्रबंधतंत्र द्वारा भरे जाने वाले स्थानों (प्रबंधतंत्र-कोटा) में से, ऐसे प्रतिदेय निक्षेप के संदाय पर, जो विहित किया जाए, योग्यता के आधार पर कर्नाटक के छात्रों में से, एक विशेष संख्या में, स्थान भरे जा सकेंगे; सरकार उन स्थानों की संख्या भी विनिर्दिष्ट कर सकती है, जो प्रबंधतंत्र के विवेकानुसार भरे जा सकेंगे। (यह स्पष्ट है कि यदि योग्यता प्रतिदेय निक्षेप के आधार पर भरे जाने वाले स्थान विनिर्दिष्ट नहीं किए जाते हैं, तो सरकारी स्थानों से भिन्न सभी स्थान प्रबंधतंत्र के विवेकानुसार भरे जा सकते हैं)। कर्नाटक के छात्रों (जिस पद को स्पष्टीकरण द्वारा परिभाषित किया गया है) की संख्या कुल मिला कर 50% से कम नहीं होनी चाहिए। यदि योग्यता एवं प्रतिदेय निक्षेप के आधार पर भरे जाने वाले स्थानों की संख्या विनिर्दिष्ट कर दी जाती है, तो उपधारा (3) द्वारा यथा-अनुध्यात, चयन करने के लिए चयन-समिति बनाई जाएगी। अधिनियम की धारा 5 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में, कर्नाटक सरकार ने तारीख 5 जनवरी, 1989 को एक अधिसूचना जारी की। उसमें यह उपबंध किया गया कि शैक्षणिक वर्ष 1989-90 से प्राइवेट मैडिकल कालेजों में संदेय फीस, "सरकारी स्थानों" के लिए प्रवेश दिए गए छात्रों की दशा में दो हजार रुपए प्रतिवर्ष (जैसी कि सरकारी मैडिकल कालेजों में हैं), अन्य कर्नाटक छात्रों के मामले में पच्चीस हजार रुपए और गैर-कर्नाटक छात्रों की दशा में साठ हजार रुपए होगी। एक गैर-कर्नाटक

छात्र कुमारी मोहिनी जैन (वह उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर की थी) ने कर्नाटक के एक प्राइवेट मैडिकल कालेज में एम० बी० बी० एस० पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु आवेदन किया। उसे कालेज द्वारा यह सूचित किया गया कि यदि वह प्रथम वर्ष की ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) के रूप में साठ हजार रुपए का संदाय करती है और एम० बी० बी० एस० पाठ्यक्रम के शेष वर्षों के लिए संदेय फीस की बैंक गारण्टी देती है, तो उसे प्रवेश दे दिया जाएगा। उसके माता-पिता उक्त राशि का संदाय करने की स्थिति में नहीं थे और इसलिए उसे प्रवेश नहीं दिया जा सका। उसका आगे यह पक्षकथन था (जिसका कालेज के प्रबंधतंत्र द्वारा प्रत्याख्यान किया गया) कि उससे प्रवेश की शर्त के रूप में चार लाख पचास हजार रुपए की कैपिटेशन फीस (प्रति व्यक्ति फीस) का संदाय करने के लिए कहा गया था। उसने कर्नाटक सरकार की पूर्वोक्त अधिसूचना को चुनौती देते हुए और उसी फीस के संदाय पर प्रवेश दिए जाने हेतु निदेश जारी किए जाने का अनुरोध करते हुए, अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय में समावेदन किया, जो फीस "सरकारी स्थानों" पर प्रवेश दिए गए कर्नाटक छात्रों द्वारा संदेय थी। न्यायपीठ ने, जिसने रिट याचिका की सुनवाई की और उसका निपटारा किया, उसके विचारार्थ उद्भूत होने वाले चार प्रश्न विरचित किए, अर्थात्—क्या संविधान के अधीन भारत के लोगों को शिक्षा का अधिकार गारण्टीकृत किया गया है। यदि हां, तो क्या कैपिटेशन फीस की संकल्पना से उसका उल्लंघन होता है। (ii) क्या शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश के प्रतिफलस्वरूप कैपिटेशन फीस का प्रभारित किया जाना मनमाना, अनुचित और अन्यायसंगत है और इस प्रकार उससे संविधान के अनुच्छेद 14 में अंतर्विष्ट समता खण्ड का उल्लंघन होता है; (iii) क्या आक्षेपित अधिसूचना द्वारा प्राइवेट मैडिकल कालेजों को अधिनियम के अधीन फीस विनियमित करने की आड़ में कैपिटेशन फीस प्रभारित करने के लिए अनुज्ञात किया गया है, और (iv) क्या उक्त अधिसूचना से अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन होता है, जिसके द्वारा विनिर्दिष्ट शब्दों में, कर्नाटक राज्य में किसी शिक्षा-संस्था द्वारा कैपिटेशन फीस का प्रभारित किया जाना प्रतिषिद्ध किया गया है। न्यायपीठ ने संविधान के अनुच्छेद 21, 38, 39(क) और (च) तथा 45 पर विचार करने के पश्चात्, प्रथम प्रश्न के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया—संविधान निर्माताओं ने राज्य के लिए अपने नागरिकों को शिक्षा की व्यवस्था करना बाध्यकारी बनाया है। दूसरे प्रश्न पर न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य सरकार की, राज्य द्वारा मान्य शिक्षा-संस्थाओं द्वारा कैपिटेशन फीस प्रभारित करने की अनुज्ञा देने की, कार्यवाही पूर्णतः मनमानी है और इस प्रकार उससे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है। तृतीय प्रश्न पर न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की स्कीम को देखते हुए, प्रवेश हेतु साठ हजार रुपए प्रभारित करना कैपिटेशन फीस ही है, कोई अन्य चीज नहीं। तदनुसार आक्षेपित अधिसूचना अधिनियम की परिधि से बाह्य और अविधिमान्य मानी गई। यह घोषित किया गया कि निर्णय विदेशी छात्रों और प्रवासी भारतीय छात्रों को लागू नहीं होगा। तदनुसार रिट याचिका मंजूर की गई किन्तु मोहिनी जैन को प्रवेश देने से इंकार कर दिया गया क्योंकि महाविद्यालय में उसका प्रवेश योग्यता के आधार पर नहीं किया गया था और दूसरे, पाठ्यक्रम मार्च-अप्रैल, 1991 में ही आरम्भ हो गया था यह विनिश्चय तारीख 23 जुलाई, 1992 को किया गया। यह निदेश किया गया कि उक्त विनिश्चय का केवल भविष्यलक्षी प्रभाव होगा और उससे उक्त अधिसूचना के अनुसार पहले से ही किए गए प्रवेश प्रभावित नहीं होंगे। उक्त प्रतिपादनाओं से ही रिट याचिकाओं का समूह उद्भूत हुआ है। याचिकाओं और अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित—संविधान के अनुच्छेद 21 प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के वंचन के विरुद्ध ढाल का काम करता है। इस संबंध में यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि उक्त अनुच्छेद द्वारा अनुच्छेद 19 के समान प्राण या दैहिक स्वतंत्रता का मूल अधिकार निश्चयात्मक (सकारात्मक) रूप से प्रदत्त क्यों नहीं किया गया। उसका कारण यह है कि स्वतंत्रता और जीवन जैसी महान् संकल्पनाएं अनुभव से अर्थ ग्रहण करने के लिए सप्रयोजन छोड़ दी गई हैं। ये संकल्पनाएं सामाजिक और आर्थिक तथ्य के सम्पूर्ण क्षेत्र से संबंध रखती हैं। इस संविधान के प्रारूपकार यह बात भली-भांति जानते थे कि गतिहीन समाज ही अपरिवर्तित रहता है। ऐसे अधिकारों के विपरीत, जिनका प्रगणित किया जाना आवश्यक था, काफी लम्बे समय से इस तथ्य को मान्यता प्रदान की गई है कि व्यक्ति को दैहिक रूप से पूर्ण संरक्षण प्राप्त होगा। यह सिद्धांत उतना ही पुराना है जितनी कि विधि पुरानी है। तथापि, ऐसे संरक्षण की सही-सही प्रकृति और सीमा को समय-समय पर नए सिरे से परिभाषित करना आवश्यक पाया गया है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों में नए अधिकारों की मान्यता अंतर्वलित है और विधि अपनी शाश्वत युवावस्था (चिर-यौवनावस्था) में समाज की मांगों को पूरा करने के लिए विकासशील रहती है। जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति में सन्निहित है। उसका निश्चयात्मक रीति में उपबंध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अनुच्छेद 21 की परिधि पर विचार करते समय, मेनका गांधी **बनाम** भारत संघ, [(1979) 1 उम० नि० प० 243 = ए० आई० आर० 1978 एस०सी० 597] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया—'यह बात सुव्यक्त है कि अनुच्छेद 21, यद्यपि यह नकारात्मक भाषा में है, प्राण और दैहिक स्वाधीनता का मूल अधिकार प्रदत्त करता है। जहां तक दैहिक स्वाधीनता के अधिकार का संबंध है, उसे, यह उपबंध करके, सुनिश्चित किया गया है कि किसी व्यक्ति को उसकी दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा। अतः यह कहना सही नहीं है कि (चूंकि) उक्त अनुच्छेद में नकारात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है, (अतः) जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार प्रदत्त नहीं किए गए हैं, जैसा कि विद्वान् काउंसेल (श्री तारकुण्डे) ने तर्क दिया। (पैरा 19 से 22)

उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अनेक प्रगणित अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि दैहिक स्वतंत्रता की व्यापकतम परिधि है। निम्नलिखित अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत माने गए हैं—1. विदेश (बाहर) जाने का अधिकार (सतवंत सिंह **बनाम** ए० पी० ओ०, नई दिल्ली), [(1967) 3 एस० सी० आर० 525] 2. एकान्तता का अधिकार (गोविन्दा **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य), [(1975) 3 एस० सी० आर० 946] इस मामले में, ग्रिस्वोल्स **बनाम** कनेक्टीकट, (381 यू० एस० 479 पृ० 510) वाले मामले का अवलंब लिया गया। 3. एकांत परिरोध के विरुद्ध अधिकार (सुनील बत्रा **बनाम** दिल्ली प्रशासन), [(1978) 4 एस० सी० सी० 494 पृष्ठ 545] 4. न्यायालय में

बेड़ी (हथकड़ी) के विरुद्ध अधिकार (चार्ल्स शोभराज **बनाम** अधीक्षक, केन्द्रीय कारागार), [(1979) 1 एस॰ सी॰ आर॰ 111] 5. कानूनी सहायता का अधिकार (होस्कोट **बनाम** महाराष्ट्र राज्य), [(1979) 1 एस॰ सी॰ आर॰ 192] 6. शीघ्र विचारण का अधिकार (हुसैनालिया खातून **बनाम** बिहार राज्य), [(1979) 3 एस॰ सी॰ आर॰ 169] 7. हथकड़ी लगाए जाने के विरुद्ध अधिकार (प्रेमशंकर **बनाम** दिल्ली प्रशासन), [(1980) 3 एस॰ सी॰ आर॰ 855] 8. विलम्बित मृत्यु दंड के विरुद्ध अधिकार (टी॰ वी॰ वथीश्वरन् **बनाम** तमिलनाडु राज्य), [ए॰ आई॰ आर॰ 1983 एस॰ सी॰ 361] 9. अभिरक्षात्मक हिंसा के विरुद्ध अधिकार (शीला बार्से **बनाम** महाराष्ट्र राज्य), [(1983) 2 एस॰ सी॰ सी॰ 96] 10. सार्वजनिक फांसी के विरुद्ध अधिकार (भारत का महान्यायवादी **बनाम** लक्ष्मीदेवी), [ए॰ आई॰ आर॰ 1986 एस॰ सी॰ 467] 11. डाक्टर (चिकित्सक) की सहायता का अधिकार (परमानन्द कत्रा **बनाम** भारत संघ), [(1989) 4 एस॰ सी॰ सी॰ 286] 12. शरण का अधिकार (शान्तिस्टार बिल्डर्स **बनाम** एन॰ के॰ टोटाने) [(1990) 1 एस॰ सी॰ सी॰ 520]। यदि वस्तुतः अनुच्छेद 21 को, जो मूल अधिकारों में मुख्य है, समय-समय पर व्यापक और विस्तृत अर्थ दिया गया है, तो इस बात का कोई कारण नहीं है कि उसका अनुच्छेद 45 के प्रकाश में निर्वचन क्यों नहीं किया जा सकता, जिसमें राज्य, विहित सीमा समय-सीमा के अंदर बालकों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए आबद्ध है। (पैरा 30, 31, 32)

इस प्रकार यदि दैहिक स्वतंत्रता और जीवन को विस्तृत अर्थ दिया गया है, तो विचारार्थ यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या जीवन की बाबत, जिससे गरिमा के साथ जीवन यापन अभिप्रेत है, यह अभिनिर्धारित करना सही नहीं होगा कि उसकी (जीवन की) परिधि के अंतर्गत शिक्षा भी आती है। इसी बात को अधिक बल देकर इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि क्या शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार से उद्भूत होता है। यहां इस तथ्य का सावधानीपूर्वक उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यदि दैहिक स्वतंत्रता का वंचन, विधि द्वारा स्थापित विधिमान्य प्रक्रिया द्वारा किया जाता है, तो अनुच्छेद 21 के अधीन मूल अधिकार किसी प्रकार प्रभावित नहीं होता है। (पैरा 36 और 37)

शिक्षा ज्योति है। वह ऐसी ज्योति है, जो मनुष्य को गरिमा प्रदान करती है, जैसा कि दिल्ली विश्वविद्यालय **बनाम** राम नाथ, [(1964) 2 एस॰ सी॰ आर॰ 703] वाले मामले में न्या॰ गजेन्द्र गड़कर (जैसे कि वह उस समय थे) ने ठीक ही मत व्यक्त किया है—शिक्षा का उद्देश्य, शिष्य के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और भावात्मक विकास में सहायता करके, उसके व्यक्तित्व का निर्माण करना है। (पैरा 39)

यदि जीवन (प्राण) का इस प्रकार निर्वचन किया जाता है कि उसके अंतर्गत शिक्षा का अधिकार भी आता है, तो उसका निर्वचन नीति के निदेशक तत्वों के प्रकाश में ही किया जाना है। इस न्यायालय ने समान रूप से (बराबर) यही दृष्टिकोण अपनाया है कि नीति के निदेशक तत्वों के संदर्भ में मूल अधिकारों का सामंजस्यपरक निर्वचन किया जाना चाहिए। (पैरा 40)

केरल राज्य और एक अन्य **बनाम** एन॰ एम॰ थोमस और एक अन्य [(1976) 2 उम॰ नि॰ प॰ 936 = (1976) 1 एस॰ सी॰ आर॰ 906] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया—"यह न्यायालय न्यायिक तौर से पूरी तरह से एकमत है कि निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों का अर्थान्वयन एक दूसरे से सामंजस्य करके किया जाना चाहिए और न्यायालय को ऐसी कोशिश करनी चाहिए जिससे कि किसी प्रत्यक्ष असंगति को दूर किया जा सके।" भाग 4 में अंतर्विष्ट निदेशक तत्व, समाजवादी राज्य के उच्च भवन पर चढ़ने के सोपान हैं और मूल अधिकार वे साधन हैं, जिनके जरिए कोई भी व्यक्ति भवन की अंतिम मंजिल पर पहुंच सकता है। निदेशक तत्व आधारभूत बात और संविधान की सामाजिक अंतरात्मा (गठित करते) हैं। संविधान राज्य को इस बात के लिए व्यादिष्ट करता है कि वह इन निदेशक तत्वों को क्रियान्वित करे। इस प्रकार से निदेशक तत्वों में सामाजिक, आर्थिक स्वतंत्रता की नीति, मार्गदर्शक रेखाएं और उद्देश्यों के बारे में उपबंध किया गया है तथा अनुच्छेद 14 और 16 उन उद्देश्यों को प्राप्त करने संबंधी नीति को क्रियान्वित करने के सिद्धांत हैं, जिनका इन निदेशक तत्वों द्वारा प्राप्त किया जाना ईप्सित है। जहां तक न्यायालयों का संबंध है, वहां, जहां तक भाग 4 में अंतर्विष्ट निदेशक तत्वों तथा भाग 3 में मूल अधिकारों के बीच स्पष्ट असंगति नहीं है, जो कि वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं, ऐसा सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन करने में, जो कि संविधान के उद्देश्यों का विस्तार करता है, कोई भी कठिनाई नहीं होती है। (पैरा 41)

अनुच्छेद 45 के अधीन वर्णित 14 वर्ष (10 वर्ष सं॰) की अवधि काफी पहले ही समाप्त हो गई थी। भारत स्वतंत्रता के 43वें वर्ष में है। तब भी, यदि अनुच्छेद 45 मात्र एक पुनीत इच्छा और विश्वासपूर्ण आशा के रूप में रहता है, प्राथमिक शिक्षा के महत्व को देखते हुए, उससे क्या अच्छाई हुई। इस अनुच्छेद के अधीन एक समय-सीमा विहित की गई थी। ऐसी समय-सीमा केवल यहीं (देखने को मिलती) है। अतः, यदि इस अनुच्छेद को जीवंत और अर्थपूर्ण बनाने के लिए अभी तक कोई प्रयास नहीं किया गया है, तो न्यायालय को हस्तक्षेप करना चाहिए। राज्य को 14 वर्ष की आयु तक प्रत्येक बालक की निःशुल्क शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए। (पैरा 45)

निस्संदेह, मोहिनी जैन वाले मामले के उपर्युक्त उद्धरण में "सभी स्तरों पर शिक्षा" का उल्लेख किया गया है, किंतु विधि को कुछ अधिक व्यापक रूप में ही अधिकथित किया गया है और इसलिए उसे अनुच्छेद 45 के अधीन परिकल्पित परिधि तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। (पैरा 48)

उच्चतर शिक्षा राष्ट्रीय आर्थिक संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर करती है। किसी देश विशेष में, उसके लिए अधिकार, अनिवार्यतः उसकी आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों द्वारा, सीमित किया जाना चाहिए। अतः राज्य की उसकी व्यवस्था करने की बाध्यता आत्यंतिक और अव्यवहित नहीं है बल्कि सापेक्षा और क्रमिक है। उसे सभी समुचित साधनों द्वारा शिक्षा के अधिकार की क्रमिक रूप से पूर्ण प्राप्ति करने के उद्देश्य से अपने उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम सीमा तक उपयोग करने के लिए कदम उठाने ही होते हैं। किंतु जहां तक शिक्षा की व्यवस्था करने की साधारण बाध्यता का संबंध है, यह कहा जा सकता है कि राज्य ने उसका उल्लंघन किया है, यदि उसने ऐसे संसाधनों द्वारा अपनी शिक्षा-पद्धति को विमर्शित रूप में आरम्भ किया, जो प्रकटतः उसे उपलब्ध

थे, जब तक कि वह यह दर्शित नहीं कर सकता है कि वह उन्हें और अधिक आवश्यक कार्यक्रम के लिए आबंटित कर रहा है। अतः 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा को मूल अधिकार के रूप में मानकर, यह न्यायालय प्राथमिकताएं अवधारित नहीं कर रहा है। इसके विपरीत, उसे उसके निष्ठापूर्ण प्रयास का स्मरण कराना है, जो उसे अनुच्छेद 45 के अधीन विहित सीमा के अंदर करना है, जो समय-सीमा काफी पहले ही समाप्त हो गई है। (पैरा 50)

प्रत्येक मामले में, कानून पर निर्भर करते हुए, "उपजीविका" या "कारबार" को परिभाषित किया गया है। निश्चय ही, यह दलील नहीं दी जा सकती है कि शिक्षा-संस्था की स्थापना "कारबार" होगी। पुनः, वह व्यापार भी नहीं कही जा सकती है क्योंकि कोई भी व्यापार-क्रियाकलाप नहीं किए जा रहे थे। इसी प्रकार, वह वृत्ति भी नहीं है। यह कहना एक बात है कि अध्यापन (शिक्षण) वृत्ति है किंतु यह दलील देना बिल्कुल ही भिन्न बात है कि किसी शिक्षा-संस्था की स्थापना वृत्ति होगी। वह कदाचित् उपजीविका के प्रवर्ग के अंतर्गत आ सकती है बशर्ते कि राज्य से कोई मान्यता नहीं मांगी जाती है या विश्वविद्यालय से इस आधार पर सम्बन्धन (सहबद्ध होना) की ईप्सा नहीं की जाती (नहीं मांगा जाता है) कि वह मूल अधिकार है। (पैरा 64)

याचियों द्वारा जिस चीज पर जोर दिया गया है, वह किसी शिक्षा-संस्था की स्थापना मात्र नहीं, बल्कि राज्य द्वारा मान्यता पर निर्भर शिक्षा-संस्था का चलाया जाना है। किसी नागरिक को मान्यता का कोई मूल अधिकार बिल्कुल भी प्राप्त नहीं है। राज्य की मान्यता सहित शिक्षा-संस्था की स्थापना और उसे चलाने का अधिकार केवल उसी स्थिति में उद्भूत होता है, जब राज्य किसी नीतिगत विनिश्चय के अनुसरण में या कानून की शर्तों को पूरा कर दिए जाने पर उसकी अनुज्ञा दे देता है। अतः जहां वह कानून के अधीन अनुज्ञा पर या कार्यकलाप शक्ति के प्रयोग पर निर्भर है, वहां वह मूल अधिकार होने के लिए अर्हित नहीं हो सकता है। तब पुनः राज्य की नीति एक भिन्न उपाय आदिष्ट कर सकती है। (पैरा 69)

यह अभिनिर्धारित करने की कि शिक्षा-संस्था स्थापित करने का मूल अधिकार अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन उपलब्ध है, तार्किक परिणति के परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय की स्थापना करने के अधिकार की प्रतिपादना भी अस्तित्व में आएगी। (पैरा 70)

यदि विश्वविद्यालय की स्थापना करने का सुतराम् कोई मूल अधिकार नहीं है, तो किसी शिक्षा-संस्था को स्थापित करने का मूल अधिकार उपलब्ध नहीं है। (पैरा 71)

विवक्षा द्वारा भी, अनुच्छेद 30 के अधीन प्रदत्त अधिकार की प्रकृति और स्वरूप का मूल अधिकार अनुच्छेद 19(1)(छ) में नहीं पढ़ा और समझा जा सकता है। अनुच्छेद 30 के अधीन निश्चयात्मक रूप में अल्पसंख्यकों को ऐसे अधिकार का प्रदत्त किया जाना इस संबंध में देश के प्रत्येक नागरिक को मूल अधिकार दिए जाने की धारणा को नकार देता है। (पैरा 72)

यह तर्क कि केवल संबंधित कार्यकलाप या उपजीविका के समाज के लिए हानिकारक होने के तथ्य के कारण ही ऐसा प्रत्येक कार्यकलाप या उपजीविका मूल अधिकार के रूप में संरक्षण के लिए स्वतः हकदार नहीं हो सकती है, स्वीकार्य नहीं है। जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया जा चुका है, कुछ अधिकारों को उनकी प्रकृति के कारण, मूल अधिकारों के रूप में संरक्षित किए जाने के लिए अर्हित नहीं माना जा सकता। (पैरा 74)

तद्नुसार यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन शिक्षा-संस्था स्थापित करने का कोई मूल अधिकार नहीं है, यदि ऐसी शिक्षा-संस्था के लिए मान्यता या सम्बन्धन की ईप्सा की जाती है। यहां यह स्पष्ट करना उचित होगा कि पूर्णतः छात्रों को शिक्षा देने के प्रयोजनों के लिए संस्था आरम्भ करने का इच्छुक व्यक्ति ऐसा कर सकता है किंतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 22 और 23 को ध्यान में अवश्य ही रखा जाना चाहिए, जिसके द्वारा उपाधियां देने के कार्य को, सिवाय विश्वविद्यालय द्वारा, प्रतिषिद्ध किया गया है। (पैरा 75)

अगला प्रश्न, जो अवधारण की अपेक्षा करता है, यह है—"क्या मान्यता या सम्बन्धन का कार्य शिक्षा-संस्था को परिकरण बनाता है"। इस प्रश्न पर निम्नलिखित मामलों के प्रतिनिर्देश से विचार करना उचित होगा। (पैरा 76)

अजय हसिया वाले मामले में वर्णित कसौटियों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् विद्वान न्यायाधीश ने अखिल भारत सैनिक विद्यालय कर्मचारी संगम **बनाम** सैनिक विद्यालय सोसाइटी, [(1989) सप्ली॰ 1 एस॰ सी॰ सी॰ 205 = ए॰ आई॰ आर॰ 1989 एस॰ सी॰ 88] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है—सैनिक विद्यालय सोसाइटी भी "राज्य" है। उसका सम्पूर्ण निधिकरण राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकारों द्वारा किया जाता है। कुल मिलाकर, नियंत्रण सरकारी प्राधिकारी में निहित रहता है। उक्त सोसाइटी का मुख्य उद्देश्य विद्यालय चलाना और राष्ट्रीय रक्षा अकादमी की आवश्यकता की पूर्ति के प्रयोजन के लिए छात्रों को तैयार करना है। देश की रक्षा राज्य के राजकीय कृत्यों में से एक है। (पैरा 79)

इन कसौटियों को लागू करने पर, यह अभिनिर्धारित करना असम्भव है कि प्राइवेट शिक्षा-संस्था, मान्यता द्वारा या विश्वविद्यालय से सम्बन्धन द्वारा, कभी भी राज्य का परिकरण कही जा सकती है। मान्यता राज्य द्वारा अधिकथित मानकों के अनुरूप होने के प्रयोजन के लिए होती है। सम्बन्धन पाठ्य-विवरण और पाठ्यक्रम के संबंध में होता है। जब तक वे विश्वविद्यालय के विधान के अनुसार नहीं हैं, उपाधियां प्रदत्त नहीं की जा सकती हैं। शिक्षा-संस्थाएं छात्रों को विश्वविद्यालय द्वारा संचालित परीक्षा के लिए तैयार करती हैं। अतः वे पाठ्य विवरण और पाठ्यक्रम का पालन करने के लिए बाध्य हैं। (पैरा 80)

इसके परिणामस्वरूप एक महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत होता है—'इन संस्थाओं द्वारा निर्वहन किए जाने वाले कृत्यों का स्वरूप क्या है'। वे लोक कर्तव्य का निर्वहन करती हैं। यदि कोई छात्र, उदाहरणार्थ, चिकित्सा में उपाधि प्राप्त करना चाहता है, तो उसे चिकित्सा महाविद्यालय में प्रवेश लेना होगा। ये चिकित्सा महाविद्यालय अर्हता प्राप्त करने के साधन हैं।

अतः यदि शिक्षा-संस्था द्वारा जिस चीज का निर्वहन किया जाता है, वह लोक कर्तव्य है, तो वह ऋजुतापूर्वक कार्य करने के कर्तव्य की अपेक्षा करता है। (पैरा 81)

इस मामले में निकाय पर अधिरोपित कर्तव्य के स्वरूप पर बल दिया गया है। यहां यह बता देना आवश्यक होगा कि अनुच्छेद 226 के अधीन प्राधिकारी/प्राधिकरण का अर्थ इस प्रकार अधिकथित किया गया कि उक्त शब्द को अनुच्छेद 12 में दिए गए अर्थ से प्रभेदित किया गया है। उसके बावजूद, यदि बल उसी सिद्धांत के आधार पर कर्तव्य के स्वरूप पर दिया जाना है, तो यह अभिनिर्धारित किया जाना ही होगा कि ये शिक्षा-संस्थाएं लोक कर्तव्यों का निर्वहन करती हैं। इस बात का विचार किए बिना कि शिक्षा-संस्थाएं सहायता प्राप्त करती हैं, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह लोक कर्तव्य है। सहायता का अभाव कर्तव्य के स्वरूप को कम नहीं करता है। (पैरा 83)

इस संबंध में चेतावनी के रूप में कुछ कहा जाना आवश्यक होगा। सभी प्राइवेट संस्थाएं इस प्रवर्ग से संबंध नहीं रखती हैं। ऐसी शिक्षा संस्थाएं भी हैं, जिन्होंने लगन द्वारा उच्च शैक्षिक स्तर बनाए रखकर बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। ये अनेक मामलों में सरकार द्वारा चलाए गए महाविद्यालयों से भी आगे हैं। इनको प्रोत्साहन दिए जाने की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से, नियामक नियंत्रण जारी रखे जाने हैं और उन्हें सुदृढ़ किया जाना है। शिक्षा के वाणिज्यीकरण और उस क्षेत्र में काला-बाजार और धोखाधड़ी को अवश्य ही रोका जाना चाहिए। राज्य को इस दिशा में अधिकतम प्रयास करना चाहिए। (पैरा 91)

यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्राइवेट शिक्षा-संस्थाएं न्यूनतम स्तर और सुविधाएं बनाए रखती हैं, नियामक उपाय किए जाने चाहिएं। सभी समूहों और प्रवर्गों के अंतर्गत प्रवेश केवल योग्यता पर ही आधारित होना चाहिए। समाज के निर्बल वर्गों और ऐसे अन्य समूहों के पक्ष में स्थानों का आरक्षण किया जा सकता है, जो विशेष व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। प्रवेश हेतु नियम पूर्वावधारित, वस्तुपरक और स्पष्ट होने चाहिएं। (पैरा 92)

स्कीम से पूर्व, यह प्रश्न उद्भूत हो सकता है कि क्या स्कीम के प्रवर्तन के लिए परमादेश जारी किया जा सकता है, यदि न्यायालय द्वारा ऐसा प्रस्थापित किया जाता है। (पैरा 93)

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मुनाफा कमाना एक बुराई है। यदि विद्युत (बिजली) जैसी लोक उपयोगिता (की वस्तु) को नियंत्रित किया जा सकता है, तो, निश्चय ही, वृत्तिक महाविद्यालयों को भी विनियमित (नियंत्रित) किए जाने की आवश्यकता है। (पैरा 94)

शिक्षा का अधिकार भाग 3 में मूल अधिकार के रूप में अभिव्यक्त रूप से वर्णित नहीं किया गया है। तथापि, उच्चतम न्यायालय ने इस नियम का अनुसरण नहीं किया है कि जब तक किसी अधिकार को मूल अधिकार के रूप में अभिव्यक्त रूप से वर्णित नहीं किया जाता है, उसे मूल अधिकार नहीं माना जा सकता है। भाग 3 में प्रैस की स्वतंत्रता को अभिव्यक्त रूप से वर्णित नहीं किया गया है, तथापि उसे भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में पढ़ा और समझा गया है तथा उससे उसे अनुमित किया गया है। (पैरा 132)

उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों द्वारा यह बात सुस्थापित हो चुकी है कि भाग 3 और 4 के उपबंध एक दूसरे के पूरक और अनुपूरक हैं तथा मूल अधिकार भाग 4 में उपदर्शित लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन मात्र हैं। यह भी अभिनिर्धारित किया जाता है कि मूल अधिकारों का निदेशक तत्वों के प्रकाश में ही अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। उपर्युक्त दृष्टिकोण से ही प्रश्न सं० 1 पर विचार किया जाना है। (पैरा 141)

बंधुआ मुक्ति मोर्चा वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 द्वारा गारण्टीकृत (प्रदत्त) शिक्षा के अधिकार में शिक्षा-संबंधी सुविधाएं भी आती हैं। किसी व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन में शिक्षा के मूलभूत महत्व को ध्यान में रखते हुए और इसमें इससे पूर्व निर्दिष्ट उच्चतम न्यायालय के पूर्वतर विनिश्चयों में अंगीकृत तर्क को और कारणों को स्वीकार करते हुए, ऊपर निर्दिष्ट बंधुआ मुक्ति मोर्चा वाले मामले में किए गए इस कथन से सहमति व्यक्त की जाती है कि शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के अधिकार में सन्निहित है और उससे उद्भूत होता है। इस बात को कि शिक्षा का अधिकार किसी व्यक्ति के जीवन में उच्चतम महत्व का अधिकार माना गया है, न केवल इस देश में हजारों वर्षों से मान्यता प्रदान की गई है बल्कि सम्पूर्ण संसार में इस बात को मान्यता प्रदान की गई है। मोहिनी जैन वाले मामले में, शिक्षा के महत्व पर सम्यक् रूप से और ठीक ही बल दिया गया है। इस देश के नागरिकों को शिक्षा की व्यवस्था किए बिना, संविधान की उद्देशिका में वर्णित उद्देश्यों को पूरा नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के बिना संविधान निरर्थक हो जाएगा। शिक्षा के महत्व को उपर्युक्त शब्दों से बेहतर शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है। (पैरा 142)

याचियों के कुछ काउंसेलों ने यह तर्क दिया है कि अनुच्छेद 21 स्वरूप में नकारात्मक है और उसमें मात्र यह घोषित किया गया है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं। चूंकि राज्य द्वारा प्रत्यर्थी-छात्रों को उनके शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं किया जा रहा है, अतः अनुच्छेद 21 लागू नहीं होता—ऐसा निवेदन किया गया है। उनके अनुसार, यदि और जब राज्य शिक्षा के अधिकार को छीनते हुए, कोई विधि बनाता है, तो अनुच्छेद 21 लागू होगा। यह तर्क वस्तुतः भ्रम के कारण उद्भूत हुआ है; किसी भी दशा में, वह विवाद्यक के बारे में भ्रम उत्पन्न करने के लिए आशयित है। प्रथम प्रश्न यह है कि क्या अनुच्छेद 21 द्वारा गारण्टीकृत जीवन का अधिकार अपनी परिधि में शिक्षा के अधिकार को भी लेता है या नहीं। उसके पश्चात् ही यह द्वितीय प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या राज्य उस अधिकार को छीन रहा है। मात्र इस तथ्य से कि राज्य उस अधिकार को छीन रहा है, यह अभिप्रेत नहीं है कि शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार में सम्मिलित नहीं है। उक्त अधिकार की अंतर्वस्तु धमकी की अनुभूति (धारणा) द्वारा अवधारित नहीं है। जीवन के अधिकार की अंतर्वस्तु को वंचन की धमकी के होने या न होने के आधार पर अवधारित नहीं किया जाना है। यह अभिनिर्धारित करने का कि शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार में विवक्षित है, प्रभाव यह है कि राज्य नागरिक को उसके शिक्षा के अधिकार से विधि द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित कर सकता है, अन्यथा नहीं। (पैरा 144)

विधि की इस स्थिति को देखते हुए, यह दलील देना सही नहीं होगा कि मोहिनी जैन वाले मामले में किया गया विनिश्चय इस अर्थ में गलत था कि उसमें यह घोषित किया गया था कि शिक्षा का अधिकार सीधे जीवन के अधिकार से उद्भूत होता है। किंतु प्रश्न यह है कि इस अधिकार की अंतर्वस्तु क्या है। जीवन को सार्थक बनाने के लिए कितनी

शिक्षा और किस स्तर तक की शिक्षा आवश्यक है। क्या इससे यह अभिप्रेत है कि इस देश का प्रत्येक नागरिक राज्य से अपनी पसंद की शिक्षा की व्यवस्था करने की अपेक्षा कर सकता है। दूसरे शब्दों में, क्या इस देश के नागरिक यह मांग कर सकते हैं कि राज्य उनकी सभी शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त संख्या में चिकित्सा महाविद्यालयों, इंजीनियरी-महाविद्यालयों और अन्य शैक्षिक-संस्थाओं की व्यवस्था करे। ऐसा प्रतीत होता है कि मोहिनी जैन वाले मामले में, किए गए विनिश्चय में उक्त प्रश्न का सकारात्मक उत्तर दिया गया है। ससम्मान, ऐसी व्यापक प्रतिपादना से सहमत होना कठिन है। शिक्षा के अधिकार का, जो अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन के और वैयक्तिक स्वतंत्रता के अधिकार में विवक्षित है, संविधान के भाग 4 में नीति के निदेशक तत्वों के प्रकाश में ही अर्थान्वियन किया जाना चाहिए। जहां तक शिक्षा के अधिकार का संबंध है, भाग 4 में ऐसे अनेक उपबंध हैं, जिनमें अभिव्यक्त रूप से उसका उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 41 में यह कहा गया है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा। अनुच्छेद 44 में यह कहा गया है कि राज्य भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता सुनिश्चित (प्राप्त) कराने का प्रयास करेगा। अनुच्छेद 45 में यह कहा गया है कि राज्य, इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा। अनुच्छेद 46 में यह कहा गया है कि राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के, शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा। शिक्षा का अर्थ ज्ञान है— और ज्ञान स्वयं शक्ति है। जैसा कि जॉन एडम्स ने ठीक ही कहा है, निम्नतम श्रेणियों में ज्ञान के साधन का परिरक्षण, देश में सभी सम्पन्न व्यक्तियों की संपूर्ण सम्पत्ति की तुलना में जनता के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। अनुच्छेद 46 में यही व्यग्रता अंतर्निहित प्रतीत होती है। केवल क्रूर और बुरे शासक ही वंचित वर्गों में शिक्षा और ज्ञान के प्रसार से भयभीत होते हैं। उदाहरण के रूप में, हिटलर का नाम लिया जा सकता है। वह सार्वजनिक (सामान्य) शिक्षा के पूर्णतः विरुद्ध था। उसने इस संबंध में यह कहा था— "सार्वजनिक/सामान्य शिक्षा ऐसा सर्वाधिक क्षरणकारी और विघटनकारी विष है, जिसे उदारवाद ने स्वयं अपने विनाश के लिए खोजा है।" (राशनिंग, दि वायस आफ डेस्ट्रक्शनः हिटलर स्पीक्स)। सच्चा जनतंत्र वहां है, जहां शिक्षा सार्वजनिक है, जहां लोग यह समझते हैं कि उनके लिए और राष्ट्र के लिए कौन-सी चीज अच्छी है, और जहां वे स्वयं को शासित करना जानते हैं। तीनों अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 45, 46 और 41 अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आशयित हैं। इन उपबंधों के प्रकाश में ही शिक्षा के अधिकार की अंतर्वस्तु और प्राचलों (पैरामीटरों) को अवधारित किया जाना है। अनुच्छेद 45 और 41 के संदर्भ में समझे जाने पर, शिक्षा के अधिकार से यह अभिप्रेत है: (क) इस देश के प्रत्येक बच्चे/नागरिक को निःशुल्क शिक्षा का अधिकार प्राप्त है, जब तक कि वह 14 वर्ष की आयु पूरा नहीं कर लेता है; और (ख) बालक/नागरिक द्वारा 14 वर्ष की आयु पूरा किए जाने के पश्चात् उसके शिक्षा का अधिकार राज्य की आर्थिक क्षमता (सामर्थ्य) और उसके विकास की सीमाओं द्वारा सीमित है। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भाग 4 के अनेक अनुच्छेदों में से, केवल अनुच्छेद 45 में ही समय-सीमा का उल्लेख किया गया है। किसी अन्य उपबंध में उसका उल्लेख नहीं है। क्या संविधान के चवालीस वर्ष के पश्चात् भी यह मात्र एक पवित्र इच्छा बन कर रह गया है। क्या राज्य 44 वर्ष के पश्चात् भी इस आधार पर कि उक्त अनुच्छेद में केवल उसकी व्यवस्था करने का प्रयास करने की ही अपेक्षा की गई है और इस अतिरिक्त आधार पर भी उक्त निदेश का उल्लंघन कर सकता है कि उक्त अनुच्छेद, अनुच्छेद 37 में की गई घोषणा के आधार पर प्रवर्तनीय नहीं है। क्या 44 वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात्, जो अनुच्छेद 35 में नियत अवधि की चौगुनी से भी अधिक अवधि है, उक्त अनुच्छेद द्वारा सर्जित बाध्यता प्रवर्तनीय अधिकार के रूप में संपरिवर्तित नहीं हो जाती है। इस संदर्भ में यह कहा गया है कि भारत में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों को उपलब्ध निधियों का आबंटन संविधान द्वारा उपदर्शित प्राथमिकताओं का अपवर्तन प्रकट करता है। संविधान द्वारा यह अनुध्यात किया गया था कि अनुच्छेद 45 में उपवर्णित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राज्य द्वारा हंगामी कार्यक्रम आरंभ किया जाएगा। यहां यह अवेक्षा करना सुसंगत होगा कि अनुच्छेद 45 में उसकी आर्थिक क्षमता (सामर्थ्य) और विकास की परिसीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है, जैसा कि अनुच्छेद 41 में किया गया है, जिसमें अन्य चीजों के साथ-साथ, शिक्षा के अधिकार का भी उल्लेख किया गया है। वस्तुतः जो कुछ (घटित) हुआ है, वह यह है कि प्राथमिक शिक्षा की तुलना में और उसकी कीमत पर उच्चतर शिक्षा की दिशा में अधिक धन खर्च किया गया है और अधिक ध्यान दिया गया है। (प्राथमिक शिक्षा से अभिप्राय उस शिक्षा से है, जो कोई सामान्य बालक 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक, प्राप्त करता है)। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्र और अनुच्छेद 46 में निर्दिष्ट समाज के दुर्बल वर्ग भी अत्यधिक उपेक्षित हैं। यह बात स्पष्ट की जा रही है कि सरकार के लिए प्राथमिकताएं अधिकथित करने का प्रयास नहीं किया जा रहा है — केवल उस सांविधानिक स्कीम पर ही बल दे रहे हैं, जो अनुच्छेद 45, 46 और 41 द्वारा प्रकट की गई है। निश्चय ही, इन सांविधानिक उपबंधों में निहित प्रज्ञा प्रश्नातीत है। प्राथमिकताओं के इस अपवर्तन की शिक्षाविदों और अर्थ-शास्त्रियों, दोनों ही, द्वारा प्रतिकूल रूप से समीक्षा की गई है। राज्य को अनुच्छेद 45 के समादेश का सम्मान करना ही चाहिए। कम से कम अब तो उसे वास्तविकता का रूप दिया ही जाना चाहिए। वस्तुतः "राष्ट्रीय शिक्षा नीति—1986" में यह कहा गया है कि अनुच्छेद 45 में दिया गया वचन का इस शताब्दी के अंत तक पालन किया ही जाना चाहिए। बहरहाल, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि बालक (नागरिक) को 14 वर्ष की आयु तक निःशुल्क शिक्षा का मूल अधिकार प्राप्त है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस बाध्यता का केवल राज्य विद्यालयों के माध्यम से ही निर्वहन किया जा सकता है। ऐसा स्वैच्छिक — गैर-सरकारी संगठनों को अनुज्ञा, मान्यता और सहायता देकर भी किया जा सकता है, जो बालकों को निःशुल्क शिक्षा देने के लिए तैयार हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि गैर-सहायता प्राप्त प्राइवेट विद्यालय चालू नहीं रह सकते हैं। वस्तुतः वे भी इस संबंध में भूमिका निभा सकते हैं। वे जनसंजय द्वारा चलाए जाने वाले विद्यालयों में शिक्षा नहीं दिलाना चाहते। उन्हें अनिवार्यतः छात्रों से फीस प्रभारित करनी होती है। तथापि, न्यायालय इस निर्णय में ऐसे विद्यालयों या तत्प्रयोजनार्थ अन्य प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं के बारे में कुछ नहीं कहना चाहता है, सिवाय वृत्तिक महाविद्यालयों के। वस्तुतः यह विचार-विमर्श ऊपर निर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में किए गए विनिश्चय में प्रतिपादित सिद्धांतों और इन रिट याचिकाओं में उक्त सिद्धांतों के विरुद्ध दी गई चुनौती के कारण आवश्यक हुआ है। (पैरा 145 और 146)

इस प्रक्रम पर भारत संघ द्वारा फाइल किए गए अतिरिक्त शपथपत्र के प्रति निर्देश करना उचित होगा। इस शपथपत्र में प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति उपवर्णित की गई है। (प्रारंभिक प्रक्रम से अभिप्रेत है कक्षा एक से पांच तक का प्रक्रम)। (उच्चतर प्रारम्भिक प्रक्रम से अभिप्रेत है कक्षा छठी से आठवीं तक प्रक्रम)। विद्यालयों और उनमें प्रवेश की संख्या की प्रविष्टियां उपवर्णित करने के पश्चात् पैरा 3 में यह कहा गया है कि इस वृद्धि से संसार की बृहत्तम पद्धतियों में से एक की भारतीय शिक्षा-पद्धति में व्यवस्था की गई है, जिसके कारण देश की जनसंख्या के लगभग 94 प्रतिशत भाग को अंतर्विष्ट करते हुए, 8.26 लाख घरों को एक किलोमीटर की दूरी के अंदर प्राथमिक विद्यालयों की व्यवस्था की गई है। 1980 के दशक में प्रवेश में वृद्धि से ऐसी वृद्धि दर्शित होती है, जिससे प्राथमिक प्रारम्भिक प्रक्रम पर प्रवेश की दरें 100 प्रतिशत के निकट आ गई हैं। न्यायालय इस बात से अवगत है कि शिक्षा, प्रतिरक्षा के पश्चात्, बजटगत व्यय का द्वितीय उच्चतम क्षेत्र (सैक्टर) है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 3 प्रतिशत से भी अधिक भाग का शिक्षा पर व्यय किया जाता है, जैसा कि "शिक्षा की चुनौती" के पैरा 2.31 में उपदर्शित किया गया है। किंतु इसी प्रकाशन में यह (भी) कहा गया है कि "अनेक देशों की तुलना में भारत सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात में शिक्षा पर बहुत कम व्यय करता है" और उसमें आगे यह भी कहा गया है — "इस तथ्य के बावजूद कि शैक्षिक व्यय, व्यय की उच्चतम मद अब भी बना हुआ है, जो केवल प्रतिरक्षा के व्यय से ही कम है, शैक्षिक आवश्यकताओं के लिए संसाधन अंतराल बड़ी समस्याओं में से एक है। चालू व्यय का अधिकांश भाग केवल वेतन संदाय के रूप में है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अतिरिक्त पूंजी व्यय अध्यापक-उत्पादकता में सारभूत रूप से वृद्धि करेगा, क्योंकि अन्य शीर्षों पर व्यय के अभाव में स्टाफ का उपयोग भी निम्न स्तर पर रहता है।" यह महसूस किया जाता है कि अंततः यह संसाधनों का प्रश्न है और संसाधनों के मामले में (हिसाब से), यह देश अच्छी स्थिति में नहीं है। केवल यही कहा जा रहा है कि उपलब्ध संसाधनों को आबंटित करते समय, अनुच्छेद 45 और 46 में संविधान-निर्माताओं के बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। ऐसा नहीं है कि न्यायालय उच्चतर शिक्षा के महत्व से अवगत नहीं है। कदाचित् जिस चीज की आवश्यकता है, वह है शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों के बीच समुचित संतुलन का कायम रखा जाना। (पैरा 147)

शिक्षा के अधिकार से यह भी अभिप्रेत है कि नागरिक को राज्य से, उसकी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की परिसीमाओं के अंदर उसे शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था करने की अपेक्षा करने का अधिकार प्राप्त है। ऐसा कह कर, अनुच्छेद 41 को भाग 4 से भाग 3 के लिए अंतरित नहीं किया जा रहा है — केवल अनुच्छेद 21 से उद्भूत होने वाले शिक्षा के अधिकार की अंतर्वस्तु को स्पष्ट करने के लिए ही अनुच्छेद 41 का अवलंब लिया गया है। यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि कोई राज्य यह कहेगा कि उसे अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की परिसीमाओं के अंतर्गत रहते हुए भी, अपने लोगों को शिक्षा की व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है। यह कहना अनावश्यक है कि आर्थिक सामर्थ्य की परिसीमाएं, सामान्यतः, राज्य के आत्मपरक समाधान के अंतर्गत आने वाले विषय हैं। (पैरा 148)

उपर्युक्त प्रतिपादना के प्रकाश में (को देखते हुए), याचियों के विद्वान काउंसेल द्वारा व्यक्त की गई यह आशंका निराधार मानी जानी चाहिए कि अनुच्छेद 21 में शिक्षा के अधिकार को पढ़ने से यह न्यायालय इस देश के प्रत्येक नागरिक को ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए, जैसी वह चाहता है राज्य को बाध्य करने हेतु न्यायालय का अवलंब लेने के लिए समर्थ बनाएगा। निःशुल्क शिक्षा का अधिकार केवल बालकों को ही उपलब्ध है, जब तक कि वे 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेते हैं। तत्पश्चात् राज्य की शिक्षा की व्यवस्था करने की बाध्यता उसकी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की परिसीमाओं के अध्यधीन है। वास्तव में, न्यायालय द्वारा कोई नई चीज नहीं कही जा रही है। (पैरा 149)

यहां यह भी जोड़ना उचित होगा कि केवल इस कारण कि अनुच्छेद 21 में सन्निहित शिक्षा के अधिकार के प्राचलों (पैरामीटरों) का पता लगाने के लिए नीति के निदेशक तत्वों में से कुछ का अवलंब लिया है, स्वतः यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि भाग 4 में निर्दिष्ट प्रत्येक बाध्यता स्वतः अनुच्छेद 21 की परिधि के अंतर्गत आ जाती है। उसके अंतर्निहित आधारभूत महत्व के कारण, जीवन के अधिकार में शिक्षा के अधिकार को विवक्षित माना गया है। वस्तुतः केवल उक्त अधिकार के प्राचलों को अवधारित करने के लिए ही अनुच्छेद 41, 45 और 46 के प्रति निर्देश किया गया है। (पैरा 150)

वह ठोस वास्तविकता, जो इस स्थिति से उद्भूत होती है, यह है कि वर्तमान संदर्भ में प्राइवेट शिक्षा-संस्थाएं "आवश्यकता" हैं। उनके बिना काम चलाना सम्भव नहीं है, क्योंकि सरकारें विशेष रूप से चिकित्सीय और तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में मांग को पूरा करने की स्थिति में नहीं हैं, जो सारभूत व्यय की अपेक्षा करती है। शिक्षा भारतीय राज्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृत्यों में से एक है; तथापि उसका उस पर एकाधिकार नहीं है। प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को भी, जिनमें अल्पसंख्यक शिक्षा-संस्थाएं सम्मिलित हैं, अपनी भूमिका निभानी हैं। (पैरा 161)

प्राइवेट शिक्षा-संस्थाएं सहायता प्राप्त और गैर-सहायता प्राप्त हो सकती हैं। सरकार द्वारा दी गई सहायता शत प्रतिशत या आंशिक हो सकती हैं। जहां तक सहायता प्राप्त संस्थाओं का संबंध है, यह स्पष्ट है

कि उन्हें उन सभी नियमों और विनियमों का पालन करना होता है, जो सरकार द्वारा और/या मान्यता प्रदान करने वाले/सहबद्ध करने वाले प्राधिकारियों द्वारा शिक्षकों और अन्य स्टाफ की भर्ती, उनकी सेवा शर्तों, पाठ्य-विवरण और शिक्षण के स्तर आदि के विषय में, उन्हें योग्यता और केवल योग्यता के नियम का ही अनुसरण करना होता है — अनुच्छेद 15 के अधीन किए गए किन्हीं आरक्षण के अधीन। वे सरकारी संस्थाओं में समान पाठ्यक्रमों के लिए प्रभारित की जाने वाली फीस से उच्चतर फीस प्रभारित करने के लिए हकदार नहीं होंगी। ये सहायतानुदान की शर्तें हैं और मानी जाएंगी। उसका कारण सीधा-सादा और स्पष्ट हैः लोक निधियां, जब वे अनुदान के रूप में दी जाती हैं, न कि उधार के रूप में जहां कहीं भी वे जाती हैं, लोक स्वरूप साथ लिए चलती हैं, लोक निधियां प्राइवेट प्रयोजनों के लिए दान में नहीं दी जा सकती हैं। लोक स्वरूप के तत्व से अनिवार्यतः अनुच्छेद 14 और 15 के सांविधानिक आदेश के अनुरूप, सभी क्षेत्रों में ऋजु आचरण अभिप्रेत है। सभी सरकारें और शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देने के भारसाधक प्राधिकारी अभिव्यक्त रूप से (अन्य शर्तों के साथ-साथ) ऐसी शर्तों का उपबंध करेंगे, यदि उनका पहले ही उपबंध नहीं किया गया हो, और उनके अनुपालन को सुनिश्चित करेंगे। पुनः, सहायता के अनेक रूप हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, चिकित्सा महाविद्यालय को अनिवार्यतः अस्पताल की आवश्यकता होती है। यह बताया गया है कि 100 स्थान वाले चिकित्सा महाविद्यालय के लिए पूर्णतः सज्जित 700 बिस्तर वाला अस्पताल अवश्य ही होना चाहिए। केवल तभी चिकित्सा-महाविद्यालय को कृत्य करने की अनुज्ञा दी जा सकती है। प्राइवेट चिकित्सा-महाविद्यालय स्वयं अपना अस्पताल स्थापित करने की स्थिति में हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। वह सरकार से अनुरोध कर सकता है और सरकार उसे महाविद्यालय के प्रयोजन के लिए सरकारी अस्पताल की सेवा का मुफ्त फायदा उठाने के लिए अनुज्ञात कर सकती है। यह भी सहायता का एक रूप होगा और पूर्वोक्त शर्तों को अधिरोपित किया जाना है— हो सकता है कि प्रभार्य फीस के विषय में कुछ ढील के साथ— और उनका अनुपालन किया जाना है। सरकारें (केन्द्रीय और राज्य) और सहायता प्रदान करने वाले अन्य सभी प्राधिकारी/प्राधिकरण तुरन्त ऐसी शर्तें अधिरोपित करेंगे, यदि उन्हें पहले ही अधिरोपित नहीं किया गया है। ये शर्तें विद्यमान और प्रस्थापित, दोनों ही प्रकार की, प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं को लागू होंगी। (पैरा 162)

जहां तक गैर-सहायता प्राप्त संस्थाओं का संबंध है, यह स्पष्ट है कि उन्हें उसी फीस को प्रभारित करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, जो सरकारी संस्थाओं में प्रभारित की जाती हैं। यदि वे ऐसा स्वैच्छिक रूप से करती हैं, तो उनका यह कार्य पूर्णतः अभिनन्दनीय है किंतु उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है और उसका सीधा-सादा कारण यह है कि उन्हें स्वयं अपने संसाधनों से ही शिक्षा प्रदान करने का खर्च पूरा करना होता है— और दान/खैरात के अतिरिक्त, यदि कोई हो, मुख्य स्रोत छात्रों से संगृहीत फीस ही हो सकता है। यहीं स्ववित्तपोषित शिक्षा-संस्थाओं और व्यय आधारित शिक्षा-संस्थाओं की संकल्पना सामने आती है। इस स्थिति से अनेक कठिन समस्याएं उत्पन्न होती हैं। शिक्षा का व्यय किस प्रकार अवधारित किया जा सकता है और उसे किस प्रकार और किसके द्वारा विनियमित किया जा सकता है। शिक्षा का व्यय एक ही संकाय के अंदर अलग-अलग संस्थाओं में अलग-अलग हो सकता है। उपबंधित सुविधाएं, उपस्कर, अव-संरचना, उपलब्ध शिक्षा का मानक और गुणवत्ता अलग-अलग संस्थाओं में अलग-अलग हो सकती हैं। निश्चित रूप से न्यायालय ऐसा नहीं कर सकता है। ऐसा सरकार या विश्वविद्यालय या ऐसे अन्य प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा ही किया जाना चाहिए, जिसे इस संबंध में अभिहित किया जाए। तथापि, कुछ प्रश्न उद्भूत होते हैं — क्या व्यय आधारित शिक्षा से केवल संस्था चलाने के प्रभार ही अभिप्रेत हैं या उसके अंतर्गत पूंजी-व्यय भी सम्मिलित किया जा सकता है। प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना, विस्तार और सुधार/विविधीकरण के लिए किसे संदाय करने के लिए कहा जा सकता है। क्या कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का निकाय विचार रखने वाले छात्रों से पहले रकमें संगृहीत कर सकते हैं (चाहे उन्हें कोई भी नाम दिया जाए) और उक्त धन से कोई संस्था स्थापित कर सकते हैं— जो नगरों में घरों का निर्माण करने के कार्य के समान एक क्रियाकलाप है। बाद के वर्षों में आने वाले छात्रों को कितना संदाय करना चाहिए। प्रत्येक संस्था के अर्थतंत्र को किसे कार्यान्वित करना चाहिए। किसी भी प्रतिपादित समाधान में इन सभी विभिन्न बातों को ध्यान में रखा जाना है। किंतु एक बात स्पष्ट हैः शिक्षा का वाणिज्यीकरण अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है और उसे अनुज्ञात किया भी नहीं जाना चाहिए। संसद् और राज्य विधानमण्डलों में इस बात को असंदिग्ध शब्दों में अभिव्यक्त किया है। अपनी परम्परा को देखते हुए और सामान्य प्रयोजन के हित के दृष्टिकोण से भी, वाणिज्यीकरण निश्चय ही हानिकर है; वह लोक नीति के विरुद्ध है। जैसा कि उपदर्शित किया जाएगा, यह अभिनिर्धारित करने का कि शिक्षा की व्यवस्था करना व्यवसाय, व्यापार, कारबार या वृत्ति नहीं हो सकता है, यह एक कारण है अब प्रश्न यह है कि उन्हें शिक्षा का वाणिज्यीकरण करने के लिए अनुज्ञात किए बिना, प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं को किस प्रकार प्रोत्साहित किया जा सकता है। यही वह कठिन प्रश्न है जो, इस समय समाज, सरकार और न्यायालयों के समक्ष कठिनाई उपस्थित कर रहा है। (पैरा 163)

यद्यपि इस प्रश्न पर कोई राय व्यक्त नहीं की जा रही है कि क्या शिक्षा-संस्था स्थापित करने के अधिकार के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह अनुच्छेद 19(1)(छ) के अर्थान्तर्गत कोई वृत्ति करने का अधिकार भी है, कदाचित् ऐसा ही है; तथापि, न्यायालय की यह निश्चित राय है कि ऐसा कार्यकलाप अनुच्छेद 19(1)(छ) के अर्थान्तर्गत न तो व्यापार या कारबार हो सकता है और न वह वृत्ति ही हो सकता है। सामान्य व्यापार या कारबार से लाभ हेतु से चलाए जाने वाले कार्यकलाप का बोध होता है इस देश में शिक्षा कभी भी वाणिज्य नहीं रही है। उसको वाणिज्य बनाना इस राष्ट्र के आचार, परम्परा और विवेक समझबूझ के विरुद्ध होगा। इसके विपरीत तर्क में अपवित्रता का पुट है। इस देश में अनादिकाल से शिक्षा को कभी भी व्यापार या कारबार नहीं माना गया है। उसे धार्मिक कर्तव्य माना गया है। उसे मूर्त कार्यकलाप माना गया है, किंतु व्यापार या कारबार कभी भी नहीं। न्यायालय न्या० गजेन्द्र गडकर के इस मत से सहमत हैं कि शिक्षा अपने सही रूप में सेवा भाव है, न कि वृत्ति या व्यापार या कारबार, चाहे दोनों पश्चात्वर्ती शब्दों का अर्थ कितना ही व्यापक क्यों न हो (देखें दिल्ली विश्वविद्यालय वाला मामला)। संसद ने भी (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद्

अधिनियम और ए० आई० ई० सी० टी० ई० एफ० अधिनियमित करके) बार-बार अपना यह आशय व्यक्त किया है कि शिक्षा का वाणिज्यीकरण अनुज्ञेय नहीं है और किसी भी व्यक्ति को, अपनी आर्थिक शक्ति के कारण अधिक योग्य अभ्यर्थी से अधिक लाभ उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु विधानमण्डलों द्वारा भी कैपिटेशन फीस के प्रभारित किए जाने को प्रतिषिद्ध करते हुए, अपनी-अपनी अधिनियमितियों की उद्देशिकाओं में यही आशय व्यक्त किया गया है। (पैरा 164)

अतः आर० एम० डी० सी० बनाम मुम्बई राज्य, (1957 एस० सी० आर० 874) वाले मामले में के तर्काधार को अपनाते हुए, न्यायालय की यह राय है कि शिक्षा प्रदान करने के कार्य को व्यापार या कारबार नहीं माना जा सकता है। शिक्षा को वाणिज्य के रूप में संपरिवर्तित नहीं होने दिया जा सकता है और न याची वृत्ति के व्यापक अर्थ का अवलंब लेकर, उक्त परिणाम प्राप्त करने की ईप्सा ही कर सकते हैं। "वृत्ति" पद की अंतर्वस्तु को, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अभिनिश्चित किए जाना है कि खण्ड (छ) में चार पद अर्थात् "वृत्ति", "उपजीविका", "व्यापार" और "कारबार", प्रयुक्त किए गए हैं उनके क्षेत्र अतिव्यापी हो सकते हैं किंतु उनमें से प्रत्येक की, निश्चय ही, अपनी अंतर्वस्तु है, जो दूसरे की अंतर्वस्तु से भिन्न है। बहरहाल, एक बात स्पष्ट है— शिक्षा प्रदान करने का कार्य वाणिज्य नहीं है और न उसे "वाणिज्य" होने दिया जा सकता है। विद्यमान या भावी, कोई भी विधि, जो उसके (शिक्षा को वाणिज्य बनाने के) विरुद्ध स्थिति सुनिश्चित करती है, अनुच्छेद 19 के खण्ड (6) के अर्थान्तर्गत विधिमान्य उपाय होगी। (पैरा 165)

याचियों के विद्वान् काउंसेल ने अपनी इस दलील के समर्थन में कुछ विनिश्चयों का अवलंब लिया कि शिक्षा-संस्था स्थापित करने का अधिकार अनुच्छेद 19(1) (छ) से उद्भूत होता है। प्रथम विनिश्चय भारत सेवाश्रम संघ बनाम गुजरात राज्य, [1986 (3) एस०सी०आर० 602] वाले मामले में किया गया विनिश्चय है, जो न्या० ई०एस० वेंकटरामैया और न्या० रंगनाथ मिश्र के न्यायपीठ का विनिश्चय है। पृष्ठ 609 पर, गुजरात माध्यमिक शिक्षा अधिनियम की धारा 33 पर विचार करते समय, जिसके द्वारा सरकार को पांच वर्ष से अनधिक अवधि के लिए कुछ स्थितियों में शिक्षा-संस्था को अपने हाथ में लेने के लिए सशक्त किया गया है, विद्वान् न्यायाधीशों ने यह मत व्यक्त किया कि उक्त उपबंध साधारण जनता के हित में जोड़ा गया है और उससे संविधान के अनुच्छेद 19(1) (छ) के अधीन गारण्टीकृत प्रबंध तंत्र के मूल अधिकार पर प्रभाव नहीं पड़ता है। वस्तुतः, इस समय जो विवाद है, वह उक्त विनिश्चय में न तो उठाया गया था और न उस पर विचार ही किया गया था। इसके अतिरिक्त उक्त विनिश्चय में यह नहीं कहा गया है कि वह वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार है या नहीं। उसके पश्चात् बैंगलोर वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड बनाम राजप्पा, [1978 (3) एस०सी०आर० 207] वाले मामले में सात न्यायाधीशों वाले न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया गया है, जिसमें न्या० कृष्ण अय्यर ने औद्योगिक विवाद अधिनियम में "उद्योग" पद के अर्थ पर विचार करते समय, यह मत व्यक्त किया कि शिक्षा-संस्थाएं भी "उद्योग" की परिधि के अंतर्गत आएंगी। एक भिन्न संदर्भ में की गई उक्त मताभिव्यक्ति यहां लागू नहीं हो सकती है। जहां तक महाराष्ट्र राज्य बनाम लोक शिक्षण संस्था, (1971 सप्ली० एस०सी०आर० 879) वाले मामले में किए गए अन्य विनिश्चय का संबंध है, न्यायालय ने केवल यही अभिनिर्धारित किया कि आपात-स्थिति के प्रवर्तन को देखते हुए, शिक्षा-संस्था स्थापित करने की ईप्सा करने वाले याचियों को अनुच्छेद 19 उपलब्ध नहीं है। अनुच्छेद 358 (एक) वर्जन माना गया किंतु उक्त विनिश्चय में यह नहीं कहा गया है कि ऐसा अधिकार याचियों में निहित है। (पैरा 166)

उक्त कार्यकलाप को अनुच्छेद 19(1) (छ) के अर्थान्तर्गत वृत्ति नहीं कहा जा सकता है। "कोई वृत्ति करना" शब्दों की अवेक्षा करना महत्वपूर्ण है। स्पष्टतः निर्देश ऐसी वृत्तियों के प्रति है, जो, नागरिकों, अर्थात् व्यक्तियों द्वारा की जा सकती है (देखें एन०यू०सी० एम्प्लाईज़ बनाम औद्योगिक, अधिकरण, ए०आई०आर० 1962 एस०सी० 1080)। शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना करना कल्पना की किसी उड़ान द्वारा "कोई वृत्ति करना" नहीं माना जा सकता है। शिक्षण "वृत्ति" हो सकता है किंतु शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ नियोजित करते हुए, विद्यालय या महाविद्यालय चलाने के लिए आवश्यक अवसंरचना उपाप्त करते हुए, किसी संस्था की स्थापना करना "वृत्ति करना" नहीं है। यह कुछ भी हो सकता है, किंतु वृत्ति नहीं हो सकता। यहां यह बात अवश्य ही स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि न्यायालय ने इस कारण से "वृत्ति", "उपजीविका", "व्यापार" या "कारबार" पदों के भ्रमित अर्थ और अंतर्वस्तु पर विचार नहीं किया गया है क्योंकि उस दृष्टिकोण को देखते हुए, जो इसमें इसके पश्चात् अपनाया जा रहा है, ऐसा करना आवश्यक नहीं है, जैसा कि आगामी पैराग्राफों से स्पष्ट हो जाएगा। सम्पूर्ण पूर्वगामी विवेचन में मुख्य प्रयोजन केवल यह सिद्ध करना रहा है कि शिक्षा-संस्था स्थापित करने और/या चलाने का कार्यकलाप वाणिज्य का विषय नहीं हो सकता। (पैरा 167)

इन मामलों के प्रयोजन के लिए न्यायालय इस धारणा के आधार पर अग्रसर होगा कि इस देश में किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के निकाय को शिक्षा-संस्था की स्थापना करने का अधिकार प्राप्त है। किंतु यह बात अवश्य ही स्पष्ट कर देनी चाहिए कि यह अधिकार आत्यंतिक अधिकार नहीं है यह ऐसी विधि के अधीन है, जो साधारण जनता के हित में राज्य द्वारा बनाई जाए। (पैरा 168)

तथापि यह बात स्पष्ट कर दी जानी चाहिए, और यह बात बहुत महत्वपूर्ण है, कि शिक्षा-संस्था स्थापित करने के अधिकार से मान्यता का अधिकार या सम्बन्धन (सहबद्ध होने) का अधिकार संलग्न नहीं है। सेंट्स जेवियर्स कालेज बनाम गुजरात राज्य, [(1975) 1 एस०सी०आर० 173] वाले मामले में सभी नौ विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा समान रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सहबद्ध होने का (सम्बन्धन) का कोई मूल अधिकार नहीं है। मु० न्या० राय ने यह कहा कि इस न्यायालय का बराबर यही मत रहा है। उन्होंने इस तथ्य को भी स्वीकार किया कि मान्यता या सम्बन्धन (सहबद्ध होना) शिक्षा-संस्थाएं स्थापित और प्रशासित करने के अधिकार के सार्थक प्रयोग के लिए आवश्यक है। मान्यता, सरकार द्वारा या मान्यता देने के लिए सशक्त किसी अन्य प्राधिकारी/प्राधिकरण निकाय द्वारा प्रदान की जा सकती है। इसी प्रकार, सम्बन्धन (सहबद्ध करना/होना) विश्वविद्यालय द्वारा या अन्य शिक्षा-संस्थाओं को सहबद्ध

(सम्बद्ध) करने के लिए सशक्त किसी अन्य शैक्षणिक या अन्य निकाय द्वारा (मंजूर) किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी व्यक्ति को शिक्षा-संस्था स्थापित करने, छात्रों को प्रवेश देने, शिक्षा प्रदान करने, परीक्षा आयोजित करने और उन्हें प्रमाणपत्र देने का अधिकार प्राप्त है। किंतु उसे या शिक्षा-संस्था को इस बात का आग्रह करने का कोई अधिकार नहीं है कि ऐसी संस्था द्वारा दिए गए प्रमाणपत्रों या उपाधियों की (यदि उन्हें ऐसा कहा जा सकता है) राज्य द्वारा मान्यता प्रदान की जानी चाहिए — यह कहने का अधिकार तो उन्हें बिल्कुल भी प्राप्त नहीं है कि संस्था द्वारा प्रशिक्षित छात्रों को, यथास्थिति, विश्वविद्यालयों द्वारा या सरकार द्वारा या किसी अन्य प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा आयोजित परीक्षाओं में प्रवेश दिया जाना चाहिए। संस्था को समुचित अभिकरण से ऐसी मान्यता या सम्बन्धन (सहबद्ध होना/करना) की ईप्सा करनी होती है। मान्यता और/या सम्बन्धन की मंजूरी सामान्य अनुक्रम का विषय नहीं है और न वह कोई औपचारिकता (प्ररूपिकता) ही है। विश्वविद्यालय के विशेषाधिकारों की स्वीकृति की शक्ति का, सामान्य जनता और राष्ट्र के हित को ध्यान में रखते हुए, अत्यंत सावधानी के साथ प्रयोग किया जाना होता है, यह सारभूत महत्व का विषय है—वह प्राइवेट शिक्षा-संस्था का प्राण ही है। सामान्यतः कोई शिक्षा-संस्था तब तक नहीं चल सकती है या जीवित नहीं रह सकती है, जब तक कि उसे सरकार द्वारा या समुचित प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा मान्यता प्रदान नहीं की जाती है और/या वह देश के किसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध नहीं की जाती है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, जब तक उसे मान्यता प्रदान नहीं की जाती है, और/या सम्बद्ध नहीं किया जाता है, उसके प्रमाणपत्रों का कोई उपयोग नहीं होगा। कोई भी व्यक्ति ऐसी शिक्षा-संस्था में प्रवेश नहीं लेगा। वस्तुतः, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उपबंधों के आधार पर, जिनकी ऊपर अवेक्षा की जा चुकी है, इस देश की कोई भी शिक्षा-संस्था, विश्वविद्यालय को छोड़कर, उपाधियां देने के लिए हकदार नहीं हैं। इसी कारण से सभी प्राइवेट शिक्षा-संस्थाएं, उन्हें सरकार/विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परीक्षाओं में बैठने के लिए उनके द्वारा प्रशिक्षित छात्रों को भेजने हेतु समर्थ बनाने के उद्देश्य से मान्यता और/या सम्बन्धन की ईप्सा करती हैं। उसमें यही भाव निहित है कि यदि ऐसे छात्र उक्त परीक्षा उत्तीर्ण कर लेते हैं, तो सरकार/विश्वविद्यालय उन्हें अपनी उपाधि/डिप्लोमा/प्रमाणपत्र प्रदान करेगी/करेगा। ये शिक्षा-संस्थाएं सरकार/विश्वविद्यालय द्वारा विहित पाठ्य-विवरण का अनुसरण करती हैं, उनके वही पाठ्यक्रम होते हैं और वे शिक्षण और प्रशिक्षण की उसी पद्धति का अनुसरण करती हैं। वे अपने छात्रों को विश्वविद्यालय/सरकार द्वारा आयोजित परीक्षाओं के लिए तैयार करती हैं। विश्वविद्यालय/सरकार से उन्हें उनके द्वारा आयोजित परीक्षाओं में बैठने हेतु अनुज्ञा देने और उन्हें समुचित उपाधियां देने का अनुरोध करती हैं। स्पष्टतः और असंदिग्ध रूप से, मान्यताप्राप्त/सम्बद्ध प्राइवेट शिक्षा-संस्थाएं राज्य की संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले कृत्य को ही पूरा करती हैं। उनका कोई स्वतंत्र कार्यकलाप नहीं होता है, बल्कि उनका कार्यकलाप राज्य के कार्यकलाप से सहबद्ध और उसका पूरक होता है। उपर्युक्त परिस्थितियों में, यह दलील देना निरर्थक है कि शिक्षा प्रदान करना किसी अन्य कारबार के समान ही एक कारबार है या वह सड़क-निर्माण, सेतु-निर्माण आदि जैसे किसी अन्य कार्यकलाप के समान ही है। संक्षेप में, स्थिति इस प्रकार है—विश्वविद्यालय को छोड़कर कोई भी शिक्षा-संस्था उपाधियां प्रदान नहीं कर सकती हैं। (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 22 और 23)। प्राइवेट शिक्षा-संस्थाएं अपनी उपाधियां नहीं दे सकतीं। यदि वे अपने प्रमाणपत्र या अन्य शंशा-पत्र देती भी हैं, तब भी उनका व्यावहारिक महत्व नहीं है, क्योंकि वे राज्य के अधीन नियोजन अभिप्राप्त करने या उच्चतर पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने के लिए मान्य नहीं है। प्राइवेट शिक्षा-संस्थाएं केवल लोगों को शिक्षित करने के राज्य के प्रयास को ही पूरा करती हैं, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। वह कोई स्वतंत्र कार्यकलाप नहीं है। वह राज्य द्वारा चलाए जाने वाले प्रधान कार्यकलाप का पूरक कार्यकलाप ही है। कोई भी प्राइवेट शिक्षा-संस्था मान्यता और/या सम्बन्धन के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकती है। वे निकाय, जो मान्यता और/या संबंधन देते हैं, राज्य के प्राधिकरण हैं। ऐसी स्थिति में, सामान्य जनता के हित में मान्यता या सम्बन्धन प्रदान करने वाले प्राधिकारी के लिए ऐसी शर्तों पर जोर देना बाध्यकर है, जो न केवल अपेक्षित स्तर (मानक) की शिक्षा को सुनिश्चित करने बल्कि छात्रों के प्रवेश, कर्मचारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों की विषय में ऋजुता और समान व्यवहार को सुनिश्चित करने के लिए उचित हों। चूंकि मान्यता प्रदान करने वाला/ सम्बन्धन प्रदान करने वाला प्राधिकरण राज्य है, अतः वह संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा उसके लिए व्यादिष्ट कर्तव्य के भाग के रूप में ऐसी शर्त अधिरोपित करने के लिए बाध्यताधीन है। वह स्वयं अपनी शक्ति या विशेषाधिकार का अऋजुतापूर्ण प्रयोग नहीं कर सकता है और न किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसा किए जाने की अनुज्ञा ही दे सकता है। मुख्य कार्यकलाप से संलग्न प्रसंगतियां पूरक कार्यकलाप से भी संलग्न होती हैं। सम्बन्धन/मान्यता देने का कार्य ऐसा कार्य नहीं है, जो कोई भी व्यक्ति मुफ्त या बिना शर्त प्राप्त कर सकता है। किसी भी सरकार, प्राधिकरण या विश्वविद्यालय का, ऐसी शर्तें अधिरोपित किए बिना, मान्यता/सम्बन्धन प्रदान करना न्यायोचित नहीं है और न वह ऐसा करने के लिए हकदार ही है। ऐसा करने का अर्थ भाग 3 द्वारा उसके लिए व्यादिष्ट बाध्यताओं का अधित्यजन करना होगा। उसका यह कार्यकलाप असंवैधानिक और अवैध वर्णित किए जाने के लिए दायी है। इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि जो चीज मुख्य कार्यकलाप को लागू होती है, वह पूरक कार्यकलाप को भी उसी प्रकार लागू होती है। राज्य अनुच्छेद 14 और 15 से उद्भूत होने वाली बाध्यताओं से उन्मुक्ति का दावा नहीं कर सकता है। यदि ऐसा है, तो वह सहबद्ध करने वाली संस्थाओं को ऐसी उन्मुक्ति प्रदत्त नहीं कर सकता है। तदनुसार, हाजिर होने वाले काउंसेलों की सहायता से और इसमें इससे पूर्व निर्दिष्ट अनेक केन्द्रीय और राज्य अधिनियमितियों की निश्चयात्मक (सकारात्मक) बातों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने एक स्कीम तैयार की है जिसे मान्यता/सम्बन्धन प्रदान करने वाला प्रत्येक प्राधिकरण ऐसी मान्यता/सम्बन्धन की ईप्सा करने वाली संस्थाओं पर अधिरोपित करेगा।

इस स्कीम में निहित भाव प्रवेश के विषय में प्रबंधतंत्र के विवेकाधिकार को पूर्णतः समाप्त करना है। प्रवेश के विषय में यह विवेकाधिकार ही अनेक बुराइयों की जड़ है, जिनके बारे में शिकायतें की गई हैं। इसी विवेकाधिकार के परिणामस्वरूप मुख्यतः शिक्षा का वाणिज्यीकरण हुआ है। "कैपिटेशन फीस" से विधि द्वारा अनुज्ञात फीस से

अधिक रकम प्रभारित करना या संगृहीत करना अभिप्रेत है; इस पद को सभी अधिनियमों में इसी अर्थ में परिभाषित किया गया है। ऐसी स्थिति लाने का प्रयास करना चाहिए, जिसमें प्रबंधतंत्र के लिए या उसकी ओर से किसी व्यक्ति के लिए अनुज्ञात फीस से अधिक किसी रकम की मांग करने या संग्रहण करने की कोई गुंजाइश न रहे। यह बात अवश्य ही स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं द्वारा अनुज्ञात फीस प्रभारित करना—जो समान सरकारी संस्थाओं में प्रभारित की जाने वाले फीस की तुलना में अधिक होगी ही—स्वतः कैपिटेशन फीस के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है। कैपिटेशन फीस को प्रतिषिद्ध करने वाली चारों राज्य अधिनियमितियों में यही नीति निहित है। उन सब में प्राइवेट शिक्षा-तंत्र संस्थाओं द्वारा उच्चतर फीस प्रभारित करने की आवश्यकता को मान्यता प्रदान की गई है। उनमें उस फीस को विनियमित करने की ईप्सा की गई है, जो उनके द्वारा प्रभारित की जा सकती है—जिसे अनुज्ञात फीस का नाम दिया जा सकता है—और उन्हें अनुज्ञात फीस से अधिक किसी रकम को संगृहीत करने से वर्जित करने की ईप्सा की गई है, जिससे कैपिटेशन फीस अभिप्रेत है। (पैरा 169)

वस्तुतः धारा 3-क अधिनियम के अन्य उपबंधों के अपवाद के रूप में है। उसमें यह कहा गया है कि धारा 3 में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो इस संबंध में सरकार द्वारा विरचित किए जाएं, उसमें वर्णित प्रकार की प्राइवेट शिक्षा-संस्थाएं छात्रों को, ऐसे अभ्यर्थियों में से आधे स्थानों की संख्या तक प्रवेश देने के लिए हकदार होंगी, जिन्होंने यथास्थिति, सामान्य प्रवेश परीक्षा या अर्हक परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर ली हो। इस कथन की दो महत्वपूर्ण बातें हैं, अर्थात् (1) ऐसे छात्रों का प्रवेश इस बात पर विचार किए बिना हो सकता था कि उन्हें यथास्थिति, सामान्य प्रवेश परीक्षा या अन्य अर्हक परीक्षा में कौन-सा स्थान प्राप्त हुआ है; (2) यह बात स्पष्ट की गई है कि धारा 5 की कोई भी बात ऐसे प्रवेशों को लागू नहीं होंगी। यहां यह स्मरण कराना उचित होगा कि धारा 3 में यह उपबंध किया गया है कि सभी प्रवर्गों में प्रवेश पूर्णतः योग्यता के अनुसार किए जाने हैं। उक्त धारा का समग्र रूप से परिशीलन करने पर निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं—(क) प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं को उतनी रकम प्रभारित करने का अधिकार प्राप्त है, जितनी वे प्रवेश हेतु प्रभारित कर सकते हों। यह संस्था और प्रवेश चाहने वाले छात्र के बीच सौदेबाजी का विषय है। (ख) प्रवेश, संदाय करने वाले छात्रों की परस्पर योग्यता के प्रति निर्देश किए बिना किया जा सकता है। संस्था ऐसी विचारणाओं के आधार पर, जैसी वह ठीक समझे, आवेदकों में से अभ्यर्थियों को चयन करने के लिए हकदार है। (ग) धारा 5, जिसमें किसी शिक्षा-संस्था द्वारा कैपिटेशन फीस का संग्रहण प्रतिषेध किया गया है, ऐसे प्रवेशों को, अभिव्यक्त रूप से, लागू नहीं होगी। ऐसा निष्प्रयोजन (प्रयोजन के बिना) नहीं है। उसका प्रयोजन संस्थाओं को उतनी रकम प्रभारित करने के लिए अनुज्ञात किया गया है, जितनी वे निहित ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) के संग्रहण के अतिरिक्त प्रभारित कर सकती हैं। (पैरा 173)

इसमें इससे पूर्व यह अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं का शैक्षणिक कार्यकलाप राज्य के मुख्य प्रयास का पूरक प्रयास है और जो चीज मुख्य कार्यकलाप को लागू होती है, वह पूरक कार्यकलाप को भी उसी प्रकार लागू होती है। यदि संविधान का अनुच्छेद 14 राज्य संस्थाओं को लागू होता है—और निस्संदेह वह लागू होता है—और उन्हें योग्यता के आधार पर और केवल योग्यता के आधार पर ही (निस्संदेह अनुज्ञेय सीमाओं के अधीन रहते हुए—और यहां भी परस्पर-योग्यता के सिद्धांत का अनुसरण किया जाना है) छात्रों को प्रवेश देने के लिए बाध्य करता है, तो अनुच्छेद 14 की उपयोज्यता (लागू होना) को पूरक प्रयास/कार्यकलाप से अपवर्जित नहीं किया जा सकता है। अतः राज्य विधानमण्डल को यह कहने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है कि प्राइवेट शिक्षा-संस्था, योग्यता का विचार किए बिना, अपनी पसंद के छात्रों को प्रवेश देने के लिए हकदार होगी या वह उतनी रकम प्रभारित करने के लिए हकदार है, जितनी वह कर सकती है; जिसका अर्थ यह होगा कि उसे शोषण करने की खुली छूट प्राप्त है, और अधिक विशेष रूप से इसका अर्थ शिक्षा का वाणिज्यकरण करना होगा, जो विधि में अनुज्ञेय नहीं है। ऐसी किसी सांविधानिक बाध्यता से ऐसी उन्मुक्ति का कोई दावा नहीं किया जा सकता है और न राज्य विधानमण्डल द्वारा ऐसे उन्मुक्ति दी ही जा सकती है। एकमात्र इसी आधार पर उक्त दावा विखण्डित किए जाने योग्य है। इन परिस्थितियों में न्यायालय के लिए इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या उक्त धारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 12-क के विरुद्ध होने के कारण अविधिमान्य है। यह कहना पर्याप्त है कि उक्त धारा ऊपर दिए गए कारणों से अनुच्छेद 14 का भी उल्लंघन करती है और तदनुसार उसे अविधिमान्य घोषित किया ही जाना चाहिए। इस बात से न्यायालय सहमत है कि धारा 3-क के उल्लंघनकारी भागों को उक्त धारा के मुख्य भाग से अलग नहीं किया जा सकता है और इसलिए संपूर्ण धारा विखंडित किए जाने योग्य है। यह बात न्यायालय की जानकारी में नहीं लाई गई है कि अन्य तीन राज्य, अर्थात् कर्नाटक, तमिलनाडु और महाराष्ट्र, की अधिनियमितियों में भी इसी प्रकार के उल्लंघनकारी उपबंध हैं। वस्तुतः उनमें ऐसे उपबंध नहीं हैं। उनके उपबंधों में से किसी भी उपबंध में यह नहीं कहा गया है कि प्राइवेट शिक्षा-संस्था का प्रबंधतंत्र "ऐसे परीक्षण (प्रवेश-परीक्षा) या परीक्षा में उन्हें दिए गए क्रम का विचार किए बिना", "संदाय-स्थानों" पर छात्रों को प्रवेश दे सकता है। उनका यह कहना तो बिल्कुल भी नहीं है कि ऐसे प्रवेशों को कैपिटेशन फीस प्रतिषिद्ध करने वाला उपबंध लागू नहीं है। यह सच है कि उनमें यह बात अभिव्यक्त रूप से नहीं कही गई है कि ऐसे प्रवेश योग्यता के आधार पर किए जाएंगे, किन्तु यह बात उनमें विवक्षित है। यदि तद्धीन जारी की गई अधिसूचनाओं या आदेशों में अन्यथा उपबंध किया गया है, अभिव्यक्त रूप से या विवक्षा द्वारा, तो वे भी उपर्युक्त कारणों से उसी प्रकार अविधिमान्य होगी। (पैरा 174)

अब जबकि धारा 3-क को विखंडित कर दिया गया है, तो यह प्रश्न उद्भूत होता है कि उन छात्रों का क्या होगा, जिन्हें इस राज्य में प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालयों द्वारा उपलब्ध स्थानों के 50 प्रतिशत की सीमा तक स्वविवेकानुसार प्रवेश दिया गया था। उच्च न्यायालय ने इन प्रवेशों को अविधिमान्य घोषित किया है किन्तु वे इस न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए रोक आदेश के आधार पर अब भी अध्ययन जारी रखे हुए हैं। एक तथ्य, जो इस संबंध में ध्यान में अवश्य ही रखा जाना चाहिए, यह है कि पूर्व वर्ष तक, आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा इन प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालयों को, उन्हें आबंटित सभी छात्रों से उच्चतर फीस संगृहीत करने

की अनुज्ञा देती रही है। (संगृहीत किए जाने के लिए अनुज्ञात फीस गत वर्ष के लिए प्रतिवर्ष दस हजार रुपए थी)। निस्संदेह, सभी उपलब्ध स्थान सामान्य प्रवेश परीक्षा के आयोजक द्वारा आबंटित छात्रों द्वारा भरे गए थे; किसी भी छात्र को इन महाविद्यालयों द्वारा स्वयं अपनी ओर से प्रवेश नहीं दिया जा सका। अब, चालू वर्ष के लिए, इन महाविद्यालयों ने स्वविवेकानुसार पचास प्रतिशत छात्रों को प्रवेश दिया—जिसका अनिवार्यतः यह अर्थ हुआ है कि उन्होंने अपने निजी कारणों से कैपिटेशन फीस का संग्रहण किया और/या मनमाने ढंग से प्रवेश दिया। इसके साथ ही, ये महाविद्यालय आयोजक द्वारा आबंटित छात्रों से और स्वयं उनके द्वारा प्रवेश दिये गये छात्रों से भी वही फीस (प्रति वर्ष दस हजार रुपए) संगृहीत करते रहे हैं। इस प्रकार उन्होंने दोहरा फायदा उठाया है। (पैरा 175)

उपर्युक्त कारणों से रिट याचिकाओं और सिविल अपीलों का, रिट याचिका (सिविल) सं॰ 855/1992, सिविल अपील सं॰ 3573/1992 और विशेष अनुमति याचिका सं॰ 13913/1992 और 13940/1992 से उद्भूत होने वाली सिविल अपीलों को छोड़कर, निम्नलिखित रीति में निपटारा किया जाता है—(1) इस देश के नागरिकों को शिक्षा का मूल अधिकार प्राप्त है। उक्त अधिकार अनुच्छेद 21 से उद्भूत होता है। तथापि यह अधिकार आत्यंतिक अधिकार नहीं है। उसकी अंतर्वस्तु और प्राचलों को अनुच्छेद 45 और 41 के प्रकाश में अवधारित किया जाना है। दूसरे शब्दों में, इस देश के प्रत्येक बालक/नागरिक को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क शिक्षा का अधिकार प्राप्त है। तत्पश्चात् शिक्षा का उसका अधिकार राज्य की आर्थिक सामर्थ्य (क्षमता) और विकास की परिसीमाओं के अध्यधीन है। (2) संविधान के अनुच्छेद 41,45 और 46 द्वारा सर्जित बाध्यताओं का राज्य द्वारा स्वयं अपनी ओर से संस्थाएं स्थापित करके या प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं की सहायता करके, मान्यता प्रदान करके और/या सम्बन्धन प्रदान करके निर्वहन किया जा सकता है। जहां प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं को सहायता नहीं दी जाती है और केवल मान्यता या सम्बन्धन ही प्रदान किया जाता है; वहां इस बात पर जोर नहीं दिया जा सकेगा कि प्राइवेट शिक्षा-संस्था केवल वही फीस प्रभारित करेगी, जो सरकारी संस्थाओं में समान पाठ्यक्रमों के लिए प्रभारित की जाती है। प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं को इस संबंध में नियत अधिकतम सीमा से अनधिक, उच्चतर फीस प्रभारित करनी होती है और वे ऐसा करने के लिए हकदार भी हैं। इन प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं में छात्रों के प्रवेश और फीस प्रभारित करने के अधिकार को इस निर्णय के भाग 3 में यथा-उपवर्णित, इसमें तैयार की गई स्कीम लागू होगी। (3) इस देश के नागरिक को शिक्षा-संस्था स्थापित करने का अधिकार प्राप्त हो सकता है किंतु किसी भी नागरिक, व्यक्ति या संस्था को राज्य की ओर से मान्यता या सम्बन्धन या सहायतानुदान का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है, मूल अधिकार का तो कोई प्रश्न ही नहीं। राज्य द्वारा मान्यता और/या सम्बन्धन केवल इस निर्णय के भाग 3 में अंतर्विष्ट स्कीम में वर्णित शर्तों के अध्यधीन और उनके अनुसार ही दिया जाएगा। कोई भी विश्वविद्यालय या प्राधिकारी/प्राधिकरण उक्त स्कीम के अनुसार ही मान्यता या सम्बन्धन प्रदान करने के लिए सक्षम होगा, अन्यथा नहीं। उक्त स्कीम, ऐसी अन्य शर्तों और निबंधनों के अतिरिक्त, जिन्हें ऐसी सरकार, विश्वविद्यालय या अन्य प्राधिकारी/प्राधिकरण अधिरोपित करना चाहे, यथास्थिति, ऐसी मान्यता या सम्बन्धन की शर्त गठित करेगी। तथापि, सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षा-संस्थाएं ऐसे सभी निबंधनों और शर्तों के अधीन होंगी। जिन्हें सहायता देने वाला प्राधिकारी/प्राधिकरण सामान्य जनता के हित में अधिरोपित करे। (4) आंध्र प्रदेश शिक्षा संस्थाएं (प्रवेश का विनियमन और कैपिटेशन फीस का प्रतिषेध) अधिनियम, 1983 की धारा 3-क से अनुच्छेद 14 में सन्निविष्ट समता खंड का उल्लंघन होता है और तद्नुसार उसे शून्य घोषित किया जाता है। इस संबंध में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की घोषणा की पुष्टि की जाती है। (5) रिट याचिका सं॰ 855/1992 खारिज की जाती है। 1992 की सिविल अपील सं॰ 3573 मंजूर की जाती है और आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। मुख्य रिट याचिका का, जिसमें उक्त अंतरिम आदेश पारित किया गया है, अब विधि के अनुसार निपटारा किया जा सकता है। (6) विशेष अनुमति याचिका सं॰ 13913/1992 और 13940/1992 से उद्भूत होने वाली सिविल अपीलें (जो उन छात्रों द्वारा फाइल की गई थीं, जिन्हें सामान्य प्रवेश परीक्षा के आयोजक से आबंटन के बिना, आंध्र प्रदेश में प्राइवेट गैर-सहायता प्राप्त इंजीनियरी महाविद्यालयों द्वारा प्रवेश दिया गया था) मंजूर की जाती हैं। ऐसे छात्रों को, जिन्हें शैक्षणिक वर्ष 1992-93 के लिए प्रवेश दिया गया था, उक्त पाठ्यक्रम में अध्ययन जारी रखने के लिए अनुज्ञात किया जाए किंतु प्रबंधतंत्र पैरा 77 में दिए गए निदेशों का अनुपालन करेगा। (पैरा 180)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1992]	ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 616 = (1992) 4 एस॰ सी॰ सी॰ 99=ए॰ आई॰ आर॰1992 एस॰ सी॰ 789: **दिल्ली विकास कृषि उद्यान कर्मचारी संघ** बनाम **दिल्ली प्रशासन, दिल्ली और अन्य;**	42
[1992]	(1992) 1 एस॰ सी॰ सी॰ 558=ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 1630 = ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 1792: **सेंट स्टीफन कालेज** बनाम **दिल्ली विश्व-विद्यालय;**	99
[1992]	ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 1872=[1992] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 225=ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 1701=1992 क्रिमिनल ला जर्नल 2717: **ए॰ आर॰ अंतुले** बनाम **आर॰ एस॰ नायक;**	132, 137
[1992]	(1992)3 एस॰ सी॰ सी॰ 666=ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 2100: **कुमारी मोहिनी जैन** बनाम **कर्नाटक राज्य;**	2, 4, 36, 38, 48, 104, 113, 121, 125, 127, 128, 130क, 131,142, 145, 146, 151, 160

[1992] ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 3142 = (1992)2 स्केल 791 = ए॰आई॰आर॰ 1993 एस॰सी॰ 286:

मध्य प्रदेश राज्य बनाम **प्रमोद भारतीय और अन्य;** 29

[1992] (1992) 3 आंध्र प्रदेश एल॰टी॰ 99 (एफ॰बी॰):

क्रान्ति संग्राम परिषद् बनाम **एन॰ जे॰ रेड्डी;** 113, 121, 172

[1991] (1991) 3 एस॰ सी॰ सी॰ 299 = ए॰ आई॰ आर॰ 1991 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 1329 = ए॰ आई॰ आर॰ 1991 एस॰ सी॰ 1473:

हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड बनाम **ए॰ पी॰ एस॰ ई॰ बी॰;** 97

[1991] ए॰ आई॰ आर॰ 1991 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 1900 = (1990) सप्ली॰ एस॰ सी॰ सी॰ 397=ए॰ आई॰ आर॰ 1990 एस॰ सी॰ 1851:

तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और एक अन्य बनाम **गुजरात के प्राकृतिक गैस का उपभोग करने वाले उद्योगों का संगम और अन्य;** 96

[1990] [1990]1 उम॰ नि॰ प॰ 551=ए॰ आई॰ आर॰ 1989 एस॰ सी॰ 1607 = (1989)2 एस॰ सी॰ सी॰ 691=1989 आई॰ सी॰ 1550:

श्री अनादिमुक्त संदगुरु श्री मुक्तजी वंदस जी॰ स्वामी स्वर्ण जयंती महोत्सव स्मारक न्यास और अन्य बनाम **वी॰ आर॰ रूदानी और अन्य;** 82

[1989] ए॰ आई॰ आर॰ 1989 एस॰ सी॰ 88 = (1989) सप्ली॰ 1 एस॰ सी॰ सी॰ 205=1989 आई॰ सी॰ 1125:

अखिल भारतीय सैनिक विद्यालय कर्मचारी संगम बनाम **सैनिक विद्यालय सोसाइटी;** 79

[1988] [1988] 4 उम॰ नि॰ प॰ 666=(1988)1 एस॰ सी॰ 236=ए॰ आई॰ आर॰ 1988 एस॰ सी॰ 469:

टेकराज वसंदी उर्फ के॰ एल॰ बसंदी बनाम **भारत संघ और अन्य;** 78

[1988] ए॰ आई॰ आर॰ 1988 एस॰ सी॰ 1037=[1988] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 279:

एम॰ सी॰ मेहता बनाम **भारत संघ;** 132

[1988] ए॰ आई॰ आर॰ 1988 एस॰ सी॰ 1700=[1988] सप्ली॰ 1 एस॰ सी॰ आर॰ 604=1989 आई॰ सी॰ 1317:

कुमारी सुन्दरम्बा बनाम **गोवा सरकार;** 66

[1987] [1987]2 एस॰ सी॰ आर॰ 468 = ए॰ आई॰ आर॰ 1987 एस॰ सी॰ 990:

विन्सेन्ट बनाम **भारत संघ;** 132, 137

[1987] (1987)1 आल इंग्लैंड रिपोर्ट 564=(1987)2 डब्ल्यू॰ एल॰ आर॰ 699:

आर॰ बनाम **पैनेल ऑन टेक-ओवर्स;** 84

[1987] [1987]1 उम॰ नि॰ प॰ 715=ए॰ आई॰ आर॰ 1986 एस॰ सी॰ 1999= [1986]3 एस॰ सी॰ आर॰ 628:

केरल राज्य विद्युत बोर्ड बनाम **एस॰ एन॰ गोविन्द प्रभु;** 95

[1986] [1986]1 उम॰ नि॰ प॰ 269=(1985) 3 एस॰ सी॰ सी॰ 545=ए॰ आई॰ आर॰ 1986 एस॰ सी॰ 180 = [1985] सप्ली॰ 2 एस॰ सी॰ आर॰ 51:

ओल्गा टेलिस बनाम **मुम्बई नगर निगम;** 35, 42

[1984] [1984]3 उम॰ नि॰ प॰ 23=(1984)3 एस॰ सी॰ सी॰ 161=[1984] 2 एस॰ सी॰ आर॰ 67=1984 आई॰ सी॰ 560:

बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम **भारत संघ;** 34, 137, 142

[1983] ए॰ आई॰ आर॰ 1983 एस॰ सी॰ 130=1983 आई॰ सी॰ 1:

डी॰ एस॰ नकरा बनाम **भारत संघ;** 137

[1983] ए॰ आई॰ आर॰ 1983 एस॰ सी॰ 1235=[1983]3 एस॰ सी॰ आर॰ 985:

सुमन गुप्ता और अन्य बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य;** 93

[1981] [1981]4 उम॰ नि॰ प॰ 419=[1981]2 एस॰ सी॰ आर॰ 79 = ए॰ आई॰ आर॰ 1981 एस॰ सी॰ 487:

अजय हसिया बनाम **खालिद मुजीब सेहरावर्दी;** 77, 79

[1981] ए॰ आई॰ आर॰ 1981 एस॰ सी॰ 1047=[1981]3 एस॰ सी॰ आर॰ 387=1981 टैक्स ला रिपोर्ट 657:

वरेन्द्र प्रसाद राय बनाम **आयकर आयुक्त;** 63

[1981] [1981]4 उम॰ नि॰ प॰ 1133=ए॰ आई॰ आर॰ 1981 एस॰ सी॰ 746=[1981]2 एस॰ सी॰ आर॰ 516=1981 क्रिमिनल ला जर्नल 306:

फ्रांसिस सी॰ मुल्लिन बनाम प्रशासक, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र; 149

[1981] [1981] 3 उम॰ नि॰ प॰ 146=ए॰ आई॰ आर॰ 1980 एस॰ सी॰ 1789:
मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ; 140

[1981] [1981] 3 उम॰ नि॰ प॰ 1047=ए॰ आई॰ आर॰ 1978 एस॰ सी॰ 215:
कर्नाटक राज्य बनाम रंगनाथ रेड्डी; 140

[1979] [1979] 3 उम॰ नि॰ प॰ 308=ए॰ आई॰ आर॰ 1979 एस॰ सी॰ 65=1978 लेबर इंडस्ट्रीयल केसेज 1657:
यू॰ पी॰ एस॰ सी॰ बोर्ड बनाम हरिशंकर; 140

[1979] [1979] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 532=ए॰ आई॰ आर॰ 1979 एस॰ सी॰ 1369=1979 क्रिमिनल ला जर्नल 1045:
हुसैन आरा खातून वाला मामला; 132

[1979] [1979] 1 उम॰ नि॰ प॰ 82 = [1978] 2 एस॰ सी॰ आर॰ 537 = ए॰ आई॰ आर॰ 1978 एस॰ सी॰ 771:
पाथुम्मा और अन्य बनाम केरल राज्य और एक अन्य; 27, 42

[1979] [1979] 1 उम॰ नि॰ प॰ 243 = ए॰ आई॰ आर॰ 1978 एस॰ सी॰ 597:
मेनका गांधी बनाम भारत संघ; 22, 134

[1979] [1979] 1 उम॰ नि॰ प॰ 1053 = [1978] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 207 = ए॰ आई॰ आर॰ 1978 एस॰ सी॰ 548 = 1978 लेबर आई॰ सी॰ 467:
बैंगलोर वाटर सप्लाई एंड सेवरेज बोर्ड बनाम आर॰ राजप्पा; 65, 66, 166

[1976] [1976] 2 उम॰ नि॰ प॰ 936=[1976] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 906=1979 लेबर आई॰ सी॰ 395 = (1976) 2 एस॰ सी॰ सी॰ 310:
केरल राज्य और एक अन्य बनाम एन॰ एम॰ थोमस और एक अन्य; 41, 42

[1976] [1976] 3 उम॰ नि॰ प॰ 1=[1976] सप्ली॰ एस॰ सी॰ आर॰ 172=ए॰ आई॰ आर॰ 1976 एस॰ सी॰ 1207:
अपर जिला मजिस्ट्रेट बनाम एस॰ एस॰ शुक्ल; 18

[1974] [1974] 2 उम॰ नि॰ प॰ 1303=[1975] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 173=ए॰ आई॰ आर॰ 1974 एस॰ सी॰ 1389:
अहमदाबाद सेंट जेवियर कालेज सोसाइटी बनाम गुजरात राज्य; 73,169

[1973] [1973] 2 उम॰ नि॰ प॰ 159=[1973] सप्ली॰ एस॰ सी॰ आर॰ 1=ए॰ आई॰ आर॰ 1973 एस॰ सी॰ 1461:
केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य; 26, 139

[1973] (1973) 411 यू॰ एस॰ 1=36 ला ई॰ डी॰ (द्वितीय संस्करण) 16:
सेन एन्टोनियो इंडेपेंडेण्ट स्कूल डिस्ट्रिक्ट बनाम रोड्रिग्स; 51

[1972] (1972) आई॰ टी॰ आर॰ जिल्द 86, पृष्ठ 267 (आन्ध्र प्रदेश):
पी॰ वी॰ जी॰ राजू बनाम व्यय कर आयुक्त; 60

[1972] (1972) 32 ला ई॰ डी॰ (द्वितीय संस्करण) 15=406 यू॰ एस॰ 205:
विसकोन्सिन बनाम योडर; 143

[1971] [1971] 1 उम॰ नि॰ प॰ 206 = (1971) 1 एस॰ सी॰ सी॰ 607=ए॰ आई॰ आर॰ 1971 एस॰ सी॰ 2560:
आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम लवु नरेन्द्रनाथ; 36

[1970] [1970] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 753 = ए॰ आई॰ आर॰ 1970 एस॰ सी॰ 253:
हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य; 63

[1970] [1970] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 530=ए॰ आई॰ आर॰ 1970 एस॰ सी॰ 564:
बैंक राष्ट्रीयकरण वाला मामला; 18

[1968] ए॰ आई॰ आर॰ 1968 एस॰ सी॰ 662=[1968] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 833:
एस॰ अजीज बाशा और एक अन्य बनाम भारत संघ; 70

[1964] [1964] 2 एस॰ सी॰ आर॰ 703=ए॰ आई॰ आर॰ 1963 एस॰ सी॰ 1873:
दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम रामनाथ; 39,164

[1964] [1964] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 332=ए॰ आई॰ आर॰ 1963 एस॰ सी॰ 1295=1963 (2) क्रिमिनल ला जर्नल 329:
खड़क सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 22, 23

[1962] ए॰ आई॰ आर॰ 1962 एस॰ सी॰ 1080 (पृ॰ 1085):
एन॰ यू॰ सी॰ एम्प्लाईज बनाम औद्योगिक अधिकरण; 167

[1959] [1959] सप्ली॰ 1 एस॰ सी॰ आर॰ 133=ए॰ आई॰ आर॰ 1959 एस॰ सी॰ 75:
पी॰ के॰ मेनन बनाम आयकर आयुक्त; 61

[1959] [1959] एस० सी० आर० 12=ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 578:
एक्सप्रेस न्यूजपेपर बनाम **भारत संघ;** 132,132क

[1959] [1959] एस० सी० आर० 629=ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 731:
हनीफ बनाम **बिहार राज्य;** 139

[1959] [1959] एस० सी० आर० 995=ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 956:
केरल शिक्षा विधेयक वाला मामला; 99,139

[1957] ए० आई० आर० 1957 एस० सी० 699=[1957] एस० सी० आर० 874:
आर० एम० डी० सी० वाला मामला; 165

[1955] [1955] 1 एस० सी० आर० 1215=ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 334:
डी०पी० जोशी बनाम **मध्य प्रदेश;** 110,178

[1953] (1953) 98 ला ई० डी० 873=347 यू० एस० 483:
ओलिवर ब्राऊन बनाम **बोर्ड आफ एजूकेशन आफ तोपेका;** 16

[1953] (1953) 98 ला ई० डी० 884=347 यू०एस० 497:
स्पाट्सवुड टी० बोलिंग बनाम **शार्प;** 36,135

[1952] [1952] एस० सी० आर० 889=ए० आई० आर० 1952 एस० सी० 252:
बिहार राज्य बनाम **महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह, दरभंगा और अन्य;** 18

[1951] ए० आई० आर० 1951 एस० सी० 226:
मद्रास राज्य बनाम **चम्पकम दोराइराजन;** 138

[1951] (1951) 2 आल इंग्लैंड रिपोर्ट 154=(1951) 1 टी० एल० आर० 1050:
दि एबे मालवेर्न वेल्स लिमिटेड बनाम **मिनिस्टर आफ टाऊन एंड कंट्री प्लानिंग;** 102

[1950] [1950] एस० सी० आर० 88=ए० आई० आर० 1950 एस० सी० 27:
ए० के० गोपालन वाला मामला; 18

[1919] (1919) 252 यू० एस० 416=64 ला एडीशन 641:
मसूरी बनाम **हालैंड;** 28

[1909] (1909) 5 टैक्स केसेज 408=100 एल० टी० 585=25 टी० एल० आर० 368:
दि किंग बनाम **कमिश्नर फार स्पेशल परपजेज आफ दि इनकम टैक्स;** 101

[1891] 1891 ए० सी० 531=3 टैक्स केस 53=65 एल० टी० 621:
विशेष आयकर आयुक्त बनाम **पेमसेल;** 98,100

[1877] (1877) 94 यू० एस० 113=24 ला ई० डी० 77: 23, 35,
मन बनाम **ईलिनायस।** 133

प्रभेदित निर्णय

[1986] [1986] 3 एस० सी० आर० 602=ए० आई० आर० 1987 एस० सी० 494:
भारत सेवाश्रम संघ बनाम **गुजरात राज्य;** 166

[1979] [1979] 1 उम० नि० प० 1053=[1978] 3 एस० सी० आर० 207=ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 548:
बैंगलौर वाटर सप्लाई एण्ड सीवरेज बोर्ड बनाम **राजप्पा;** 166

[1973] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 588=[1971] सप्ली० एस० सी० आर० 879:
महाराष्ट्र राज्य बनाम **लोक शिक्षण संस्था।** 166,170

अननुमोदित निर्णय

[1986] ए० आई० आर० 1986 कर्नाटक 119:
बापूजी एजूकेशनल एसोसिएशन बनाम **राज्य;** 165

[1984] ए० आई० आर० 1984 आन्ध्र प्रदेश 251:
आन्ध्र केसरी एजूकेशन सोसाइटी ओंगोल बनाम **आन्ध्र प्रदेश सरकार, हैदराबाद और अन्य;** 165

[1968] ए० आई० आर० 1968 मुम्बई 91:
दि सारवरखेर्दा एजूकेशन सोसाइटी और अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य।** 165

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : **1992 की रिट याचिका (सिविल) 607, साथ में 1992 की रिट याचिका (सिविल) सं० 657,602 और 678; विशेष अनुमति याचिका (सिविल) सं० 11852/1992, रिट याचिका (सिविल) सं० 701, 770 और 729/1992; विशेष अनुमति याचिका (सिविल) सं० 13263, 12830 और 13913/1992 (साथ में अंतर्वर्ती आवेदन सं० 2 से 5), 13914, 12843-44/92 और 12845-58/1992; रिट याचिका (सिविल) सं० 785 और 836/92, विशेष अनुमति याचिका (सिविल) सं० 13940/1992; रिट याचिका सं० 779/1992, 2337-2338/1983 विशेष अनुमति याचिका (सिविल) ..../92 सिविल अपील सं० 3573/1992; रिट याचिका (सिविल) सं० 870/92 और 855/1992 और विशेष अनुमति याचिका (सिविल) सं० 15039/1992.**

उपस्थित पक्षकारों की ओर से: श्री मिलन कुमार बनर्जी, महान्यायवादी (अटर्नी जनरल), श्री दीपंकर प्रसाद गुप्त, महासालिसिटर, श्री वी०आर० रेड्डी, अपर महासालिसिटर, श्री के०के० वेणुगोपाल, श्री संतोष हेगड़े, श्री के० पाराशरन, श्री शान्ति भूषण, श्री कपिल सिब्बल, श्री आर०के० जैन, सुश्री इंदिरा जयसिंह, श्री सी०एस० वैद्यनाथन, श्री डी०डी० ठाकुर, श्री वी०एम० तारकुण्डे, श्री हरदेव सिंह, श्री सुशील कुमार, श्री राणा जोयस, श्री एस०एस० जवेली, श्री एस०के० ढोलकिया, श्री अशोक देसाई, श्री सी० सीतारामैया, श्री हरीश एन० साल्वे, श्री मधुनायक नायर, श्री सुचिंत चटर्जी, श्री पी०पी० त्रिपाठी, श्री के०वी० मोहन, श्री एजाज़ मकबूल, श्री विजय कुमार, श्री वी० बालचन्द्रन, श्री एस०आर० भट्ट, श्री ए०वी० रंगम, श्री ए० रंगनाथन, श्री डब्ल्यू० सी० चोपड़ा, श्री सतीश पाराशरन, श्री जयन्त भूषण, श्री ए० सुब्बाराव, सुश्री भारती रेड्डी, सुश्री प्रमिला, श्री टी०वी०एस० नरसिंहाचारी, श्री नरेश कौशिक, श्री नवीन बत्रा, श्री बी० वीरभद्रप्पा, श्री शंकर दिवते, श्रीमती ललिता कौशिक, श्री एस०सी० पटेल, श्री मोहन वी० कटार्की, श्री शम्भू प्रसाद सिंह, श्री राजेश्वर ठाकुर, सुश्री रानी जेठमलानी, श्री के०वी० विश्वनाथन्, श्री मधु नायक, श्री के०वी० वेंकटरामन, श्री के० राम कुमार, श्री विवेक गम्भीर, श्री एस०के० गम्भीर, श्री बी०ई० अवध, श्री एम०डी० अदकर, श्री सी०बी० बाबू, श्रीमती अयाजय, श्री सी०वी० सुब्बाराव, श्री ए० मरियारपूतम्, श्रीमती अरुणा माथुर, डा० सुमंत भारद्वाज, मे० अरूपूतम्, अरुणा एंड कंपनी, सुश्री मधु चंदानी, श्री एस०ए० सेक्वेरा, श्री जी०के० शिवगूर, श्री आर०पी० वाधवानी, डा० जे०पी० वर्गीज़, मे० एम०पी० राजू, एल०जे० वडकर, श्री पी०आर० रमेश, श्री अनिप सचथे, श्री एस०एस० खन्डूजा, मे० यशपाल ढींगड़ा, बी०के० सतीजा, श्री ए०एम० मजूमदार, श्री संजय पारेख, श्री ए०के० पण्डा, श्री आर० करंजावाला, श्री अजय मालवीय, श्री रंजन मुखर्जी, श्री आर०के० मेहता, श्री जे०आर० दास, श्री डी०के० सिन्हा, श्रीमती भारती शर्मा, श्रीमती रानी छाबड़ा, डा० सुमंत भारद्वाज, श्री आर०एस० हेगड़े, श्री के०आर० नागराज, सर्वश्री सुनील डोगरा, स्मृति मिश्र, सुश्री माधवन, पी०एच० पारेख, श्री ए०एस० भस्मे, श्री विमल दवे और श्री बी० राजेश्वर राव

मु० न्या० ललित मोहन शर्मा (स्वयं अपनी ओर से और न्या० एस०पी० भरुचा की ओर से)— हमें अपने विद्वान बंधु न्या० बी०पी० जीवन रेड्डी और एस० मोहन के दोनों निर्णयों का परिशीलन करने का लाभ प्राप्त हुआ है। हम बंधु न्या० बी०पी० जीवन रेड्डी के निर्णय से, सिवाय नीचे उपदर्शित सीमा तक के, सहमति व्यक्त करते हैं।

2. वह प्रश्न जो **कुमारी मोहिनी जैन** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में उद्भूत हुआ था और हमारे समक्ष वर्तमान मामलों में भी उद्भूत हुआ है, यह है कि क्या किसी नागरिक को चिकित्सीय, इंजीनियरी या अन्य वृत्तिक उपाधि के लिए शिक्षा का मूल अधिकार प्राप्त है। यह प्रश्न कि क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 में यथावर्णित प्राथमिक शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 के अधीन मूल अधिकार है, ऊपर निर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में उद्भूत नहीं हुआ था और उक्त प्रश्न पर कोई निष्कर्ष या अमताभिव्यक्ति आवश्यक नहीं थी। हमारे समक्ष यह दलील दी गई कि (चूंकि) उक्त प्रश्न पर ऊपर निर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में निश्चयात्मक निष्कर्ष अभिलिखित किया गया था, अतः गुणागुण के आधार पर उसकी शुद्धता पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। हम ऐसा नहीं समझते।

3. पूर्वोक्त मत के समर्थन में और उसके विरुद्ध विद्वतापूर्ण तर्क दिए गए, जिनकी हमारे विद्वान बंधु न्यायाधीशों के निर्णयों में अवेक्षा की गई है। हमारे समक्ष कुछ पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान काउंसेलों द्वारा यह दलील दी गई कि संविधान के भाग 4 में अनुच्छेद 37 में अभिव्यक्त रूप से यह कहा गया है कि भाग 4 में अंतर्विष्ट उपबंध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे और इसलिए यह मानते हुए भी कि अनुच्छेद 45 के अधीन अधिकार अनुच्छेद 21 की परिधि के अंतर्गत सम्मिलित किया जाना है, वह प्रवर्तनीय नहीं होगा। अनुच्छेद 45 में प्रयुक्त भाषा पर भी बल दिया गया, जिसमें राज्य से बालकों की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करने की अपेक्षा की गई है। अनुच्छेद 35 की भाषा की अनुच्छेद 49 की भाषा से तुलना की गई और यह सुझाव दिया गया कि जहां अनुच्छेद 49 में राज्य पर बाध्यता अधिरोपित की गई है, वहीं अनुच्छेद 45 में राज्य द्वारा "प्रयास" किए जाने की अपेक्षा की गई है। हमारा यह मत है कि इन तर्कों और दूसरी ओर के विद्वान काउंसेलों के तर्कों तथा उन विनिश्चयों में, जिनका उनके द्वारा अवलंब लिया गया है, की गई मताभिव्यक्तियों पर, ऐसे मामले में, जहां यह प्रश्न सीधे उद्भूत होता है, गहन विचार आवश्यक होगा, यदि आवश्यक हो, तो बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा।

4. पूर्व वर्णित प्रश्न के पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्कों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के पश्चात्, हमारा यह मत है कि हमें ऐसे किसी प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए अग्रसर नहीं होने के सुस्थापित सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिए, जिसका मामले में विनिश्चय किया जाना आवश्यक नहीं है। अतः इस प्रश्न पर, यह अवधारित करने के सिवाय कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं कि इस प्रश्न पर ऊपर निर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में किया गया निष्कर्ष उक्त मामले में आवश्यक नहीं था और इसलिए वह बाध्यकर विधि नहीं है। हमारा यह मत है कि यदि किसी पश्चात्वर्ती मामले में इस प्रश्न का विनिश्चय करना आवश्यक हो जाता है, तो ऊपर वर्णित कारणों से और अन्य बातों के साथ-साथ, देश की वित्तीय क्षमता पर उसके व्यापक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, उक्त प्रश्न विनिश्चय हेतु बृहत्तर न्यायपीठ के लिए निर्देशित किया जा सकेगा।

5. इन मामलों के प्रयोजनों के लिए यह कहना पर्याप्त है कि वृत्तिक उपाधि के लिए शिक्षा का कोई मूल अधिकार, जो अनुच्छेद 21 से उद्भूत होता हो, नहीं है।

न्या० मोहन—

6. मुझे अपने विद्वान बंधु न्या० बी०पी० जीवन रेड्डी के निर्णय का परिशीलन करने का लाभ प्राप्त हुआ है। यद्यपि मैं उनके निष्कर्ष से सहमत हूं, तथापि मैं स्वयं अपने कारण देना चाहूंगा। चूंकि मेरे विद्वान

[1] (1992) 3 एस० सी० सी० 666=ए० आई० आर० 1992 एस० सी० डब्ल्यू० 2100.

बंधु ने तथ्य पहले ही उपवर्णित कर दिए हैं, अतः, मैं स्वयं को निम्नलिखित तीन प्रश्नों का उत्तर देने तक सीमित रखूंगा, अर्थात्:—

(1) क्या भारत के संविधान में भारत के नागरिकों को शिक्षा का मूल अधिकार गारंण्टीकृत किया गया है?

(2) क्या अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन शिक्षा संस्था स्थापित करने का कोई मूल अधिकार है?

(3) क्या मान्यता या सम्बन्धन से शिक्षा संस्था अभिकरण बन जाती है?

7. इन सब विषयों से यह ज्वलंत प्रश्न उद्भूत होता है कि कैपिटेशन फीस की बुराई को किस प्रकार समाप्त किया जाए या कम से कम उसे कैसे विनियमित किया जाए।

8. प्रस्तावना के रूप में, शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालना उचित होगा।

9. अमर कवि वल्लुवर ने, जिनकी कृति तिरुकुराल कालजयी और सम्प्रदायातीत है, शिक्षा के संबंध में यह कहा था—

"शिक्षा ऐसा उत्कृष्ट धन है, जिसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता है; मनुष्य को शिक्षा को छोड़कर और कोई चीज वास्तविक आनन्द प्रदान नहीं करती है।"

10. अतः शिक्षा का महत्व किसी प्रकार बल दिए जाने की अपेक्षा नहीं करता।

11. अतः शिक्षा का मूल प्रयोजन सभी समयों और सभी स्थानों पर एक जैसा है। वह प्रयोजन मानव व्यक्तित्व को शरीर के विकास, मन की सम्पन्नता और भावनाओं के उदात्तीकरण तथा आत्मा के प्रकाश की समनतगौण प्रक्रिया द्वारा पूर्णता के प्रतिमान के रूप में रूपान्तरित करना है। शिक्षा लोक और परलोक में जीवन-यापन और जीवन की तैयारी है।

12. संस्कृत की एक प्राचीन उक्ति में यह कहा गया है: "साविद्या या विमुक्तये" (विद्या वह है, जो विमुक्ति दिलाती है—अज्ञानता से, जो मन को आच्छादित किए रहती है, विमुक्ति अंध-विश्वास से जो प्रयास को विफल कर देता है, विमुक्ति; पूर्वाग्रह और पक्षपात से, जो सत्य की दृष्टि को निस्तेज कर देते हैं, विमुक्ति)।

13. सरकार के जनतांत्रिक रूप के संदर्भ में, जो अपने अस्तित्व के लिए जनसामान्य के जागरुक होने के तथ्य पर निर्भर करता है, शिक्षा सामाजिक और उसके साथ ही राजनीतिक आवश्यकता है। अनेक दशकों पूर्व भी हमारे नेताओं ने राष्ट्रीय उन्नति के लिए अनिवार्यता के रूप में सामान्य प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया। यह बात बड़ी खेदजनक है कि हमारे इस महान् देश में, जहां ज्ञान की ज्योति सर्वप्रथम प्रकाशित हुई और जहां मानव मस्तिष्क बुद्धिमत्ता के उच्चतम शिखर पर पहुंचा, निरक्षरता की प्रतिशतता इतनी भयावह है। आज, ज्ञान के सीमान्त अविश्वसनीय शीघ्रता से विस्तृत हो रहे हैं। अतः, वह सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता, जिसकी हमारी शिक्षा द्वारा पूर्ति की जानी है, निरक्षरता का उन्मूलन है, जो एक अवसादकारी परिमाण में मौजूद है। इस दिशा में किया गया कोई भी प्रयास अत्यधिक नहीं माना जा सकता है।

14. विजय प्राप्त की जाती है, शान्ति परिरक्षित की जाती है, उन्नति उपलब्ध की जाती है और इतिहास बनाया जाता है किंतु ये सब युद्ध-क्षेत्र में नहीं, जहां देश प्रेम के नाम पर भीषण हत्याएं की जाती हैं, परिषद्-कक्षों में नहीं, जहां वाद-विवाद के नाम पर नीरस भाषण दिए जाते हैं, कारखानों में भी नहीं, जहां जीवन का गला घोटने के लिए नए-नए उपकरणों का विनिर्माण किया जाता है, बल्कि शिक्षा-संस्थाओं में, जो संस्कृति की बीज-भूमि है, जहां उन बालकों को प्रशिक्षित किया जाता है, जिन के हाथों में भविष्य के भाग्य निहित होते हैं। उन्हीं की श्रेणियों में से (उनके बीच से ही) जब वे बड़े हो जाएंगे, राजनयिक और सैनिक, देशभक्त और दार्शनिक निकलेंगे, जो देश की प्रगति को अवधारित करेंगे।

15. शिक्षा के महत्व को विभिन्न न्यायिक विनिश्चयों में भी मान्यता प्रदान की गई है।

16. **ओलिवर ब्राऊन** बनाम **बोर्ड आफ एजूकेशन आफ तोपेका**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया—

"आज, शिक्षा राज्य का और स्थानीय स्वशासनों का कदाचित् सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृत्य है। अनिवार्य विद्यालय उपस्थिति विधियां और शिक्षा के लिए अत्यधिक व्यय, दोनों ही, हमारे द्वारा जनतांत्रिक समाज के लिए शिक्षा के महत्व को मान्यता दिए जाने के तथ्य को दर्शित करते हैं। हमारे सर्वाधिक आधारभूत लोक उत्तरदायित्वों के निर्वहन में—सशस्त्र बलों की सेवा में भी, उसकी आवश्यकता होती है। शिक्षा अच्छी नागरिकता का आधार ही है। आजकल वह बालक को सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति जागरूक बनाने, पश्चात्वर्ती वृत्तिक प्रशिक्षण हेतु उसे तैयार करने और सामान्यतः अपने परिवेश से समायोजन करने के लिए उसकी सहायता करने का एक प्रधान साधन है।"

17. हमारे संविधान के भाग 3 के अधीन प्रगणित विभिन्न मूल अधिकारों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) राज्य को अनुच्छेद 14 और 21 जैसे कतिपय मूल अधिकारों से नागरिक को वंचित करने से अवरुद्ध करते हुए व्यादेश।

(2) अनुच्छेद 19, 25 और 26 आदि के अधीन ऐसे मूल अधिकारों का निश्चयात्मक प्रदान।

18. इस संबंध में **अपर जिला मजिस्ट्रेट** बनाम **एस॰एस॰ शुक्ल**[2] वाले मामले के एक अंश को उद्धृत किया जाना उचित होगा। यह अंश इस प्रकार है—

हमारे संविधान के भाग 3 द्वारा सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों ही प्रकार की, भाषा में मूल अधिकार प्रदत्त

---

[1] (1953) 98 ला॰ ईं॰डी॰ 884=347 यू॰एस॰ 497.

[2] [1976] 3 उम॰ नि॰ प॰ 1 = [1976] सप्ली॰ एस॰ सी॰ आर॰ 172=ए॰ आई॰ आर॰ 1976 एस॰ सी॰ 1207.

किए गए हैं। अनुच्छेद 15(1), 16(1), 19, 22(2), 22(5), 25(1), 26, 29(1), 30 और 32(1) सकारात्मक भाषा वाले अनुच्छेदों के रूप में वर्णित किए जा सकते हैं। अनुच्छेद 14, 15(2), 16(2), 20, 21, 22(1), 22(4), 27, 28(1), 29(2), 31(1) और (2) नकारात्मक भाषा में हैं। यह स्पष्ट है कि मूल अधिकारों के अधिकांश प्रवर्ग सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रकार की भाषा में हैं। नकारात्मक भाषा में व्यक्त मूल अधिकार, इस आधार पर उक्त अधिकार के प्रहीता पर बल देता है कि मूल अधिकार के संबंध में राज्य की कार्यवाही से उन्मुक्ति पर जोर देने के लिए नकारात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है (देखें बिहार राज्य बनाम महाराजाधिराज सर कामेश्वर सिंह, दरभंगा और अन्य[1] वाला मामला)। हमारे संविधान द्वारा प्रदत्त इन मूल अधिकारों ने विभिन्न रूप धारण किए हैं। इन में से कुछ मूल अधिकारों के बारे में यह कहा जाता है कि उनमें आधारभूत मानवाधिकारों का तत्व मौजूद है (देखें ए० के० गोपालन[2] वाला मामला और बैंक राष्ट्रीयकरण[3] वाला मामला)। अनुच्छेद 21 इस प्रकार है :—

"प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण—

किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।"

19. इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त अनुच्छेद प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के वंचन के विरुद्ध ढाल का काम करता है।

20. इस संबंध में यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि उक्त अनुच्छेद द्वारा अनुच्छेद 19 के समान प्राण या दैहिक स्वतंत्रता का मूल अधिकार निश्चयात्मक रूप से प्रदत्त क्यों नहीं किया गया। उसका कारण यह है कि स्वतंत्रता और जीवन जैसी महान संकल्पनाएं अनुभव से अर्थ ग्रहण करने के लिए सप्रयोजन छोड़ दी गई हैं। ये संकल्पनाएं सामाजिक और आर्थिक तथ्य के सम्पूर्ण क्षेत्र से संबंध रखती हैं। इस संविधान के प्रारूपकर्ता यह बात भलीभांति जानते थे कि गतिहीन समाज ही अपरिवर्तित रहता है।

21. ऐसे अधिकारों के विपरीत, जिनका प्रगणित किया जाना आवश्यक था, काफी लम्बे समय से इस तथ्य को मान्यता प्रदान की गई है कि व्यक्ति को दैहिक रूप से पूर्ण संरक्षण प्राप्त होगा। यह सिद्धांत उतना ही पुराना है जितनी कि विधि पुरानी है। तथापि, ऐसे संरक्षण की सही-सही प्रकृति और सीमा को समय-समय पर नए सिरे से परिभाषित करना आवश्यक पाया गया है। राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों में नए अधिकारों की मान्यता अंतर्वलित है और विधि अपनी शाश्वत युवावस्था (यौवनावस्था) में समाज की मांगों को पूरा करने के लिए विकासशील रहती है। जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति में सन्निहित है। उसका निश्चयात्मक रीति में उपबंध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

22. अनुच्छेद 21 की परिधि पर विचार करते समय, मेनका गांधी बनाम भारत संघ[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया—

"यह बात सुव्यक्त है कि अनुच्छेद 21, यद्यपि यह नकारात्मक भाषा में है, प्राण और दैहिक स्वाधीनता का मूल अधिकार प्रदत्त करता है। जहां तक दैहिक स्वाधीनता के अधिकार का संबंध है, उसे यह उपबंध करके सुनिश्चित किया गया है कि किसी व्यक्ति को उसकी दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 21 की भाषा के बारे में विचारार्थ पहला प्रश्न जो उत्पन्न होता है, यह है कि इस अनुच्छेद में यथा-प्रयुक्त "दैहिक स्वतंत्रता" शब्दों का अर्थ और विस्तार क्या है? यह प्रश्न ए० के० गोपालन् बनाम मद्रास राज्य, (1950) एस० सी० आर० 88 = ए० आई० आर० 1950 एस० सी० 27 में के कुछ निर्णयों में विचार-विमर्श के लिए आनुषंगिक रूप से प्रस्तुत हुआ है और न्या० पतंजलि शास्त्री, न्या० मुखर्जी और न्या० एस० आर० दास द्वारा व्यक्त किए गए मत "दैहिक स्वतन्त्रता" शब्दों का ऐसा संकुचित अर्थान्वयन करते हैं जिससे कि इस अनुच्छेद 21 के संरक्षण को अविधिमान्य निरोध के विरुद्ध व्यक्ति की स्वतंत्रता के संरक्षण तक ही सीमित किया जा सके। किन्तु इस मुद्दे पर कोई निश्चित निर्णय नहीं दिया गया था क्योंकि न्यायालय के समक्ष दैहिक स्वतंत्रता शब्दों के निर्वचन का प्रश्न उतना नहीं था जितना कि अनुच्छेद 19 और 21 के पारस्परिक संबंध का था। खड़क सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1964)[1] एस० सी० आर० 332 = ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1295] में दैहिक स्वतंत्रता पद के समुचित प्रविषय और अर्थ का प्रश्न प्रथम बार सूक्ष्म रूप से इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया। न्यायाधीशों के बहुमत ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि अनुच्छेद में दैहिक स्वतंत्रता पद को ऐसी सारगर्भित पद के रूप में प्रयुक्त किया गया है जिससे कि इसके भीतर वे सब अधिकार आ जाएं जिनसे किसी व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता बनती है, लेकिन उनको छोड़कर जिनका अनुच्छेद 19 (1) में पृथक् रूप से खण्डों में चर्चा की गई है। दूसरे शब्दों में, जहां

[1] [1952] एस० सी० आर० 889 = ए० आई० आर० 1952 एस० सी० 252.

[2] [1950] एस० सी० आर० 88 = ए० आई० आर० 1950 एस० सी० 27.

[3] [1970] 3 एस० सी० आर० 530 = ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 564.

[1] [1978] 2 उम० नि० प० 245 = ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 597.

11—251 Law & Justice/2001.

अनुच्छेद 19(1) उस स्वतंत्रता की विषय जातियों अथवा विशेषताओं के बारे में है, वहीं अनुच्छेद 21 में दैहिक स्वतंत्रता के अंतर्गत अवशिष्ट (स्वतंत्रता) हैं। किंतु अल्पमत न्यायाधीश बहुमत द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से असहमत थे और उन्होंने अपनी स्थिति निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट की—

इसमें संदेह नहीं है कि दैहिक स्वतंत्रता पद एक व्यापक पद है और अबाध रूप से संचरण करने की स्वतंत्रता दैहिक स्वतंत्रता में से निकाली गई है और इसलिए अनुच्छेद 21 में दैहिक स्वतंत्रता पद उस गुण को अपवर्जित करता है। हमारा यह मत है कि यह सही दृष्टिकोण नहीं है। दोनों ही स्वतंत्र मूल अधिकार हैं यद्यपि इनमें अतिव्याप्ति है। किसी का दूसरे में से निकाले जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार की बहुत-सी विशेषताएं हैं और उनमें से कुछ अनुच्छेद 19 में हैं। यदि अनुच्छेद 21 के अधीन किसी व्यक्ति के मूल अधिकार का अतिलंघन किया जाता है तो राज्य उस कार्य का समर्थन करने के लिए किसी विधि का अवलंब ले सकता है किंतु यह पूर्ण उत्तर नहीं है जब तक कि उक्त विधि अनुच्छेद 19(2) में अधिकथित कसौटी को वहां तक पूरा नहीं करती जहां तक कि वे विशेषताएं अनुच्छेद 19(1) के अंतर्गत आती हैं?

इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि आर॰ सी॰ कूपर **बनाम** भारत संघ, [(1970) 3 एस॰ सी॰ आर॰ 530 = ए॰ आई॰ आर॰ 1970 एस॰ सी॰ 564] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए अल्पमत दृष्टिकोण को सही माना जाना चाहिए और बहुमत वाले दृष्टिकोण के बारे में यह माना जाना चाहिए कि उसे उलट दिया गया है।"

अतः यह कहना सही नहीं है कि (चूंकि) उक्त अनुच्छेद में नकारात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है, (अतः) जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार प्रदत्त नहीं किए गए हैं, जैसा कि विद्वान् काउंसेल श्री तारकुण्डे ने तर्क दिया।

23. इस न्यायालय ने **खड़क सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में, **मन बनाम ईलिनायस**[2] वाले मामले में अमरीकी संविधान में किए गए पांचवें और चौदहवें संशोधनों में स्वतंत्रता को दिए गए अर्थ के आधार पर, "स्वतंत्रता" शब्द का निर्वचन किया। तदनुसार यह अभिनिर्धारित किया गया—

"अनुच्छेद 21 में "दैहिक स्वतंत्रता" के अंतर्गत व्यक्ति के सभी प्रकार के अधिकार आते हैं।"

24. अमरीकी संविधान के चौथे संशोधनों द्वारा व्यक्तियों के देहों, घरों (मकानों) के संबंध में सुरक्षित रहने का अधिकार गारण्टीकृत किया गया है . . . .।

[1][1964] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 332 = ए॰ आई॰ आर॰ 1963 एस॰ सी॰ 1295.

[2][1877] 94 यू॰ एस॰ 113=24 ला ईडी॰ 77.

25. अनुच्छेद 21 में भी इस अधिकार को पढ़ा और समझा गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी व्यक्ति के घर में अनधिकृत प्रवेश नहीं किया जा सकता है।

26. **केशवानंद भारती** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में न्या॰ मैथ्यू ने यह कहा कि स्वयं मूल अधिकारों की कोई निश्चित (नियत) अंतर्वस्तु नहीं (होती) है; उनमें से अधिकांश ऐसे रिक्त पात्र हैं, जिनमें प्रत्येक पीढ़ी को अपने अनुभव के प्रकाश में उसकी अंतर्वस्तु डालनी चाहिए। इस संदर्भ में यह स्मरण करना सुसंगत होगा कि न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करने में कभी-कभी यह अनिवार्य हो जाता है कि मूल अधिकारों की नीति के निदेशक तत्वों के अधीन होना चाहिए।

27. **पाथुम्मा**[2] वाले मामले में यह कहा गया है कि —

"न्यायालय का प्रयास मूल अधिकारों की पकड़ और परिधि में विस्तार करने का होना चाहिए, न कि न्यायिक अर्थान्वयन की प्रक्रिया द्वारा उनके अर्थ और अंतर्वस्तु पर बल देना . . . .। अनुच्छेद 21 में दैहिक स्वतंत्रता की व्यापकतम परिधि है।"

28. इस संबंध में **मसूरी बनाम हालैंड**[3] वाले मामले में अमरीकी संविधान के बारे में जो बात कही गई थी, उसका स्मरण करना उचित होगा—

"जब हम ऐसी कृतियों पर विचार कर रहे होते हैं जो अमरीकी संविधान के समान सांविधानिक कृतियां भी हैं, तब हमें यह बात अवश्य ही ध्यान में रखनी चाहिए कि उनके द्वारा ऐसा प्राणी अस्तित्व में लाया गया है, जिसके विकास की उसके सर्वाधिक प्रतिभासम्पन्न जन्म-दाताओं द्वारा भी पूर्णतः पूर्वकल्पना नहीं की जा सकती थी।"

29. **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **प्रमोद भारतीय और अन्य**[4] वाले मामले में यह कहा गया है—

"चूंकि अनुच्छेद 39 के खण्ड (घ) में पुरुषों और स्त्रियों, दोनों ही, के लिए 'समान कार्य के लिए समान वेतन' की चर्चा की गई है, अतः उसका अनुच्छेद 14 के भाग के रूप में बना रहना, समाप्त नहीं हो गया। यह कहना कि (चूंकि) उक्त नियम को राज्य की नीति के निदेशक तत्व के रूप में वर्णित किया गया है और वह न्यायालय में प्रवर्तनीय नहीं है, शब्दजाल में फंसना है। संविधान के भाग 4 और 3 का एक दूसरे का अपवर्जक होना आशयित नहीं है। वे एक दूसरे के पूरक हैं। उक्त नियम अनुच्छेद 14 का उतना ही महत्वपूर्ण भाग है, जितना अनुच्छेद 16 के खण्ड (1) का।"

[1] [1973] 2 उम॰ नि॰ प॰ 159 = [1973] सप्ली॰ एस॰ सी॰ आर॰ 1 = ए॰ आई॰ आर॰ 1973 एस॰ सी॰ 1461.

[2] [1979] 1 उम॰ नि॰ प॰ 82 = [1978] 2 एस॰ सी॰ आर॰ 537 = ए॰ आई॰ आर॰ 1978 एस॰ सी॰ 791.

[3] (1919) 252 यू॰ एस॰ 416 = 64 ला ईडी॰ 641.

[4] ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 3142 = 1992 (2) स्केल 791.

30. इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अनेक प्रगणित अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि दैहिक स्वतंत्रता की व्यापकतम परिधि है।

31. निम्नलिखित अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत माने गए हैं—

1. विदेश (बाहर) जाने का अधिकार
   (सतवंत सिंह **बनाम** ए॰ पी॰ ओ॰ नई दिल्ली,
   [(1967)3 एस॰ सी॰ आर॰ 525]
2. एकान्तता का अधिकार
   गोविन्दा **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य,
   [(1975)3 एस॰ सी॰ आर॰ 946]
   इस मामले में, ग्रिस्वोल्स **बनाम** कनेक्टीकट,
   (381 यू॰ एस॰ 479 पृ॰ 510) वाले मामले का अवलम्ब लिया गया।
3. एकांत परिरोध के विरुद्ध अधिकार
   सुनील बत्रा **बनाम** दिल्ली प्रशासन,
   [(1978)4 एस॰ सी॰ सी॰ 494 पृ॰ 545]
4. न्यायालय में बेड़ी (हथकड़ी) के विरुद्ध अधिकार
   चार्ल्स शोभराज **बनाम** अधीक्षक, केन्द्रीय कारागार
   [(1979)1 एस॰ सी॰ आर॰ 111]
5. कानूनी सहायता का अधिकार
   होस्कोट **बनाम** महाराष्ट्र राज्य,
   [(1979)1 एस॰ सी॰ आर॰ 192]
6. शीघ्र विचारण का अधिकार
   हुसैनआरा खातून **बनाम** बिहार राज्य,
   [(1979)3 एस॰ सी॰ आर॰ 169]
7. हथकड़ी लगाए जाने के विरुद्ध अधिकार
   प्रेमशंकर **बनाम** दिल्ली प्रशासन,
   [(1980)3 एस॰ सी॰ आर॰ 855]
8. विलम्बित मृत्यु दंड के विरुद्ध अधिकार
   टी॰ वी॰ वथीश्वरन् **बनाम** तमिलनाडु राज्य,
   [ए॰ आई॰ आर॰ 1983 एस॰ सी॰ 361]
9. अभिरक्षात्मक हिंसा के विरुद्ध अधिकार
   शीला बार्से **बनाम** महाराष्ट्र राज्य,
   [(1983)2 एस॰ सी॰ सी॰ 96]
10. सार्वजनिक फांसी के विरुद्ध अधिकार
   भारत का महान्यायवादी **बनाम** लक्ष्मीदेवी,
   [ए॰ आई॰ आर॰ 1986 एस॰ सी॰ 467]
11. डाक्टर की सहायता का अधिकार
   परमानन्द कत्रा **बनाम** भारत संघ,
   [(1989) 4 एस॰ सी॰ सी॰ 286]
12. शरण का अधिकार
   शान्तिस्टार बिल्डर्स **बनाम** एन॰ के॰ टोटाने,
   [(1990) 1 एस॰ सी॰ सी॰ 520]।

32. यदि वस्तुतः अनुच्छेद 21 को, जो मूल अधिकारों में मुख्य है, समय-समय पर व्यापक और विस्तृत अर्थ दिया गया है, तो इस बात का कोई कारण नहीं है कि उसका अनुच्छेद 45 के प्रकाश में निर्वचन क्यों नहीं किया जा सकता जिसमें राज्य, विहित सीमा, समय-सीमा के अंदर बालकों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए आबद्ध है।

33. इतना दैहिक स्वतंत्रता के संबंध में। अस्तु।

34. अब हम जीवन के अधिकार पर आते हैं। इस न्यायालय ने **बंधुआ मुक्ति मोर्चा** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में उक्त अधिकार की इस प्रकार व्याख्या की—

> "इस देश में प्रत्येक व्यक्ति का यह मूल अधिकार है, जो फ्रांसिस मुलिन वाले मामले, (ए॰ आई॰ आर॰ 1980 एस॰ सी॰ 849 = 1981 एस॰ सी॰ 608) में इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 21 के लिए किए गए निर्वचन के अधीन सुनिश्चित रखा गया है कि मानविक गरिमा तथा शोषण की स्वतंत्रता ग्रहण करते हुए रहा जा सके। अनुच्छेद 21 में निहित मानव गरिमा के साथ रहने का यह अधिकार लोक नीति के निदेशक तत्वों में से अपना प्राण ग्रहण करता है और विशेष रूप से अनुच्छेद 39 के खण्ड (ङ) से (च) तथा अनुच्छेद 41 और 42 से इस प्राण को ग्रहण करता है और इसलिए कम से कम इसमें कर्मकारों के स्वास्थ्य तथा शक्ति को अंतर्विष्ट किया जाना आवश्यक है, जिन कर्मकारों में पुरुष तथा स्त्रियां दोनों शामिल हैं, तथा छोटी आयु के बच्चों को उनके दूषित किए जाने के विरुद्ध संरक्षित किया जा सके जिससे कि बच्चों को स्वास्थ्यजनक रीति से विकसित होने संबंधी अवसर तथा प्रसुविधाएं प्राप्त हो सकें और उन्हें स्वतंत्रता तथा गरिमा की अवस्थाएं उपलब्ध हो सकें, शैक्षणिक सुविधाएं मिल सकें, न्यायसंगत तथा कल्याणप्रद कार्य संबंधी सेवा शर्तें और मातृत्व प्रसुविधा प्राप्त हों। ये ऐसी न्यूनतम अध्यपेक्षाएं हैं जिनका इस हेतु विद्यमान होना आवश्यक है कि उनके आधार पर किसी व्यक्ति को इस योग्य बनाए जा सके कि वह मानव गरिमा के साथ रह सके और किसी भी राज्य—न तो केन्द्रीय सरकार और न ही कोई राज्य सरकार—को यह अधिकार प्राप्त है कि वह कोई ऐसी कार्यवाही करे जो आधारभूत आवश्यक तत्वों के उपभोग से किसी व्यक्ति को प्रवंचित कर सकें। चूंकि अनुच्छेद 39 के खण्ड (ङ) से (च) तथा अनुच्छेद 41 और 42 में अंतर्विष्ट नीति के निदेशक तत्व किसी न्यायालय में प्रवर्तनीय नहीं हैं इसलिए यह सम्भव है कि राज्य को न्यायिक प्रक्रिया के जरिए इस बात के लिए विवश किया जा सके वह कानूनी अधिनियमिति द्वारा अथवा कार्यपालक आदेश द्वारा ऐसी

[1] [1984] 3 उम॰ नि॰ प॰ 23 = (1984) 3 एस॰ सी॰ सी॰ 161.

व्यवस्था करे जिससे कि, आधारभूत आवश्यक तत्वों को सुनिश्चित बनाया जा सके जिनसे कि मानव गरिमा का जीवन गठित होता है किंतु जहां पहले से ही विधान राज्य द्वारा इन आधारभूत अध्यपेक्षाओं को कर्मकारों को उपलब्ध कराने के लिए अधिनियमित किया गया हो और इस प्रकार आधारभूत मानव गरिमा सहित रहने संबंधी उन्हें अधिकार से युक्त बनाया गया हो जोकि ठोस वास्तविकता तथा अंतर्वस्तु से ओत-प्रोत हो वहां राज्य को निश्चित रूप से इस बात के लिए विवश किया जाता है कि वह ऐसे विधान के कार्यान्वयन को अभिप्राप्त करने में राज्य की ओर से कार्यवाही न किए जाने पर ऐसे विधान के अनुपालन को सुनिश्चित बनाए जो कि अनुच्छेद 21 में निहित मानव गरिमा के साथ रहने के अधिकार के प्रत्याख्यान की कोटि में आएगा और अनुच्छेद 256 के संदर्भ में तो यह और भी महत्वपूर्ण है जिसमें यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा जिससे कि संसद द्वारा विरचित विधियों के अनुवर्तन को सुनिश्चित बनाया जा सके और साथ ही साथ उन विद्यमान विधियों को भी सुदृढ़ बनाया जा सके जो उस राज्य में लागू होती हैं।

इसकी ओल्गा टेलिस बनाम मुम्बई नगर निगम[1] वाले मामले में इस प्रकार व्याख्या की गई :

जैसा कि हमने याचियों के मामले में संक्षिप्त आवृत्ति करते समय कहा है कि उनके तर्क का मुख्य आधार यह है कि अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन के प्रति अधिकार में उनकी जीविका का अधिकार सम्मिलित है और चूंकि गंदी बस्तियों और पटरियों पर बने निवास-गृहों से उनको बेदखल करने की दशा में अपनी जीविका से वंचित हो जाएंगे, अतः उनकी बेदखली उनके जीवन-वंचन के समकक्ष (बराबर) होने के कारण असंवैधानिक है। तर्क के प्रयोजनार्थ हम इस आदिखंड की इस तथ्यात्मक यथार्थता की कल्पना करेंगे कि वे गंदी बस्तियों और पटरियों पर बने निवास-गृहों से अपनी बेदखली की दशा में अपनी जीविका से वंचित हो जाएंगे। यह धारणा करने के पश्चात् हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है कि जीवन के प्रति अधिकार में जीविका का अधिकार सम्मिलित है अथवा नहीं? हमें इस प्रश्न का केवल यही उत्तर सूझता है कि जीवन के प्रति अधिकार में जीविका का अधिकार सम्मिलित है। अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के प्रति अधिकार की व्याप्ति अत्यधिक है। इसका केवल यह अभिप्राय नहीं है कि जीवन विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवाय, उदाहरणार्थ, मृत्यु दंडादेश के अधिरोपण और निष्पादन द्वारा, निर्वापित किया अथवा छीना नहीं जा सकता। किंतु यह जीवन के प्रति अधिकार का एक पहलू मात्र है। इस अधिकार का इतना ही महत्वपूर्ण एक पहलू जीविका का अधिकार है क्योंकि कोई भी व्यक्ति जीने के साधनों, अर्थात् जीविका के साधनों के बिना जीवित नहीं रह सकता। यदि जीविका का अधिकार जीवन के प्रति अधिकार का अंग नहीं माना जाएगा तो किसी व्यक्ति को उसके जीवन के प्रति अधिकार से वंचित करने का सबसे सुगम तरीका यह होगा कि उसे निराकरण की सीमा तक उसके जीविका के साधनों से वंचित कर दिया जाए। ऐसा वंचन जीवन को न केवल उसके शक्तिमान तत्व से रहित और निरर्थक बना देगा बल्कि उसे जीने के लिए असम्भव भी बना देगा और यदि जीविका का अधिकार जीवन के प्रति अधिकार का अंग नहीं माना जाएगा तो भी ऐसा वंचन विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार नहीं होगा। जीवन को सम्भव बनाने वाली एकमात्र वस्तु, न कि जीवन को जीने योग्य बनाने वाली वस्तु, जीवन के प्रति अधिकार का अविभाज्य अंग समझी जानी चाहिए। आप किसी व्यक्ति को जीविका के अधिकार से वंचित करके उसे उसके जीवन से वंचित कर देंगे। वास्तव में, इससे यह बात स्पष्ट होती है कि बड़ी संख्या में ग्रामीणजन क्यों बड़े शहरों में आ रहे हैं। उनके शहरों में आने का कारण ग्रामों में जीविका का कोई साधन न होना है। उन्हें अपने ग्रामों के चूल्हे और घर छोड़ने के लिए विवश करने वाला बल, जीवित रहने के लिए संघर्ष, अर्थात् जीवन के लिए संघर्ष है। अतः जीवन और जीविका के साधनों के मध्य संबंध का प्रमाण अकाट्य है। उन्हें जीवित रहने के लिए खाना है केवल मुट्ठी भर लोग ही खाने के लिए जीवित रहने की विलासिता का बोझ उठा सकते हैं। वे ऐसा तभी कर, अर्थात् खा सकते हैं जब उनके पास आजीविका के साधन हों। यही वह प्रसंग है जिसमें न्यायाधिपति डगलस ने बक्सी, [(1954) 347 एम०डी०442] वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की थी कि मनुष्य के पास कार्य करने का अधिकार उसकी सबसे मूल्यवान् स्वाधीनता है क्योंकि यह किसी व्यक्ति को जीवित रहने योग्य बनाती है तथा जीवन के प्रति अधिकार एक मूल्यवान स्वतंत्रता है। मन बनाम इलिनायस, [(1877) 94 यू०एस० 113] वाले मामले में न्यायाधिपति फील्ड ने यह मताभिव्यक्ति की थी कि "जीवन" से प्राणी के अस्तित्व से बढ़ कर कोई चीज अभिप्रेत है और जीवन-वंचन के विरुद्ध निषेध का विस्तार उन सभी सीमाओं और किसी काम को करने की वैधानिक स्वतंत्रताओं तक है जिनसे जीवन उपभोग्य बनता है। इस न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति खड़ग सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [1964 एस०सी०आर० 332] वाले मामले में सानुमोदन उद्धृत की थी।

संविधान के अनुच्छेद 39(क) में जो राज्य की नीति का निदेशक तत्व है, यह उपबंधित है कि राज्य अपनी नीति का, विशिष्टतया इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो। अनुच्छेद 41, में, जो एक अन्य निदेशक तत्व है, अन्य बातों के साथ-साथ यह

[1] [1996] 1 उम० नि० प० 269=(1985) 3 एस० सी० सी० 545.

> उपबंधित है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर बेकारी और अनर्ह, अभाव की दशा में काम पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा।

अनुच्छेद 37 में यह उपबंधित है कि निदेशक तत्व किसी न्यायालय द्वारा-प्रवर्तनीय न होने के बावजूद भी देश के शासन के लिए मूलभूत तत्व हैं। अनुच्छेद 39 (क) और 41 में अंतर्विष्ट तत्व मूल अधिकारों के अर्थ और उनकी अंतर्वस्तु के बोध और निर्वचन के लिए समान रूप से मूलभूत माने जाने चाहिए। यदि राज्य के ऊपर यह बाध्यता है कि वह नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन और काम करने का अधिकार प्राप्त कराए तो जीवन के प्रति अधिकार के तत्व से जीविका के अधिकार को निकालना अतिसिद्धांतवादिता मात्र रहेगा? राज्य किसी निश्चयात्मक कार्रवाई द्वारा इस बात के लिए विवश नहीं किया जा सकेगा कि वह नागरिकों के लिए जीविका के पर्याप्त साधनों अथवा काम की व्यवस्था करे किंतु, यदि कोई व्यक्ति विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवाय अपने जीविका के अधिकार से वंचित किया गया है तो वह ऐसे वंचन को यह कह कर चुनौती दे सकता है कि वह अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार के विरोधी है। (बल देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है)

36. इस प्रकार यदि दैहिक स्वतंत्रता और जीवन को विस्तृत अर्थ दिया गया है तो विचारार्थ यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या जीवन की बाबत, जिससे गरिमा के साथ जीवन-यापन अभिप्रेत है, यह अभिनिर्धारित करना सही नहीं होगा कि उसकी (जीवन की) परिधि के अंतर्गत शिक्षा भी आती है। इसी बात को अधिक जोर दे कर इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि क्या शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार से उद्भूत होता है। इससे पूर्व कि हम **मोहिनी जैन**[1] वाले मामले पर विचार करें, **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम लवु नरेन्द्रनाथ**[2] वाले मामले के प्रति निर्देश करना आवश्यक होगा। एस॰सी॰सी॰ के पृष्ठ 614 (ए॰आई॰आर॰ के पृष्ठ 2567) पर यह कहा गया है—

> "अंत में यह तर्क पेश किया गया कि ऐसी परीक्षाएं संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन अभ्यर्थियों को प्राप्त दैहिक स्वाधीनता (पर्सनल लिबर्टी) पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि किसी मेडिकल कालेज में प्रवेश के लिए आवेदन अस्वीकार करना किस प्रकार उस अनुच्छेद के अधीन गारण्टी की गई दैहिक स्वाधीनता को प्रभावित करता है। विश्वविद्यालय द्वारा पात्रता के अध्यधीन रहते हुए हर व्यक्ति मेडिकल कालेज में प्रवेश पाने के लिए आवेदन कर सकता है। चूंकि आवेदक बहुत होते हैं और उपलब्ध स्थान बहुत कम होते हैं, अतः हर एक अभ्यर्थी को प्रवेश नहीं दिया जा सकता। एक बार जब यह अभिनिर्धारित कर लिया जाए कि परीक्षा अविधिमान्य नहीं है फिर यदि मेडिकल कालेजों में प्रवेश पाने की बाबत दैहिक स्वाधीनता से, यदि कोई है, वंचित किया गया है तो वह विधि द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार ही किया गया है। हमारा ध्यान स्पाट्सवुड बनाम शार्पे, (98 एल॰ ईडी॰ 884) की ओर आकर्षित किया गया है। उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अमरीकी के संविधान के पंचम् संशोधन के "सम्यक् प्रक्रिया" खण्ड द्वारा कोलम्बिया जिले में जातीय पृथक्करण (रेशियल सेग्रीगेशन) प्रतिषिद्ध कर दिया गया था। प्रसंगवश न्यायालय ने पृष्ठ 887 पर टिप्पण किया है, जो इस प्रकार है—
>
> > "यद्यपि न्यायालय का तात्पर्य स्वाधीनता (लिबर्टी) शब्द को अति प्रमितता पूर्ण ढंग से परिभाषित करने का नहीं है, तथापि उस शब्द से केवल शारीरिक अवरोध से ही स्वातंत्र्य अभिप्रेत नहीं है। विधिक स्वातंत्र्य का विस्तार व्यक्ति द्वारा मुक्त रूप से अनुसरित सम्पूर्ण आचरण पर है, और उस स्वातंत्र्य (फ्रीडम) को उचित सरकारी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निर्बन्धित किया जा सकता है। लोक शिक्षा के क्षेत्र में पृथक्करण किसी भी उचित सरकारी उद्देश्य से युक्तियुक्ततः सम्बन्धित नहीं है। अतः वह जिला कोलम्बिया के नीग्रो बालकों पर ऐसा भार अधिरोपित करता है जो "सम्यक् प्रक्रिया खण्ड" का अतिक्रमण करते हुए उन्हें उनकी स्वतंत्रता से मनमाने ढंग से वंचित करता है किंतु हमारे समक्ष जो समस्या है वह पूर्णतः भिन्न है। प्रस्तुत मामले में विहित निम्नतम अर्हता के अध्यधीन रहते हुए हर व्यक्ति प्रवेश के लिए आवेदन कर सकता है। मामले की परिस्थितियों में अभ्यर्थियों में से कुछ को चयन करने का सरकार का उद्देश्य अनुचित नहीं है।"

37. यहां इस तथ्य का सावधानीपूर्वक उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यदि दैहिक स्वतंत्रता का वंचन, विधि द्वारा स्थापित, विधिमान्य प्रक्रिया द्वारा किया जाता है, तो अनुच्छेद 21 के अधीन मूल अधिकार किसी प्रकार प्रभावित नहीं होता है। इस विनिर्णय का यही विषयसार (तत्वसार) है।

38. अब हम मोहिनी जैन वाले मामले पर विचार करेंगे। उसमें पृष्ठ 679-80 पर यह मत व्यक्त किया गया है—

> "'जीवन का अधिकार' इन सभी अधिकारों के लिए एक संक्षिप्त (सारभूत) पद है, जिन्हें न्यायालयों को अवश्य ही प्रवृत्त करना चाहिए क्योंकि वे जीवन के गरिमामय उपभोग के लिए आधारभूत हैं। उक्त अधिकार हर प्रकार के आचरण तक विस्तारित हैं, जिसे करने के लिए कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र है।
>
> शिक्षा का अधिकार सीधे जीवन के अधिकार से उद्भूत होता है। अनुच्छेद 21 के अधीन जीवन के अधिकार और

---

[1](1992) 3 एस॰ सी॰ सी॰ 666 = ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 2100.
[2][1971] 1 उम॰ नि॰ प॰ 206 = (1971) 1 एस॰ सी॰ सी॰ 607 = ए॰ आई॰ आर॰ 1971 एस॰ सी॰ 2560.

का विस्तार करता है, कोई भी कठिनाई नहीं होती है। यदि इस मुख्य बात को ध्यान में रखा जाए, तो अनुच्छेद 14 और 16 का निर्वचन तथा उनके विस्तार और प्रविषय बिल्कुल स्पष्ट हो जाते हैं।

मुम्बई राज्य **बनाम** आर० एम० डी० चमरबागवाला, [(1957) एस०सी०आर० 874] वाले मामले में इस न्यायालय ने संविधान में अन्तर्विष्ट राज्य की नीति के निदेशक तत्वों पर जोर देते समय यह मत व्यक्त किया है—

हमारे संविधान का स्पष्ट प्रयोजन कल्याणकारी राज्य सृजित करना है, संविधान के भाग 4 में उपवर्णित राज्य की नीति के निदेशक तत्व राज्य के लिए यह कर्तव्य व्यादिष्ट करते हैं कि वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, भरसक कार्यसाधक के रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।

फ़तेहचन्द हिम्मतलाल और अन्य **बनाम** महाराष्ट्र राज्य, [(1978) 1 उम० नि० प० 1173=(1977) 2 एस० सी० आर० 828=ए० आई०आर० 1977 एस० सी० 1825 (पृ० 1833)] वाले मामले में इस न्यायालय के संविधान न्यायपीठ ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया—

राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का सन्निवेश जिनके द्वारा राज्य पर यह उच्च कर्तव्य सौंपा गया है कि वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, भरसक कार्यसाधक रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा, मात्र मुद्रित शब्द नहीं है बल्कि कार्यवाही करने के लिए समादेश है। हम अपने को जोखिम में डाले बिना यह कदापि विस्मृत नहीं कर सकते हैं कि संविधान राज्य को इस बात के लिए बाध्य करता है कि वह अपने नागरिकों के जीवन निर्वाह के पर्याप्त साधन सुलभ कराए और यह सुनिश्चित करे कि पुरुष और स्त्री, दोनों प्रकार के कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का दुरूपयोग न किया जाए यह कि नैतिक एवं भौतिक शोषण समाप्त कर दिया जाएगा। संक्षेप में, राज्य की कार्यवाही में, जो सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से कमजोर वर्गों का संरक्षण करने और जनता के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए आशयित है यह बात आवश्यक रूप से विवक्षित है कि व्यापार या कारबार अथवा वाणिज्य के रूप में किए जाने वाले क्रियाकलाप व्यापार अथवा कारबार के रूप में अमान्य घोषित किए जा सकते हैं।"

दिल्ली विकास कृषि उद्यान कर्मचारी संघ बनाम **दिल्ली प्रशासन, दिल्ली और अन्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया—

"इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि व्यापक रूप से निर्वचन किए जाने पर और आवश्यक तार्किक परिणति के रूप में, जीवन के अधिकार के अंतर्गत आजीविका का अधिकार और इसलिए कार्य करने का अधिकार भी आएगा। इसी कारण इस न्यायालय ने ओल्गा टेलिस बनाम मुम्बई नगर निगम वाले मामले में, पटरी पर रहने वाले लोगों की बेदखली के परिणामों पर विचार करते समय यह उपदर्शित किया था कि उक्त मामले में बेदखली के परिणामस्वरूप न केवल शरण (आश्रय) का वंचन हुआ बल्कि आजीविका का भी वंचन हुआ क्योंकि पटरी पर रहने वाले लोग अपने वास-स्थान के निकट ही नियोजित थे। अतः, न्यायालय ने इस बात पर बल दिया था कि पटरी वासियों की बेदखली की समस्या को उस संदर्भ में भी देखा जाना था। तथापि, यह बात अनुच्छेद 21 के संदर्भ में थी, जिसके द्वारा व्यक्तियों को, उनके जीवन के वंचन के विरुद्ध, सिवाय विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार, संरक्षण प्रदान करना ईप्सित है। इस देश ने संविधान में मूल अधिकार के रूप में आजीविका के अधिकार को सम्मिलित करना अभी तक साध्य नहीं पाया है। ऐसा इसलिए है कि देश ने अभी तक उसकी गारण्टी देने की सक्षमता प्राप्त नहीं की है, न कि इस कारण कि वह जीवन के अधिकार को कम मौलिक समझता है। उसके अनुच्छेद 41 द्वारा, उचित ही, राज्य को अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की परिसीमाओं के अंतर्गत उसे सुनिश्चित करने हेतु प्रभावी उपबंध करने का व्यादेश किया गया है। इस प्रकार राज्य को कार्य के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए निदेश देते समय भी, संविधान निर्माताओं ने उसे सीमित किए बिना ऐसा करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं माना है।"

ऐसे निष्कर्ष की आलोचना नहीं की जा सकेगी। इस प्रकार निर्वचन किए जाने पर, उससे सामाजिक न्याय का संवर्धन होगा।

43. संविधान वाद-विवाद (1948-49) के पृष्ठ 909 और 910 पर, खण्ड 7 में यह कहा गया है—

"माननीय श्री के० संतानम्: महोदय, आपको स्मरण होगा कि यूरोप में सर्वत्र प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अल्पसंख्यक केवल यही चाहते थे कि उन्हें स्वयं अपने विद्यालय चलाने में और अपनी संस्कृतियों को परिरक्षित रखने का अधिकार प्रदान किया जाए, जो अधिकार फासिस्टों और नाजियों ने उन्हें देने से इनकार कर दिया। वस्तुतः, वे राज्य विद्यालय भी नहीं चाहते थे। वे राज्य की सहायता नहीं चाहते थे। वे केवल यह चाहते थे कि उन्हें अपनी रीति-रिवाजों का पालन करने और अपनी संस्कृतियों के अनुसार चलने तथा स्वयं अपने विद्यालय स्थापित और संचालित करने की अनुज्ञा प्रदान की जाए। अतः मैं नहीं समझता कि किसी भी

[1] (1992) 4 एस० सी० सी० 99.

अल्पसंख्यक समुदाय की ओर से अनुच्छेद 23 (1) में दिए गए अधिकारों को कम करना सही है।

महोदय अनुच्छेद 23 के खण्ड (2) में उन्हें भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण प्रदान किया गया है। यह सम्भव है कि भाषा पर आधारित अनेक प्रांत हो सकते हैं और इसलिए सरकार, मंत्रिपरिषद् और विधानमंडल में मुख्यतया बहुसंख्यक भाषा के सदस्य होंगे। तब (ऐसी स्थिति में) अभेदभाव का यह अधिकार मौलिक और मूल्यवान् हो जाएगा।

और उसके पश्चात् इस अनुच्छेद के खण्ड (3) में यह उपबंध किया गया है कि जब राज्य शिक्षा के लिए सहायता प्रदान करता है, तब वह इस आधार पर किसी शिक्षा संस्था के विरुद्ध भेदभाव नहीं बरतेगा कि वह अल्पसंख्यक समुदाय के प्रबंधतंत्र के अधीन है, चाहे वह समुदाय पर आधारित हो या भाषा पर, और यह बात भाषाई अल्पसंख्यकों को विशेष रूप से लागू होगी। प्रत्येक प्रांत में, इन भाषाई अल्पसंख्यकों के द्वीप (क्षेत्र) हैं। उदाहरणार्थ, स्वयं मेरे प्रांत तमिलनाडु में, प्रायः प्रत्येक जिले में ग्रामों के द्वीप हैं, जिनमें तेलुगू भाषी लोग एक बड़ी संख्या में निवास करते हैं। इस संबंध में हमें दो भिन्न प्रवृत्तियों के बीच भी संतुलन बनाए रखना है। सर्वप्रथम, हमें बृहत्, भाषाई अल्पसंख्यकों को विशेष रूप से प्राथमिक प्रक्रमों पर, उनकी अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार देना है। हमें समामेलन की ऐतिहासिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि आने वाले सैकड़ों और हजारों वर्षों तक यह भाषाई अल्पसंख्यक इसी रूप में बने रहेंगे, जिसमें वे इस समय हैं। ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को स्वयं अपनी भूमिका निभाने देना चाहिए। इन अल्पसंख्यकों की, बस्ती के लोगों के साथ समामेलन करने में, सहायता की जानी चाहिए। उन्हें शनैः शनैः संबंधित बस्ती की भाषा को आमेलित करना और वहां के लोगों में स्वयं को विलीन करना चाहिए। अन्यथा वे उन प्रांतों में विदेशी से माने जाएंगे। अतः हमें ऐसे कठोर उपबंध नहीं करने चाहिएं, जिनके द्वारा प्रत्येक बालक को उसकी मातृभाषा में स्वतः संरक्षण प्रदान किया जाए। दूसरी ओर, यह प्रक्रिया आकस्मिक नहीं होनी चाहिए; उसे बलपूर्वक लागू नहीं किया जाना चाहिए। जहां कहीं अधिक संख्या में बालक हों, उन्हें स्वयं उनकी भाषा में शिक्षा प्राथमिक शिक्षा देनी चाहिए। इसके साथ ही उन्हें प्रांतों के सामान्य विद्यालयों में जाने और स्थानीय भाषा सीखने और वहां के लोगों के साथ घुलने-मिलने में प्रोत्साहन और सहायता दी जानी चाहिए। हम यह महसूस करते हैं कि इस खण्ड में अत्यधिक व्यावहारिक रीति में इन आकस्मिकताओं का उपबंध किया गया है।

महोदय, श्री लारी ऐसा संशोधन चाहते थे जिस में यह उपबंध किए जाने की ईप्सा की गई हो कि प्रत्येक बालक, बल्कि नागरिकों का हर वर्ग अपने बालक को अपने वर्ग की भाषा के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने/कराने के लिए हकदार है। मैं समझता हूं कि उनका आशय यह है कि जहां कहीं राज्य के खर्च पर प्राथमिक शिक्षा दी जाती है, ऐसे उपबंध किए जाने चाहिए। किंतु मैं समझता हूं कि इससे अल्पसंख्यक वर्ग या एक विशेष भाषा बोलने वाले लोगों के वर्ग को प्राथमिक शिक्षा का और पूर्ण आत्यंतिक अधिकार मिल जाएगा, जो इस देश के लोगों को अभी प्राप्त नहीं है। नीति के निदेशक तत्वों में हमने यह उपबंध किया है कि 15 वर्ष के समय में सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हो जानी चाहिए। किंतु कोई भी यह बात नहीं जानता है कि देश की वित्तीय और अन्य दशाएं तब भी सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था होने देंगी। आज भारत में कोई भी व्यक्ति अधिकार के रूप में प्राथमिक शिक्षा का आग्रह नहीं कर सकता है क्योंकि जनसंख्या का केवल 10 प्रतिशत भाग ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करता है। अतः श्री लारी का संशोधन स्वीकार करना संभव नहीं है क्योंकि उससे सभी प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न होंगी। यदि उसे पारित कर दिया जाता है, तो कोई भी व्यक्ति उच्चतम न्यायालय में जा सकता है और यह कह सकता है कि उसके बालक को किसी एक भाषा में शिक्षा मिलनी चाहिए। यह व्यवहार्य नहीं है और मैं नहीं समझता कि उनका आशय भी ऐसा रहा होगा।

इसके साथ ही मैं समझता हूं कि जिस बात पर जोर दिया है उसे सामान्य रीति के रूप में ध्यान में रखा जाना चाहिए। केंद्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों का यह सुनिश्चित करने के लिए निदेशी होना चाहिए कि जहां कहीं ऐसे बालकों और बालिकाओं के समूह हैं, जिनकी सुभिन्न मातृभाषा है, वहां उस भाषा में विद्यालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए। मैं आशा करता हूं कि सम्पूर्ण देश में यही नीति अंगीकृत की जाएगी विशेष रूप से इसलिए कि, यदि सीमाओं का नया भाषाई पुनर्रक्षण किया जाता है, सभी सीमान्त क्षेत्रों में यह समस्या उत्पन्न हो जाएगी। मैं आशा करता हूं कि भाषाई प्रान्त आयोग की रिपोर्ट में इस संबंध में अंगीकृत किए जाने के लिए कुछ बुद्धिमत्तापूर्ण उपबंध होंगे। प्रान्तों में कोई भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उनकी भाषागत आधार पर पुनः व्यवस्था की गई है। उदाहरणार्थ, यदि कोई तेलुगू भाषी व्यक्ति किसी क्षेत्र में जाता है, तो उसे कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। जैसा कि मैंने कहा, यह सबसे कठिन और जटिल समस्या है तथा मूल अधिकारों में उस पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया जा सकता है। इस अनुच्छेद 23 में उतनी सुरक्षा का उपबंध किया गया है, जितनी संविधान में उपबंधित की जा सकती है। संसदीय और प्रान्तीय विधान, दोनों ही, द्वारा दोनों के लिए अन्य सुरक्षाओं का उपबंध किया जाना होगा और मैं आशा करता हूं कि सम्यक् अनुक्रम में ऐसा हो जाएगा।"

44. यह सच है कि संविधान के निर्माताओं ने यह दृष्टिकोण अपनाया था। किंतु आज स्थिति बहुत भिन्न है। उसका कारण यह है कि

अनुच्छेद 45 में यह कहा गया है—

"बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध—राज्य इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।"

45. उक्त अनुच्छेद के अधीन वर्णित 14 वर्ष (10 वर्ष ... सं॰) की अवधि काफी पहले ही समाप्त हो गई थी। हम स्वतंत्रता के 43वें वर्ष में हैं। तब भी, यदि अनुच्छेद 45 मात्र एक पुनीत इच्छा और विश्वासपूर्ण आशा के रूप में रहता है, प्राथमिक शिक्षा के महत्व को देखते हुए, उससे क्या अच्छाई हुई है। इस अनुच्छेद के अधीन एक समय-सीमा विहित की गई थी। ऐसी समय-सीमा केवल यहीं (देखने को मिलती) है। अतः, यदि इस अनुच्छेद को जीवंत और अर्थपूर्ण बनाने के लिए अभी तक कोई प्रयास नहीं किया गया है, तो हम यह समझते हैं कि न्यायालय को हस्तक्षेप करना चाहिए। राज्य को 14 वर्ष की आयु तक प्रत्येक बालक की निःशुल्क शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए। मामले के इस पहलू पर, नोर्मा बर्नस्टीन टेरो द्वारा सम्पादित "ह्यूमन राइट्स एंड एजूकेशन" (खण्ड 3, पृष्ठ 41) में व्यक्त मत के प्रति निर्देश उपयोगी होगा—

"राज्य को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध करने के लिए शिक्षा के अधिकार हेतु प्रयास करने (का निदेश किया गया है) (अनुच्छेद 45), और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों और समाज के अन्य कमजोर वर्गों (स्त्रियों सहित) के शैक्षिक हितों का समर्थन करने का प्रयास करने के लिए भी निदेश किया गया है।

शिक्षा मुख्यतया राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व है, किंतु संघ सरकार का भी योजना उच्चतर शिक्षा और कमजोर वर्गों के लिए शिक्षा को बढ़ावा देने जैसे विषयों पर संविधान में विनिर्दिष्ट कुछ उत्तरदायित्व हैं। छठी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर (1985) 6-11 वर्ग समूह के लिए प्राथमिक शिक्षा सभी राज्यों में निःशुल्क है, और 11-14 वर्ग समूह के लिए उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल को छोड़कर सभी राज्यों में निःशुल्क है। इन राज्यों में बालिकाओं और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को निःशुल्क शिक्षा मिलती है और मध्याह्न आहार, मुफ्त पुस्तकों और वर्दी जैसे प्रोत्साहनों का उपबंध किया गया है। माध्यमिक प्रक्रमों पर अनेक राज्यों ने सभी बालकों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की है और जहां सबके लिए निःशुल्क उपलब्ध नहीं है, वहां बालिकाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए ऐसा किया गया है। इस प्रकार, सभी राज्यों में बालिकाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए प्राथमिक और माध्यमिक प्रक्रमों पर निःशुल्क शिक्षा का उपबंध किया गया है।"

पुनः, पृष्ठ 43 पर यह कहा गया है—

"शिक्षा के अधिकार के रूप में उपलब्धि के उपयोगी अध्युपाय साक्षरता और अभ्यावेशन स्तर हैं। तथापि, वर्तमान स्थिति इतनी अच्छी नहीं है, जितनी की स्वतंत्रता के 39 वर्ष के पश्चात् आशा की जाती है। साक्षरता दर 1951 में 16.16 से बढ़कर 1981 की जनगणना के अनुसार 36.6 हो गई है। किंतु क्षेत्रीय अंतर (फेरफार) से केरल में 60 प्रतिशत से ऊपर से लेकर कुछ राज्यों में 20 से भी कम प्रतिशत की रेंज उपदर्शित होती है। 15-35 के कृत्यात्मक आयु-समूह में लगभग 12 करोड़ व्यक्ति अब भी निरक्षर हैं (भण्डारी 1981)।

योजनाबद्ध विकास के गत तीन दशकों से भी अधिक समय के दौरान, सुविधाओं में शीघ्र वृद्धि द्वारा अल्पसंख्यकों और बालिकाओं के लिए सुविधाओं का उपबंध करने का प्रयास किया गया है। शिक्षा संस्थाओं की संख्या दुगुनी से भी अधिक हो गई है, जब कि शिक्षकों और छात्रों की संख्या कई गुनी अधिक हो गई है। किंतु इस तथ्य के बावजूद कि ग्रामों में जनसंख्या के 93 प्रतिशत भाग के लिए विद्यालयों की व्यवस्था है, 6-14 वर्ष के आयु-समूह का लगभग 30 प्रतिशत भाग (6 करोड़) विद्यालय नहीं जाता है और 77 प्रतिशत भाग विद्यालय छोड़कर चला जाता है। विद्यालय छोड़कर जाने वाले छात्रों की अधिकांश प्रतिशतता बालिकाओं और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की होती है। मुख्य समस्याएं सामाजिक-आर्थिक दबाव हैं, जिनके परिणामस्वरूप आर्थिक दबाव पैदा होते हैं। बालकों को विद्यालय से दूर रखने का निर्धनता एक बड़ा कारण है।"

46. मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 26(1) में यह कहा गया है—

"प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार—

तकनीकी और वृत्तिक शिक्षा साधारणतया उपलब्ध कराई जाएगी और उच्च शिक्षा, सभी व्यक्तियों को गुणागुण के आधार पर समान रूप से प्राप्य होगी।" (बल देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है।)

47. जोन जिमन कृत "वर्ल्ड आफ साइंस एंड दि रूल आफ ला" (1986) संस्करण, पृष्ठ 49 में यह कहा गया है—

"प्रधान सार्वभौम संधि, जो इस अधिकार को सम्मिलित करती है, आई॰ सी॰ ई॰ एस॰ सी॰ आर॰ है, जिसके अनुच्छेद 13 द्वारा यू॰ डी॰ एच॰ आर॰ द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के साधारण अधिकार को मान्यता प्रदान की गई है, किंतु इसके पश्चात् उसके द्वारा निम्नलिखित विनिर्दिष्ट उपबंध और जोड़े गए हैं;

(2) वर्तमान प्रसंविदा के पक्षकार राज्य इस तथ्य को मान्यता प्रदान करते हैं कि इस अधिकार की पूर्ण प्राप्ति के उद्देश्य से—

(क) प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य और सबके लिए उपलब्ध होगी;

(ख) माध्यमिक शिक्षा, उसके विभिन्न रूपों में, जिसमें तकनीकी और व्यावसायिक माध्यमिक शिक्षा भी सम्मिलित है, साधारणतया उपलब्ध कराए जाएगी और वह हर समुचित साधन द्वारा सबको प्राप्त होगी, और विशेष रूप से निःशुल्क शिक्षा के अधिकाधिक (उत्तरोत्तर) आरम्भ द्वारा सबको उपलब्ध होगी;

(ग) निःशुल्क शिक्षा के अधिकाधिक आरम्भ पर, उच्चतर शिक्षा भी उसी प्रकार सबको प्राप्त (उपलब्ध) कराई जाएगी;

(घ) ऐसे व्यक्तियों के लिए, जिन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा सम्पूर्ण अवधि तक प्राप्त नहीं की है या प्राथमिक शिक्षा की संपूर्ण अवधि पूरी नहीं की है, यथा-सम्भव मूल शिक्षा प्रोत्साहित या प्रगाढ़ की जाएगी;

(ङ) सभी स्तरों पर विद्यालयों के तंत्र का सक्रिय रूप से विकास किया जाएगा; पर्याप्त 'फैलोशिप' पद्धति स्थापित की जाएगी और शिक्षण-स्टाफ की तात्विक शर्तों में सतत् सुधार किया जाएगा।"

48. निस्संदेह, ऊपर निर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले के उपर्युक्त उद्धरण में "सभी स्तरों पर शिक्षा" का उल्लेख किया गया है, किंतु हम समझते हैं कि विधि को कुछ अधिक व्यापक रूप में ही अधिकथित किया गया है और इसलिए उसे अनुच्छेद 45 के अधीन परिकल्पित परिधि तक ही सीमित रखा जाना चाहिए।

49. विद्वान काउंसेल श्री अशोक देसाई की यह दलील कि अनुच्छेद 37 के प्रति निर्देश नहीं किया गया है, और नीति के निदेशक तत्वों का अवलंब, हमने जो कुछ ऊपर कहा है उसे देखते हुए अस्वीकार्य है।

50. उच्चतर शिक्षा राष्ट्रीय आर्थिक संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर करती है। किसी देश विशेष में, उसके लिए अधिकार अनिवार्यतः उसकी आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों द्वारा सीमित किया जाना चाहिए। अतः राज्य की उसकी व्यवस्था करने की बाध्यता आत्यंतिक और अव्यवहित नहीं है बल्कि सापेक्ष और क्रमिक है। उसे सभी समुचित साधनों द्वारा शिक्षा के अधिकार की क्रमिक रूप से पूर्ण प्राप्ति करने के उद्देश्य से अपने उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम सीमा तक उपयोग करने के लिए कदम उठाने होते हैं। किंतु जहां तक शिक्षा की व्यवस्था करने की साधारण बाध्यता का संबंध है, यह कहा जा सकता है कि राज्य ने उसका उल्लंघन किया है, यदि उसने ऐसे संसाधनों द्वारा अपनी शिक्षा पद्धति को विमर्शित रूप में आरम्भ किया, जो प्रकटतः उसे उपलब्ध थे, जब तक कि वह यह दर्शित नहीं कर सकता है कि वह उन्हें और अधिक आवश्यक कार्यक्रम के लिए आबंटित कर रहा है। अतः 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा को मूल अधिकार के रूप में मानकर, यह न्यायालय प्राथमिकताएं अवधारित नहीं कर रहा है। इसके विपरीत, हम उसे उसके निष्ठापूर्ण प्रयास का स्मरण कराते हैं, जो उसे अनुच्छेद 45 के अधीन विहित सीमा के अंदर करना है, जो समय-सीमा काफी पहले ही समाप्त हो गई है।

51. विद्वान् काउंसेल श्री के॰के॰ वेणुगोपाल ने यह दलील दी है कि संयुक्त राज्य अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने **सेन एन्टोनियो इंडेपेंडेण्ट स्कूल डिस्ट्रिक्ट** बनाम **रोड्रिग्स**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया—

"विधियों के समान संरक्षण की गारण्टी देने के नाम पर अधिष्ठायी सांविधानिक अधिकार सर्जित करना इस न्यायालय के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता है। इस प्रकार यह पता करने की कुंजी कि शिक्षा "आधारभूत" है या नहीं, निर्वाह या आवासन के विपरीत, शिक्षा के सापेक्ष सामाजिक महत्व (सम्बन्धित समाजों की तुलना) में नहीं मिलेगी ....। बल्कि इसका उत्तर इस प्रश्न को निर्धारित करने में निहित है कि क्या संविधान द्वारा शिक्षा का अधिकार अभिव्यक्त रूप से या विवक्षित रूप से गारण्टीकृत किया गया है।"

52. किंतु, यदि वास्तव में मूल अधिकार और नीति के निदेशक तत्व एक दूसरे के पूरक हैं तो हम यह समझने में असमर्थ हैं कि इस मूल अधिकार का उस रीति में निर्वचन क्यों नहीं किया जा सकता है। अमरीकी संविधान में अनुच्छेद 45 जैसा कोई नीति का निदेशक तत्व नहीं है। अतः ऊपर निर्दिष्ट सेन एन्टोनियो इंडेपेंडेण्ट स्कूल डिस्ट्रिक्ट वाले मामले में विपरीत मत विखण्डित कर दिया गया।

53. कैलिफोर्निया लॉ रिव्यू (खण्ड 57, 1969, पृ॰ 380) में मामले के इस पहलू पर अमरीकी विधि पर विचार करते समय यह कहा गया—

---

[1] [1973] 411 यू॰ एस॰ 1=36 ला ईडी॰ (द्वितीय संस्करण) 16.

"यह सच है कि ब्राउन मत का उद्धरण स्तब्धकारी रूप में सुसंगत है। शाब्दिक रूप में लेने पर, वह एक अर्थ में, इस अनुच्छेद के प्रश्न पर विनिश्चायक होगा। शिक्षा सभी लोगों को समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। तथापि, 1968 के 'सुविधा के दृष्टिकोण' से यह स्पष्ट नहीं है कि ब्राउन शिक्षा में रुचि (हित) के बारे में विशेष रूप से सम्बद्ध थे। उपर्युक्त विनिश्चय, शिक्षा के 'आधारभूत' स्वरूप के गोल्फ और तरण (तैरना) अधिकारों के आधारभूत स्वरूप को ग्रहण करने से पूर्व प्रकट नहीं हुआ था, और ब्राउन के समय से सभी मामलों ने, शिक्षा को अंतर्वलित करने वाले मामलों ने भी जातीय कारक के प्रति पूर्ण पूर्वाग्रह दर्शित किया है। इस बीच न्यायालय ने यह सुझाव देने के लिए आगे कुछ भी नहीं किया है कि शिक्षा को स्वयं अपना सांविधानिक जीवन प्राप्त है।"

54. जहां तक भारत में प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति का संबंध है, भारत संघ की ओर से नई दिल्ली स्थित भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग में सहायक शिक्षा सलाहकार, श्री एच०सी० बवेजा द्वारा फाइल किए गए अतिरिक्त शपथपत्र में स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

भारत में प्राथमिक शिक्षा की प्रास्थिति :

1. 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक सभी बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध (व्यवस्था) संविधान का एक नीति निदेशक तत्व है। राष्ट्र निर्माण हेतु निर्णायक निवेश के रूप में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था और साक्षर जनसंख्या की आवश्यकता को मान्यता प्रदान करते हुए, सरकार की नीति यह रही है कि सभी बालकों को कम से कम प्राथमिक स्तर (प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक स्तर) तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कराई जाए। छठी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में सार्वजनिक अभ्यावेशन के कार्य को पूरा करने के लिए एक समयबद्ध योजना की वांछनीयता के प्रति निर्देश किया गया। सातवीं योजना में इस उद्देश्य को प्राप्त करने की आवश्यकता के बारे में आत्ययिकता (अर्जेंसी) का भाव दर्शित किया गया। शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति, 1986 द्वारा इस पर पुनः बल लिया गया।

गत अनेक वर्षों के दौरान हुई प्रगतिः

2. उक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के सतत प्रयासों के परिणामस्वरूप संस्थाओं, शिक्षकों और छात्रों (की संख्या) में कई गुनी वृद्धि हुई है, जैसा कि निम्न तालिका से दर्शित होता है—

	1950-51	1990-91
संस्थाओं की संख्या (लाख में)		
प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 1 से 5)	2.10	5.58
उच्चतर प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 6 से 8)	0.13	1.46
योग	2.23	7.04
शिक्षकों (अध्यापकों) की संख्या (लाख में)		
प्राथमिक विद्यालय	5.38	16.36
उच्चतर प्राथमिक विद्यालय	0.36	10.59
योग	6.24	26.95
सकल अभ्यावेशन		
प्राथमिक अभ्यावेशन (लाख में)	192	991
सकल अभ्यावेशन अनुपात	43.1 प्रतिशत	101.03 प्रतिशत
उच्चतर प्राथमिक प्रक्रम		
कुल अभ्यावेशन (लाख में)	31	331
सकल अभ्यावेशन अनुपात	12.9 प्रतिशत	60.11 प्रतिशत

3. इस वृद्धि से भारतीय शिक्षा पद्धति को विश्व की बृहत्तम पद्धतियों में से एक पद्धति होने का स्थान प्राप्त हुआ, जिसके द्वारा देश की जनसंख्या के लगभग 94 प्रतिशत भाग वाले 8.26 लाख घरों को एक किलोमीटर की दूरी के अंदर प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध कराए गए। अस्सी के दशक में अभ्यावेशन में वृद्धि से ऐसी प्रगति दर्शित होती है, जिसके कारण प्राथमिक प्रक्रम पर अभ्यावेशन की दर 100 प्रतिशत के निकट आ गई है।

निःशुल्क शिक्षा

4. अभ्यावेशन में वृद्धि करने और यू० ई० ई० के लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास में, सभी राज्य सरकारों ने सरकारी विद्यालयों में शुल्क समाप्त कर दिया है और स्थानीय निकायों तथा प्राइवेट सहायता प्राप्त संस्थाओं द्वारा चलाए जाने वाले विद्यालयों में, इन राज्यों में, शिक्षा अधिकांशत निःशुल्क है। तथापि, प्राइवेट गैर-सहायता प्राप्त विद्यालयों में, जो देश के कुल प्राथमिक विद्यालयों का 3.7 प्रतिशत गठित करते हैं, कुछ फीस प्रभारित की जाती है। इस प्रकार, कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि वस्तुतः सभी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर तक शिक्षा निःशुल्क है। निर्धन परिवारों के या अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति प्रवर्गों के बालकों को प्रोत्साहन के रूप में पाठ्य-पुस्तकों, वर्दी, विद्यालय के बस्ते, परिवहन आदि जैसे शिक्षा के अन्य खर्च राज्यों द्वारा वहन नहीं किए जाते हैं, सिवाय कुछ बहुत थोड़े मामलों के, इस बात का कि राज्य सरकारें इस अतिरिक्त व्यय का वहन करने के लिए असमर्थ क्यों हैं, कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षा पर व्यय का 96 प्रतिशत भाग शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ के वेतन का संदाय करने में खर्च हो जाता है।

अनिवार्य शिक्षा

5.14 राज्यों और 4 संघ राज्य क्षेत्रों ने शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए विधान अधिनियमित किए हैं किंतु उन सामाजिक-आर्थिक बाध्यताओं ने, जो बालकों को विद्यालयों से दूर रखती हैं, उन्हें ऐसे नियम और विनियम विहित करने से निर्बन्धित किया है, जिनके द्वारा इन उपबंधों का पृष्ठांकन किया जा सकता है।

55. इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जाना है कि 14 वर्ष की आयु तक निःशुल्क शिक्षा का अधिकार मूल अधिकार है।

56. अगला प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा-संस्था स्थापित करने का कोई मूल अधिकार है। इससे हम अनुच्छेद 19(1)(छ) पर आते हैं जो इस प्रकार हैं:—

> "कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा।"

57. अब प्रश्न यह है कि "वृत्ति", "व्यवसाय", "व्यापार" या "कारब्बार" को क्या अर्थ दिया जाना है।

58. पी॰ रामनाथ अय्यर की कृति "ला लैक्सीकन" (पुनर्मुद्रण संस्करण 1987, पृष्ठ 897) में आकुपेशन (उपजीविका) से यह अभिप्रेत है:—

> "किसी व्यक्ति के जीवन का प्रधान कारबार, व्यवसाय, आजीविका, व्यापार, ऐसा कारबार, जिसे कोई व्यक्ति जीवन-निर्वाह करने या धन अभिप्राप्त करने के लिए अपनाता है; वह चीज, जो किसी व्यक्ति का समय लेती या ध्यान आकर्षित करती है; व्यवसाय, नियोजन, आजीविका, व्यापार; ऐसा कारबार जिसमें कोई व्यक्ति, अपने पड़ोमी की जानकारी में, सामान्यतः रत रहता है।"

59. ब्लैककृत "लॉ डिक्शनरी" (पंचम संस्करण, पृष्ठ 973) के अनुसार, "आकुपेशन" (उपजीविका) से यह अभिप्रेत है—

> "कब्जा; नियंत्रण अभिधृति; उपयोग। ऐसा कार्य या प्रक्रिया, जिसके द्वारा "स्थावर सम्पत्ति (भू-सम्पत्ति) को कब्जे में लिया जाता है और उसका उपभोग किया जाता है; जहां व्यक्ति भूमि पर वास्तविक (भौतिक) नियंत्रण रखता है।
>
> वह चीज, जो प्रधानतः किसी व्यक्ति का समय, विचार और शक्ति लेती है, विशेष रूप से, किसी व्यक्ति का नियमित कारबार या नियोजन; वह चीज भी, जिसे कोई व्यक्ति आजीविका चलाने के साधन के रूप में अपनाता है। विशेष (विशिष्ट) व्यापार या आजीविका, जिसमें व्यक्ति का समय और प्रयास अंतर्वलित होता है; ऐसा नियोजन, जिसमें व्यक्ति नियमित रूप से रत रहता है, या उसके जीवन का व्यवसाय।"

60. **पी॰ वी॰ जी॰ राजू** बनाम **व्यय कर आयुक्त**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है—

> "'उपजीविका' नामक कार्यकलाप व्यवसाय या वृत्ति की तुलना में अधिक व्यापक अर्थ वाला कार्यकलाप है। वह अभिरुचि की वस्तु (हाबी/शौक की चीज) से भी भिन्न है, जिसका समय नष्ट (व्यतीत) करने के प्रयोजन के लिए केवल अवकाश के समय में ही अवलंब लिया जा सकता है। अतः उपजीविका ऐसी चीज है, जिससे कोई व्यक्ति अस्थायी रूप से या स्थायी रूप से अथवा काफी समय तक कार्यकलाप में स्वयं को सतत संलग्न रखता है। वह कारबार, आजीविका या उद्यम के सदृश है। किसी व्यक्ति की पूर्वतन वर्ष में एकाधिक उपजीविकाएं हो सकती हैं। उपजीविकाएं मौसमी हो सकती हैं या संपूर्ण वर्ष के लिए भी हो सकती हैं।"
>
> "प्रथमतः, किसी लाभ हेतु के बिना या 'कोई लाभ नहीं, कोई हानि नहीं' के आधार पर कारबार वृत्ति, व्यवसाय या उपजीविका हो सकती है। उदाहरणार्थ, सहकारी सोसाइटियां (समितियां) या पारस्परिक बीमा-कम्पनियां, कोई आय अर्जित किए बिना या किसी लाभ हेतु के बिना कारबार चला सकती हैं। लोगों के उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार की समाज-सेवा करने के लिए व्यवसाय या उपजीविका भी इस प्रवर्ग के अंतर्गत आएगी। लाभ हेतु या आय का उपार्जन कारबार, वृत्ति, व्यवसाय या उपजीविका नामक कार्यकलाप को गठित करने के लिए आवश्यक संघटक तत्व नहीं है।"
>
> "यदि कोई नजीर आवश्यक है, तो हम उसे (नजीर को) व्यय कर आयुक्त **बनाम** श्रीमती मनोरमा साराबाई [1966(59) आई॰टी॰आर॰ 262 (गुजरात)] वाले मामले में देख सकते हैं, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि निर्धारितियों के शैक्षिक कार्यकलाप धारा 5क के अर्थान्तर्गत उपजीविका की कोटि में आते थे और किसी कार्यकलाप को धारा 5क के अर्थान्तर्गत व्यवसाय या उपजीविका मानने के लिए कोई लाभ हेतु आवश्यक नहीं है। इन सभी कारणों से हमें श्री राम राव द्वारा अधिनियम की धारा 5क में 'कारबार', 'वृत्ति', 'व्यवसाय' या 'उपजीविका' शब्दों के निर्वचन से संबंधित निवेदन को अस्वीकार कर देना चाहिए।"

61. **पी॰ के॰ मेनन** बनाम **आयकर आयुक्त**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

> "हमें यह मानने में कोई कठिनाई नहीं है कि शिक्षण एक व्यवसाय है, यदि वृत्ति नहीं। ऐसा स्पष्ट रूप से है और इसलिए इस प्रयोजन के लिए "व्यवसाय" शब्द के विभिन्न अर्थों पर विचार करना या इस मत के समर्थन में नर्जीरें प्रोद्धृत करना आवश्यक नहीं है। और न हम इस बात का ही कोई कारण पाते हैं कि, यदि शिक्षण व्यवसाय है, वेदान्त का शिक्षण

---

[1](1972) आई॰ टी॰ आर॰ जिल्द 86, पृ॰ 267 (आन्ध्र प्रदेश).

[1][1959] सप्ली॰ 1 एस॰ सी॰ आर॰ 133.

व्यवसाय क्यों नहीं है। वह भी उसी प्रकार शिक्षण है और इसलिए किसी अन्य शिक्षण के समान ही वह भी व्यवसाय है। यह कहा गया है कि वेदान्त का शिक्षण देने में अपीलार्थी केवल धर्म का ही पालन कर रहा था। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि धर्म के विषय के रूप में वेदान्त का शिक्षण देते समय, वह व्यवसाय क्यों नहीं चला रहा है।"

"यह कहा गया है कि (चूंकि) "उपजीविका" शब्द का 'कारबार' और 'वृत्ति' शब्दों के साथ प्रयोग किया गया है और कारबार और वृत्ति का उद्देश्य लाभ कमाना होता है, अतः केवल ऐसे कार्यकलापों को ही "व्यवसाय" शब्द के अंतर्गत लाया जा सकता है, जिनका उद्देश्य उसी प्रकार लाभ कमाना हो। हम समझते हैं कि इन दलीलों में कोई तत्व नहीं है। हम इस कथन का महत्व समझने में असमर्थ हैं कि व्यवसाय होने के लिए किसी कार्यकलाप को संगठित (रूप में) होना चाहिए। यदि उससे कोई सतत या, जैसा कि कहा गया है, कोई व्यवस्थित कार्यकलाप अभिप्रेत है, तो हमें यह उपदर्शित करना है कि यह सुविदित है कोई एकल कार्य भी कारबार या वृत्ति चलाने की कोटि में आ सकता है।"

62. "कारबार" शब्द का अर्थ रामनाथ अय्यर कृत "लॉ—लैक्सीकन" (1987 संस्करण) से भी गृहीत किया जा सकता है—

"वह चीज कारबार है, जो किसी व्यक्ति के समय, प्रतिभा और रुचि को अंतर्वलित करती है और जिसे व्यक्ति स्वयं करने का इरादा रखता है। किसी प्रकार के धनीय लाभ को अनुध्यात किए बिना भी "कारबार" हो सकता है—

'बिजनेस' (कारबार) और 'ट्रेड' (व्यापार): 'बिजनेस' (कारबार) का 'ट्रेड' (व्यापार) की तुलना में अधिक व्यापक अर्थ है (हैरिस बनाम एमरी, 35 एल० जे० आई० आर० 92 वाले मामले में न्या० विल्स)। किंतु सामान्यतः, कारबार व्यापार का पर्याय है (डिलेनी बनाम डिलेनी, 15 एल० आर० आई० आर० 67 वाले मामले में चैटर्सन वीसी)।

तथापि धनीय लाभ को अनुध्यात किए बिना भी कारबार हो सकता है। इस संबंध में 'कारबार', 'व्यापार' शब्द की तुलना में अधिक व्यापक अर्थ रखता है और 'कारबार' शब्द को ऐसी उपजीविकाएं सम्मिलित करने के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है, जो कठोर अर्थ में व्यापार शब्द के अर्थान्तर्गत नहीं आएंगी [रॉल्स बनाम मिल्लर, (1883) 53 एल० जे० सी० एच० 99 (101) वाले मामले में न्या० पर्सन]। स्क्रूटन, एल० जे० के अनुसार, 'ट्रेड' और 'बिजनेस' शब्दों का एक ही अर्थ नहीं है...... । यद्यपि सामान्यतः कारबार लाभ हेतु चलाया जाता है। यह उपधारणा की जानी है कि रेलें लाभ पर चलाई जाती हैं, यद्यपि ऐसा हो सकता है कि कभी-कभी वे हानि पर भी चलाई जाती हैं।"

"अतः सेवा के लिए धनीय प्रतिफल आधुनिक राज्य में उद्योग का आवश्यक लक्षण नहीं है।"

63. **हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया—

"अधिनियम के अर्थान्तर्गत 'व्यौहारी' होने के लिए किसी व्यक्ति को उड़ीसा में माल बेचने या उसके प्रदाय करने का कारबार अवश्य ही चलाना चाहिए। "कारबार" पद को अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है। किंतु आंध्र प्रदेश राज्य **बनाम** अब्दुल बक्शी, [(1964) 7 एस० सी० आर० 664] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया—

'यद्यपि कारबार' पद का अनिश्चित अर्थ के शब्द के रूप में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है, तथापि कराधान कानूनों में उसका प्रयोग उपजीविका के अर्थ में या ऐसी वृत्ति के रूप में किया जाता है, जो किसी व्यक्ति का समय, ध्यान और श्रम लेती है, सामान्यतः जिसका उद्देश्य लाभ कमाना होता है। किसी कार्यकलाप को कारबार मानने के लिए, संव्यवहारों का अनुक्रम होना चाहिए, वस्तुतः लाभ हेतु के साथ सतत रूप में या सतत बनाए रखने के लिए अनुध्यात रूप में, न कि मात्र मनोरंजन (शौक) या आनन्द के लिए।"

वीरेन्द्र प्रसाद राय बनाम **आयकर आयुक्त**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया—

"'कारबार' पद से अनिवार्यतः व्यापार या विनिर्माण मात्र अभिप्रेत नहीं है। उसका इस प्रकार प्रयोग किया जा रहा है कि उसकी परिधि के अंतर्गत वृत्ति, व्यवसाय और आजीविका भी आती है, जो काफी लम्बे समय से चलाई जा रही हो। शार्टर ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी में 'बिजनेस' शब्द को जैसा कि बताया गया है, उपजीविका, वृत्ति या व्यवसाय के रूप में परिभाषित किया गया है तथा कारबार वाले व्यक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उसके अंतर्गत अटर्नी भी आता है। 'कारबार' शब्द के उपर्युक्त शब्दकोशीय अर्थ को देखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि भागीदारी अधिनियम, 1890 की धारा 45 में दी गई 'कारबार' की परिभाषा विस्तारित परिभाषा थी, जो केवल उक्त अधिनियम के प्रयोजन के लिए ही आशयित थी। उक्त अधिनियम की धारा 45 में यह कहा गया है—

'बिजनेस' (कारबार) पद के अंतर्गत हर व्यापार, उपजीविका या वृत्ति आती है।

भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 की धारा 2(ख) में

1 [1970] 1 एस० सी० आर० 753=ए० आई० आर० 1970 एस० सी० 253.
2 ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 1047=[1981] 3 एस० सी० आर० 387.

उद्देश्य हमारे देश के लड़कों और लड़कियों में समानता का विकास करना है। यह शिक्षा के माध्यम से स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की सच्ची भावना जागृत करने के अनुकूल है। यदि अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने के मामले में धर्म और भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्गों को अनुच्छेद 30 के अधीन संरक्षण नहीं दिया जाता है तो वे ऐसा अनुभव करेंगे जैसे कि वे अलग-अलग हों और अकेले पड़ गए हों। सामान्य धर्मनिरपेक्ष शिक्षा से ज्ञान के द्वार खुल जाएंगे और वह हमारे देशवासियों के मन को ऐसा प्राकृतिक आलोक प्रदान करेगा जिसका लाभ उठाकर वे एक साथ मिलकर रह सकेंगे।

पृष्ठ 224 पर पुनः यह मत व्यक्त किया गया :—

"अल्पसंख्यक वर्ग को कुछ विशेष अधिकार देने का भाव यह नहीं है कि जनसंख्या का एक भाग विशेषाधिकार अथवा प्रश्रययुक्त हो बल्कि अल्पसंख्यक वर्ग को सुरक्षा और विश्वास की भावना देना है। भारत के महान् नेताओं ने स्मरणातीत काल से सहिष्णुता के सिद्धांत और उदार दृष्टिकोण का उपदेश दिया है। संविधान में उन उदात्त भावों को समाविष्ट किया गया है। अल्पसंख्यक वर्ग के लिए विशेष अधिकार असमता पैदा करने के लिए परिकल्पित नहीं हैं। उनका वास्तविक प्रभाव अल्पसंख्यक संस्थाओं के बनाए रखने को सुनिश्चित बना कर और उन संस्थाओं के प्रशासन के मामले में अल्पसंख्यक वर्ग को स्वशासन की गारण्टी देकर समता लाना था। अल्पसंख्यक वर्ग को विशेष अधिकार देकर उनके साथ भिन्न बर्ताव करने का आशय संतुलन बनाना है जिससे कि समता का आदर्श केवल एक अव्यवहारिक भाव ही न रह जाए बल्कि वह एक सजीव वास्तविकता हो जिसका परिणाम सही, असली समता हो—जो समता केवल कल्पना में ही न हो बल्कि वस्तुतः हो। वयस्क मतदान की पद्धति में बहुसंख्यक वर्ग को किसी संरक्षण की आवश्यकता नहीं होती यह स्वयं अपना और अपने हितों का संरक्षण कर सकता है। बहुसंख्यक वर्ग द्वारा इच्छित उपाय अधिक कठिनाई के बिना अधिनियमित हो सकता है क्योंकि बहुसंख्यक वर्ग निर्वाचित प्रतिनिधियों को ऐसी आज्ञा देकर उसे पूरा करा सकता है। केवल अल्पसंख्यक वर्ग को ही संरक्षण की आवश्यकता है और कुछ अन्य अनुच्छेदों के अतिरिक्त अनुच्छेद 30 का आशय वह संरक्षण देना और उसकी गारण्टी देना है।" (बल देने के लिए रेखांकन हमारे द्वारा किया गया है।)

74. यह तर्क कि केवल संबंधित कार्यकलाप या उपजीविका के समाज के लिए हानिकारक होने के तथ्य के कारण ही ऐसा प्रत्येक कार्यकलाप या उपजीविका मूल अधिकार के रूप में संरक्षण के लिए स्वतः हकदार नहीं हो सकती है, स्वीकार्य नहीं है। जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया जा चुका है, कुछ अधिकारों को उनकी प्रकृति के कारण, मूल अधिकारों के रूप में संरक्षित किए जाने के लिए अर्हित नहीं माना जा सकता।

75. तदनुसार यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन शिक्षा संस्था स्थापित करने का कोई मूल अधिकार नहीं है, यदि ऐसी शिक्षा संस्था के लिए मान्यता या सम्बन्धन की ईप्सा की जाती है। यहां यह स्पष्ट करना उचित होगा कि पूर्णतः छात्रों को शिक्षा देने के प्रयोजनों के लिए संस्था आरम्भ करने का इच्छुक व्यक्ति ऐसा कर सकता है किन्तु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 22 और 23 को ध्यान में अवश्य ही रखा जाना चाहिए, जिसके द्वारा उपाधियां देने के कार्य को, सिवाय विश्वविद्यालय द्वारा, प्रतिषिद्ध किया गया है।

76. अगला प्रश्न, जो अवधारण की अपेक्षा करता है, यह है—क्या मान्यता या सम्बन्धन का कार्य शिक्षा संस्था को परिकरण बनाता है। हम इस प्रश्न पर निम्नलिखित मामलों के प्रति निर्देश से विचार करना उचित समझते हैं।

77. **अजय हसिया बनाम खालिद मुजीब सेहरावर्दी**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गयाः—

"किसी निगम को सरकार का परिकरण या अभिकरण कब माना जा सकता है, इस बात का परीक्षण अन्तरराष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण वाले मामले, [1982] 2 उम॰ नि॰ प॰ 961=(1979) 3 एस॰ सी॰ सी॰ 484] से किया जा सकता है। ये परीक्षण निर्णायक या अन्तिम नहीं हैं अपितु मात्र दिग्दर्शक ही हैं जिनका प्रयोग बहुत सावधानी और सतर्कता से किया जाना चाहिए क्योंकि "अन्य प्राधिकारी" पद को व्यापक अर्थ देने की आवश्यकता पर बल देते समय इस बात का भी अनुभव किया जाना चाहिए कि इस पद को इतना न खींचा जाए कि इसके अंतर्गत ऐसे तमाम स्वायत्त निकाय भी आ जाएं जिनका कि सरकार से किंचित् मात्र अन्तरसम्बन्ध हो। इसके व्यापक अर्थ विस्तार पर सूझ-बूझ के साथ कुछ सीमा लगानी चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण वाले मामले में किए गए विनिश्चय में जो सुसंगत परीक्षण हमें मिलता है उसे संक्षेप में निम्नलिखित रूप में देते हैं :—

(1) "एक बात स्पष्ट (साफ) है कि यदि निगम की सम्पूर्ण अंशपूंजी सरकार द्वारा धारित है तो इससे इस बात का काफी संकेत मिल जाएगा कि निगम सरकार का तंत्र या अभिकरण है।"

(2) "जहां राज्य द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता

[1] [1981] 4 उम॰ नि॰ प॰ 419=[1981] 2 एस॰ सी॰ आर॰ 79.

इतनी अधिक है कि उससे निगम का प्रायः समस्त खर्च पूरा हो जाता है वहां ऐसा कुछ संकेत मिल जाता है कि वह निगम शासकीय स्वरूप का है।'

(3) 'यह भी एक सुसंगत तथ्य है.....क्या निगम को ऐसा एकाधिकार प्राप्त है जो राज्य द्वारा प्रदत्त या राज्य द्वारा संरक्षित है।'

(4) 'अत्यधिक और व्यापक राजकीय नियंत्रण से यह संकेत मिल सकता है कि निगम राजकीय अभिकरण या तंत्र है।'

(5) 'यदि निगम के कार्य सार्वजनिक महत्व के हैं और शासकीय कार्यों से उनका निकट संबंध है तो उस निगम को सरकार की संस्था या अभिकरण के रूप में वर्गीकृत करने के लिए यह एक तत्व होगा।'

(6) 'विनिर्दिष्ट रूप से, यदि सरकार का कोई विभाग निगम को अंतरित कर दिया जाता है, तो यह इस निष्कर्ष के समर्थन में एक प्रबल तत्व होगा कि निगम सरकार की एक संस्था या अभिकरण है।'

यदि इन सुसंगत तथ्यों पर विचार करने से यह पता चलता है कि निगम सरकार की संस्था अथवा अभिकरण है तो वह, जैसा कि अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण वाले मामले में बताया गया है, "प्राधिकारी" होगा और इसलिए अनुच्छेद 12 में व्यक्त किए गए अर्थ के अर्थान्तर्गत "राज्य" होगा—

"हम यह देखते हैं कि यू० पी० वेयरहाउसिंग कारपोरेशन **बनाम** विजय नारायण, [1981][1] उम० नि० प० 39=(1980) 3 एस० सी० सी० 459] वाले एक पश्चात्वर्ती निर्णय में न्यायाधिपति चिन्नप्पा रेड्डी ने भी वही विचार व्यक्त किया है और विद्वान् न्यायाधीश द्वारा उस मामले में जो अवलोकन (मत व्यक्त) किया गया है उसने हमारे मत को, जो हम अपनी सांविधानिक पद्धति के संदर्भ में विशेष रूप से अपना रहे हैं, शक्ति प्रदान करता है।"

78. न्या० रंगनाथ मिश्र ने (जैसे कि वह उस समय थे), न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए इसी विषय पर सम्पूर्ण निर्णयज विधि का संक्षिप्त विश्लेषण करने के पश्चात् **टेकराज वसंदी** उर्फ **के०एल० वसंदी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में यह निष्कर्ष निकाला है:—

"हमारे समक्ष सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटियों के ऐसे अनेक मामले हैं जिन्हें 'राज्य' के रूप में माना गया है, किन्तु उन मामलों में से प्रत्येक में विश्लेषण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि या तो सोसाइटी ने सरकारी कामकाज को अपने हाथ में लिया था या जिसकी बाबत यह आशयित था कि यह राज्य की लोक बाध्यता है, वह सोसाइटी के कृत्य के अंग के रूप में किए जाने के लिए हाथ में लिया गया था। कल्याणकारी राज्य में, जैसा कि इस न्यायालय ने अनेक बार मत व्यक्त किया है, सरकारी नियंत्रण बहुत ही व्यापक होता है और वास्तव में सामाजिक अस्तित्व के सभी पहलुओं को छूता है। कसी जाने वाली कसौटी को उचित रूप से लागू किए जाने के अभाव में यह संभावना हो सकती है कि प्रत्येक गैर-सरकारी सोसाइटी राज्य के अभिकरण या परिकरण में परिवर्तित न हो जाए। उससे प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा और वह बात वास्तविकता से कहीं दूर हो सकती है। इस मामले का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करना पड़ेगा और वास्तविकताओं तथा मानव अनुभवों को ध्यान में रखते हुए विवेकशील मस्तिष्क का उपयोग इस प्रकार करना होगा जिससे कि युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाला जा सके। इस मामले के तथ्यों पर गंभीरता से विचार करने के बाद हम यह अभिनिर्धारित करने की स्थिति में नहीं हैं कि अध्ययन संस्था या तो राज्य का अभिकरण या परिकरण इस प्रकार है जिससे कि वह संविधान के अनुच्छेद 12 में आए हुए "अन्य प्राधिकारी" की परिधि के भीतर आ जाए। हमें यह अवश्य ही कहना पड़ेगा कि अध्ययन संस्था वाला मामला इसी प्रकार का है—अनेक प्रकार से वह विचित्र है और उसके स्वरूप को कसौटी पर कसने (परखने) के लिए कदाचित् प्रसामान्य कसौटियों पर नहीं कसा जा सकता।"

79. उक्त विद्वान् न्यायाधीश ने, ऊपरनिर्दिष्ट अजय हसिया वाले मामले में वर्णित कसौटियों के प्रति निर्देश करने के पश्चात् **अखिल भारत सैनिक विद्यालय कर्मचारी संगम** बनाम **सैनिक विद्यालय सोसाइटी**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है:—

"......सैनिक विद्यालय सोसाइटी भी 'राज्य' है। उसका सम्पूर्ण निधिकरण राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकारों द्वारा किया जाता है। कुल मिलाकर, नियंत्रण सरकारी प्राधिकारी में निहित रहता है। उक्त सोसाइटी का मुख्य उद्देश्य विद्यालय चलाना और राष्ट्रीय रक्षा अकादमी की आवश्यकता की पूर्ति के प्रयोजन के लिए छात्रों को तैयार करना है। देश की रक्षा राज्य के राजकीय कृत्यों में से एक है।"

80. इन कसौटियों को लागू करने पर, हम यह अभिनिर्धारित करना असम्भव पाते हैं कि प्राइवेट शिक्षा संस्था, मान्यता द्वारा या विश्वविद्यालय से सम्बन्धन द्वारा, कभी भी राज्य का परिकरण कही जा सकती है। मान्यता राज्य द्वारा अधिकथित मानकों के अनुरूप होने के प्रयोजन के लिए होती है। सम्बन्धन पाठ्य-विवरण और पाठ्यक्रम के संबंध में होता है। जब तक वे विश्व-विद्यालय के विधान के

[1] [1988] 4 उम० नि० प० 666=(1988) 1 एस० सी० सी० 236 (पृ० 257).

[1] [1989] सप्ली० 1 एस० सी० सी० 205 (पृ० 212) = ए० आई० आर० 1989 एस० सी० 88 पृष्ठ 91-92.

अनुसार नहीं हैं, उपाधियां प्रदत्त नहीं की जा सकती हैं। शिक्षा-संस्थाएं छात्रों को विश्वविद्यालय द्वारा संचालित परीक्षा के लिए तैयार करती हैं। अतः वे पाठ्य-विवरण और पाठ्यक्रम का पालन करने के लिए बाध्य हैं।

81. इसके परिणामस्वरूप एक महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत होता है:—इन संस्थाओं द्वारा निर्वहन किए जाने वाले कृत्यों का स्वरूप क्या है। वे लोक कर्तव्य का निर्वहन करती हैं। यदि कोई छात्र, उदाहरणार्थ, चिकित्सा में उपाधि प्राप्त करना चाहता है, तो उसे चिकित्सा महाविद्यालय में प्रवेश लेना होगा। ये चिकित्सा महाविद्यालय अर्हता प्राप्त करने के साधन हैं। अतः यदि शिक्षा-संस्था द्वारा जिस चीज का निर्वहन किया जाता है, वह लोक कर्तव्य है, तो वह ऋजुतापूर्वक कार्य करने के कर्तव्य की अपेक्षा करता है।

82. ऐसे मामले में वह अनुच्छेद 14 के अधीन होगा। **श्री अनादिमुक्त सदगुरू श्री मुक्तजी वंदस जी स्वामी स्वर्ण जयंती महोत्सव स्मारक न्यास और अन्य** बनाम **वी० आर० रूदानी और अन्य**[1] वाला मामला एक रोचक मामला है, जिसमें प्राइवेट महाविद्यालय को परमादेश का रिट जारी किया गया। पैरा 12 में, पृष्ठ 697 पर यह अभिनिर्धारित किया गया थाः—

"अब अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका चलाए जाने के बारे में किए गए आक्षेप के सारांश का विवेचन किया जा सकता है। तर्क दिया गया कि चूंकि महाविद्यालय का प्रबंध मंडल मुंबई लोक न्यास अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत एक न्यास है इसलिए यह उच्च न्यायालय की रिट अधिकारिता के अंतर्गत नहीं आता। दूसरे शब्दों में, दलील यह दी गई कि न्यास एक निजी संस्था है जिसके खिलाफ कोई परमादेश रिट जारी नहीं किया जा सकता। इस दलील के समर्थन में काउंसेल ने इस न्यायालय के इन दो विनिश्चयों का अवलंब लिया—(क) वैश्य डिग्री कालेज कार्यसमिति शामली और अन्य **बनाम** लक्ष्मी नारायण और अन्य [(1976) 2 एस० सी० आर० 1006] तथा (ख) दीपक कुमार विश्वास **बनाम** शिक्षा निदेशक [(1987) 2 एस० सी० सी० 252] इनमें से पहले मामले में प्रत्यर्थी संस्था एक स्नातक महाविद्यालय थी जिसका प्रबंध एक रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी द्वारा किया जाता था। पदच्युत प्रधानाचार्य ने पुनःस्थापन के लिए महाविद्यालय के खिलाफ वाद फाइल किया था। यह दलील दी गई थी कि महाविद्यालय की कार्य समिति जो सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत थी आगरा विश्वविद्यालय से (और बाद में मेरठ विश्वविद्यालय से) संबद्ध थी, एक कानूनी निकाय थी। इस दलील का महत्व इस बात में निहित है कि ऐसे मामलों में पुनःस्थापन का आदेश दिया जा सकता है यदि पदच्युति कानूनी बाध्यता के उल्लंघन में की गई है। किंतु इस न्यायालय ने इस दलील को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। यह मत व्यक्त किया गया था कि महाविद्यालय का प्रबंध मंडल एक कानूनी निकाय नहीं है क्योंकि वह किसी कानून द्वारा या के अधीन सर्जित नहीं किया गया है। इस बात पर जोर दिया गया कि जो संस्था कुछ कानूनी उपबंधों को अपना लेती है वह कानूनी संस्था नहीं बन जाती तथा पदच्युत कर्मचारी गैर कानूनी निकाय के विरुद्ध वैयक्तिक सेवा की संविदा प्रवर्तित नहीं कर सकता।"

पैरा 15 से 20 में यह अभिनिर्धारित किया गया था—

"यदि अधिकार विशुद्ध रूप से निजी स्वरूप के हैं तो कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता। यदि महाविद्यालय का प्रबंध मंडल विशुद्ध रूप से एक निजी संस्था है जिसका कोई लोक कर्तव्य नहीं है तो परमादेश जारी नहीं किया जा सकता। परमादेश रिट के ये दो अपवाद हैं। किंतु जब एक बार ये दोनों बातें अनुपस्थित हों और जब पक्षकार के पास कोई अन्य समतुल्य सुविधाजनक उपचार न हो तो परमादेश से इनकार नहीं किया जा सकता। यह बात सोचनी होगी कि अपीलार्थीगण-न्यास एक संबद्ध महाविद्यालय का प्रबंधकर्ता था जिसमें लोक धन सरकारी सहायता के रूप में संदत्त किया जाता है। शिक्षा-संस्थाओं के नियंत्रण, अनुरक्षण और कार्यकरण में सरकारी सहायता के रूप में संदत्त लोक धन की महती भूमिका है। सरकारी संस्थाओं की भांति सहायता-प्राप्त संस्थाए छात्रों को शिक्षा प्रदान करके लोक कृत्य का निर्वहन करती हैं। वे सम्बद्ध करने वाले विश्वविद्यालय के नियमों और विनियमों के अधीन होती हैं। उनके कार्यकलापों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण विश्वविद्यालय प्राधिकारियों द्वारा किया जाता है। अतः ऐसी संस्थाओं में नियोजन का स्वरूप लोक स्वरूप से वंचित नहीं होता। [देखिए एम० पी० जैन कृत दि इवाल्विंग इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव ला (1983) पृ० 266] इसी प्रकार शैक्षणिक कर्मचारियों की सेवा शर्तें होती हैं। जब विश्वविद्यालय उनके वेतनमानों के बारे में फैसला करता है तो वह प्रबंधमंडल पर आबद्धकर होगा। अतः शैक्षणिक कर्मचारियों की सेवा शर्तें पूरी तरह निजी स्वरूप की नहीं होतीं। उसे विश्वविद्यालय के विनिश्चयों का ऊपर से संरक्षण प्राप्त होता है जिनके द्वारा कर्मचारियों और प्रबंधमंडल में कानूनी अधिकार-कर्तव्य का संबंध स्थापित होता है। जब यह संबंध विद्यमान होता है, तो व्यथित पक्षकार को परमादेश रिट मंजूर किए जाने से इनकार नहीं किया जा सकता।

परमादेश विषयक विधि के क्षेत्र में विलक्षण रूप से विकास हुआ है। स्मरणीय है कि इंग्लैंड में परमाधिकार रिटों द्वारा उपचार बहुत सीमित व्याप्ति के साथ आरम्भ हुआ था और उसमें अनेक प्रक्रियात्मक असुविधाएं थीं। इन कठिनाइयों का निवारण करने के लिए लार्ड गार्डनर (लार्ड चांसलर) ने लॉ कमीशन ऐक्ट, 1965 की धारा 3(1)(ङ) के अनुसरण में विधि आयोग से 'एक सरल और अधिक कारगर प्रक्रिया विकसित करने की दृष्टि से प्रशासनिक कृत्यों और लोपों के

[1] [1990] 1 उम० नि० प० 551=(1989) 2 एस० सी० सी० 691.

न्यायिक नियंत्रण के लिए वर्तमान उपचारों की समीक्षा के लिए' अनुरोध किया था। विधि आयोग ने मार्च, 1976 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी (विधि आयोग सं॰ 73) उसे 1977 में रूल्स ऑफ कोर्ट (आर्डर 53) द्वारा कार्यान्वित किया गया था और उच्चतम न्यायालय अधिनियम, 1981 की धारा 31 द्वारा 1981 में कानूनी बल प्रदान किया गया था। इसके द्वारा पूर्ववर्ती सभी उपचारों को न्यायिक पुनर्विलोकन नामक एक कार्यवाही के साथ जोड़ दिया गया था। लार्ड डेनिंग ने इस न्यायिक पुनर्विलोकन की व्याप्ति की व्याख्या इस प्रकार की है—

"न्यायालय एक ही बार में वह अनुतोष प्रदान कर सकते हैं जो समुचित हो। न केवल सरशियोरेराई और परमादेश रिट बल्कि घोषणा एवं व्यादेश भी। यहां तक कि नुकसानी भी। प्रक्रिया बहुत अधिक सरल और तीव्र थी। रिट के बजाय केवल समन। कोई औपचारिक अभिवचन नहीं। साक्ष्य शपथपत्र द्वारा दिया गया। सिद्धांत के रूप में न कोई प्रतिपरीक्षा, न छानबीन आदि-आदि। किंतु महत्वपूर्ण रक्षोपाय थे। विशिष्टतया आवेदक को अर्हित होने के लिए न्यायाधीश की इजाजत लेनी थी।

इस कानून की पदावली नम्य पदों से युक्त है। इसमें विकास की गुंजाइश है। इसमें प्रयुक्त किए गए शब्द हैं "को ध्यान में रखते हुए"। वे शब्द बहुत अनिश्चित हैं। परिणामस्वरूप न्यायालय पूर्व विधि से आद्योपांत आबद्ध नहीं हैं। उन्हें उसे ध्यान में रखना होता है इसलिए कौन लोक प्राधिकारी है और कौन नहीं इस संबंध में पूर्व विधि पूर्ण रूप से आबद्धकर नहीं हैं और न ही उन विषयों से संबंधित पूर्व विधि जिनकी बाबत अनुतोष दिया जा सकता है। अभिप्राय यह है कि न्यायालय लोक विधि को उस रूप में विकसित कर सकते हैं जिसमें वे ठीक समझें। उन्होंने ऐसा किया है और कर रहे हैं।" (देखिए माननीय लार्ड डेनिंग कृत दि क्लोजिंग चैप्टर पृ॰ 122)

तथापि वहां परमादेश का परमाधिकार रिट लोक कर्तव्य का पालन करने के लिए बाध्य करने के लिए लोक प्राधिकरणों तक ही सीमित है। उनके लिए लोक प्राधिकरण से ऐसा प्रत्येक निकाय अभिप्रेत है जो कानून द्वारा सृष्ट किया जाए और जिसकी शक्तियां और कर्तव्य कानून द्वारा निश्चित किए जाएं। इसलिए सरकारी विभाग, स्थानीय प्राधिकरण, पुलिस प्राधिकरण और कानूनी उपक्रम तथा निगम से सब लोक प्राधिकरण हैं। किंतु हमारे न्यायालयों के लिए परमादेश की प्रकृति का रिट जारी करने के संबंध में ऐसी कोई सीमा नहीं है। अनुच्छेद 226 परमाधिकार रिट की प्रकृति के रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालयों को व्यापक शक्ति प्रदान करता है। यह आंग्ल विधि से एक महत्वपूर्ण विचलन है। अनुच्छेद 226 के अधीन किसी व्यक्ति या प्राधिकरण को रिट जारी किए जा सकते हैं। ये मूल अधिकारों में से किसी के प्रवर्तन के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए जारी किए जा सकते हैं।

18. अनुच्छेद 226 इस प्रकार है—

226. कुछ रिट जारी करने की उच्च न्यायालय की शक्ति—(1) अनुच्छेद 32 में किसी बात के होते हुए भी, प्रत्येक उच्च न्यायालय को, उन राज्यक्षेत्रों में सर्वत्र जिनके संबंध में वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए और किसी अन्य प्रयोजन के लिए उन राज्यक्षेत्रों के भीतर किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को या समुचित मामलों में किसी सरकार को ऐसे निदेश, आदेश या रिट जिनके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण रिट है या उनमें से कोई जारी करने की शक्ति होगी।

इस अनुच्छेद की व्याप्ति की व्याख्या न्या॰ सुब्बाराव ने द्वारकानाथ **बनाम** आयकर अधिकारी [(1965) 3 एस॰ सी॰ आर॰ 536] वाले मामले में इस प्रकार की है—

यह अनुच्छेद बृहत पदावली में लेखबद्ध है और यह प्रथमदृष्ट्या उच्च न्यायालयों को वहां तक पहुंचने की व्यापक शक्ति प्रदान करता है जहां भी अन्याय दिखाई पड़े। संविधान में सोच समझकर शक्ति की प्रकृति, वह प्रयोजन, जिसके लिए और वह व्यक्ति या प्राधिकरण जिसके विरुद्ध इसका प्रयोग किया जा सकता है, वर्णित करने में व्यापक भाषा का इस्तेमाल किया गया है। वह इस रिट (परमाधिकार रिट) की प्रकृति की रिट जारी कर सकता है जिस रूप में यह इंग्लैंड समझे जाते हैं किंतु क्योंकि उक्त शब्द इंग्लैंड में जारी किए जाने वाले रिटों को उन रिटों के समतुल्य नहीं करता जो भारत में जारी किए जा सकते हैं अपितु केवल उनसे ही सादृश्य प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालय निदेश, आदेश अथवा परमाधिकार रिटों से भिन्न रिट भी जारी कर सकता है। यह उच्च न्यायालयों को इस देश की विचित्र और जटिल आवश्यकताओं के अनुरूप अनुतोष को उपांतरित करने के लिए भी समर्थ बनाता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्ति की व्याप्ति को परमाधिकार रिट जारी करने की आंग्ल न्यायालयों की शक्ति के समतुल्य मानने का प्रयास करने से इंग्लैंड—जैसे अपेक्षाकृत छोटे देश में भारत जैसे विशाल देश में शासन की एकात्मक प्रणाली से, जो एक परिसंघीय ढांचे के अंतर्गत काम कर रहा है, अनेक वर्षों में अनावश्यक प्रक्रियात्मक निर्बन्धन पैदा हो गए हैं। ऐसे अर्थान्वयन से अनुच्छेदों का प्रयोजन ही विफल हो जाता है।

इस संदर्भ में अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त "प्राधिकारी" शब्द का अनुच्छेद 12 में प्रयुक्त इस शब्द से भिन्न रूप में उदार अर्थ किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 12 अनुच्छेद 32 के अधीन मूल अधिकारों के प्रवर्तन के प्रयोजन

के लिए ही सुसंगत है। अनुच्छेद 226 मूल अधिकारों एवं मूल अधिकारों से भिन्न अधिकारों के प्रवर्तन के लिए रिट जारी करने के लिए उच्च न्यायालयों को शक्ति प्रदान करता है अतः अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त "कोई व्यक्ति या प्राधिकारी" शब्द केवल कानूनी प्राधिकारियों और राज्य के परिकरणों तक ही सीमित नहीं है। इनके अंतर्गत अन्य कोई भी व्यक्ति या निकाय जो लोक कर्तव्य करता है आ सकता है। संबंधित निकाय का स्वरूप इसके लिए बहुत अधिक प्रासंगिक नहीं है। सुसंगत बात उस निकाय पर डाला गया कर्तव्य है। कर्तव्य का मूल्यांकन उस सकारात्मक बाध्यता के प्रकाश में किया जाना चाहिए जो उस व्यक्ति या प्राधिकारी को उस प्रभावित पक्षकार के प्रति करना था। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि किन माध्यमों से वह कर्तव्य अधिरोपित किया गया। यदि सकारात्मक बाध्यता विद्यमान है तो परमादेश रिट से इनकार नहीं किया जा सकता।"

83. इस मामले में निकाय पर अधिरोपित कर्तव्य के स्वरूप पर बल दिया गया है। यहां यह बता देना आवश्यक होगा कि अनुच्छेद 226 के अधीन प्राधिकारी/प्राधिकरण का अर्थ इस प्रकार अधिकथित किया गया कि उक्त शब्द को अनुच्छेद 12 में दिए गए अर्थ से प्रभेदित किया गया है। उसके बावजूद, यदि बल उसी सिद्धांत के आधार पर कर्तव्य के स्वरूप पर दिया जाना है, तो यह अभिनिर्धारित किया जाना ही होगा कि ये शिक्षा-संस्थाएं लोक कर्तव्यों का निर्वहन करती हैं। इस बात का विचार किए बिना कि शिक्षा संस्थाएं सहायता प्राप्त करती हैं, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह लोक कर्तव्य है। सहायता का अभाव कर्तव्य के स्वरूप को कम नहीं करता है।

84. आर॰ बनाम **पैनेल ऑन टेक-ओवर्स**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया:—

"इस अपील में प्रधान विवाद्यक, और वह एकमात्र विवाद्यक, जो दीर्घतर अवधि में तात्विक हो सकता है, यह है कि क्या यह विशिष्ट (उल्लेखनीय) निकाय विधि के ऊपर है। उसकी सम्मानीयता प्रश्नातीत है। इसी प्रकार उसकी सद्‌भाविकता भी प्रश्नातीत है। मुझे एक क्षण के लिए भी इस बारे में संदेह नहीं है कि वह लोक हित में प्रवर्तित होने के लिए आशयित है और वस्तुतः वह लोक हित में प्रवर्तित होता भी है। तथा वह अत्यधिक व्यापक विवेकाधिकार, जिसे वह अपने लिए प्राप्त करता है, आवश्यक है, यदि उसे सुदक्षतापूर्वक और प्रभावी रूप में कृत्य करना है। आत्म-नियमन (आत्म-नियंत्रण) और सरकारी या कानूनी नियमन के सापेक्ष गुणागुण पर राजनैतिक संविवाद में अंतर्वलित होने की इच्छा न रखते हुए, मैं इस अपील के प्रयोजनों के लिए यह मानकर सन्तुष्ट हूं कि लोक हित में आत्म-नियमन अधिमान्य है। किंतु इतना कहने के पश्चात यह प्रश्न उद्‌भूत होता है कि उस स्थिति में क्या होगा यदि पैनल पटरी से उतर जाता है। मान लीजिए कि इस विचार को समाप्त कर दिया जाता है कि उसे ऐसी रीति में अपनी शक्तियों का प्रयोग करना है, जो प्रकटतः अऋजु थी। तब क्या होगा। पैनल के काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि उस स्थिति में पैनल वित्तीय बाजारों में जनमत का समर्थन खो देगा और चालू (बना) रहने में असमर्थ हो जाएगा। इसके अतिरिक्त या आनुकल्पित रूप से संसद् हस्तक्षेप कर सकती है और वह हस्तक्षेप करेगी। ऐसा हो सकता है, किंतु इसमें कितना समय लगेगा और इस बीच कौन उन लोगों की सहायता के लिए आगे आ सकता है या आगे आएगा, जिन्हें ऐसे आचरण द्वारा दमित (उत्पीड़ित) किया जा रहा था।"

पृष्ठ 574 पर यह अभिनिर्धारित किया है:—

"जो चित्र सामने आता है, वह स्पष्ट है। सरकार के कार्य के रूप में यह विनिश्चय किया गया कि प्रबन्ध-ग्रहणों (अधिग्रहणों) के संबंध में एक केन्द्रीय आत्म-नियामक निकाय होना चाहिए जो कानूनी शक्तियों और शास्तियों की परिधि (घेरा) द्वारा समर्थित, संपुष्ट और संधृत होगा, जहां कहीं गैर-कानूनी शक्तियां और शास्तियां अपर्याप्त या अनस्तित्वशील हों या जहां ई॰ई॰सी॰ की अध्यपेक्षाएं ऐसे कानूनी उपबंधों की अपेक्षा करती हैं।"

पृष्ठ 577 पर यह अभिनिर्धारित किया गया:—

"वस्तुतः, उसकी नवीनता मान लेने पर, पैनल आश्चर्यजनक रूप से उस फार्मेट में फिट हो जाता है, जो आर॰ **बनाम** क्रिमिनल इंजरीज़ कम्पेनसेशन बोर्ड वाले मामले [1967 (2) ए एल एल ई आर 770] में इस न्यायालय के ध्यान में था। निस्संदेह, वह लोक-कृत्य का, और एक महत्वपूर्ण कर्तव्य का, निर्वहन कर रहा है। अधिग्रहणों और विलयों के क्षेत्रों में विधान को सीमित करने और पैनल का उक्त बाजार के उसके विनियमन के केन्द्र बिन्दु के रूप में प्रयोग करने के लिए व्यापार और उद्योग के राज्य सचिव की अभिव्यक्त इच्छा से ऐसा स्पष्ट है। नागरिकों के अधिकार उसके विनिश्चयों द्वारा परोक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। किन्तु सभी तो नहीं, किन्तु उनमें से कुछ के बारे में तकनीकी अर्थ में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने, अर्थात् स्टॉक एक्सचेंज के सदस्यों ने इस स्थिति के लिए अपनी अनुमति प्रदान कर दी है। कम से कम इस प्रश्न के अवधारण में कि संहिता का कोई भंग हुआ है या नहीं उसका न्यायिक रूप से कार्य करने का कर्तव्य है और उसके द्वारा यह प्राख्यान किया जाता है कि उसका मुख्य प्रयोजन दो अंशधारकों के बीच साम्या का व्यवहार करना है। उसकी शक्ति का स्रोत केवल भागतः नैतिक मान्यता और संस्थाओं तथा उनके सदस्यों की अनुमति पर आधारित है और उसका आधार व्यापार और उद्योग विभाग तथा बैंक ऑफ इंग्लैण्ड द्वारा

[1] 1987 (1) आल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 564 (पृ॰ 568).

प्रयुक्त कानूनी शक्तियां हैं। इस संदर्भ में मुझे उस स्थिति में निराशा होगी यदि न्यायालय कार्यपालिक शक्ति की वास्तविकताओं को मान्यता प्रदान नहीं करते हैं और अपनी दृष्टि को उस रीति की सूक्ष्मता और जटिलता द्वारा आच्छादित होने देते हैं। जिसमें उसका प्रयोग किया जा सकता है। माना कि वस्तुतः यह अकल्पनीय है कि ऐसे विधान के अभाव में जो व्यापार संघों को प्रभावित करता है, पैनल को न्यायालयों के अवधान से अलग रह कर अपने मार्ग पर चलना चाहिए; तथापि नागरिकों की प्रतिरक्षा में हमने यह अन्वेषण करने का प्रयास किया कि क्या उसे सुविधाजनक रूप में अपकृत्य की प्राइवेट विधि के स्थापित रूपों, अर्थात् व्यापार के निर्बन्धन में अनुयोज्य समुच्चयों जैसी अपकृत्य विधि द्वारा नियंत्रित किया जा सकता था और इस उद्देश्य के लिए हमने आवेदकों पर रिट का प्रारूप तैयार करने के लिए जोर डाला। यह कहना पर्याप्त होगा कि परिणाम पूर्णतः असंतोषजनक था और यह आश्चर्यजनक नहीं है कि पैनल के काउंसेल ने यह स्वीकार नहीं किया कि वह बहुत कम प्रभावी होगा।"

पृष्ठ 584 पर यह अभिनिर्धारित किया गया है:—

"अभी हाल ही में आर **बनाम** बी०बी०सी० एक्स पी [(1983) 1 आल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 241=(1983) 1 डब्ल्यू०एल०आर० 23] वाले मामले में न्या० वूल्फ को न्यायिक पुनर्विलोकन के आवेदन पर विचार करना पड़ा था, जिसमें ईप्सित अनुतोष, आदेश 53, नियम 1(2) के अधीन व्यादेश था। मामला बी०बी०सी० के एक कर्मचारी द्वारा लाया गया था। अनुतोष देने से इनकार करते समय न्या० वूल्फ ने यह कहा: [(1983) 1 ए एल एल इ आर 241 पृष्ठ 249=(1983) 1 डब्ल्यू० एल० आर० 23, पृष्ठ 31] आदेश 53 के नियम 1 का पैरा 2 द्वारा ऐसे मामले को न्यायिक पुनर्विलोकन की उपयोज्यता कठोरतापूर्वक सीमित नहीं की गई है, जिनमें परमादेश, प्रतिषेध या उत्प्रेषण का आदेश मंजूर किया जा सकता है। उसमें केवल यह अपेक्षा की गई है कि न्यायालय को उस विषय के स्वरूप का ध्यान रखना चाहिए, जिसकी बाबत ऐसा अनुतोष अनुदत्त किया जा सकता है। तथापि, यद्यपि न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए आवेदन ऐसे मामलों तक ही सीमित नहीं है, जिनमें परमादेश के रूप में अनुतोष मंजूर किया जा सकता है, फिर भी मैं आदेश 53, नियम 1(2) और सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट (उच्चतम न्यायालय अधिनियम), 1981 की धारा 31 की उपधारा (2) की शब्दावली के बारे में यह समझता हूं कि उसमें यह स्पष्ट किया गया है कि न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए आवेदन, पूर्णतः प्राइवेट या आंतरिक प्रकार के कार्यकलापों के विपरीत, लोक प्रकृति के कार्यकलापों के पुनर्विलोकन तक ही सीमित है। बी०बी०सी० द्वारा स्थापित अनुशासनिक अपील प्रक्रिया पूर्णतः आवेदक और बी०बी०सी० के बीच नियोजन की संविदा पर निर्भर है और इसलिए वह पूर्णतः प्राइवेट या आंतरिक प्रकार की प्रक्रिया है।"

प्राइवेट महाविद्यालय और उनकी भूमिकाः

85. भारत संघ ने यह आधार लिया है कि केन्द्रीय सरकार को चिकित्सीय या तकनीकी शिक्षा के लिए कोई अतिरिक्त वित्तीय उत्तरदायित्व सम्भालने के लिए संसाधन प्राप्त नहीं हैं। चिकित्सीय शिक्षा का मामला लेने पर, स्वास्थ्य क्षेत्र (सेक्टर) के लिए कुल योजना-परिव्यय 3.2 प्रतिशत है और चिकित्सीय शिक्षा को, प्राथमिकताओं के प्रभाजन और उपलब्ध निधियों के आबंटन के पश्चात् आनुपातिक अंश प्राप्त है। प्राथमिकताओं में प्राथमिक स्वास्थ्य, अस्पताल सेवाएं आदि का संवर्धन सम्मिलित है। विशेषतः सरकार वर्तमान स्तरों से उच्चतर स्तरों पर वित्तीय रूप से किसी प्राइवेट शिक्षा संस्था की सहायता करने में असमर्थ है। चिकित्सीय शिक्षा के खर्च से संबंधित कतिपय सांख्यिकीय विवरण केन्द्रीय सरकार के प्रतिशपथपत्र में दिए गए हैं। इस संबंध में कृपया शपथपत्र के पैरा 5 से 9 का अवलोकन किया जाए।

86. अतः केन्द्रीय सरकार की यह नीति रही है कि स्वीकृत नियमों और लक्ष्यों के अनुरूप, शिक्षा के क्षेत्र में प्राइवेट और स्वैच्छिक प्रयासों को अंतर्वलित किया जाए। उन प्रतिकूल परिणामों को, जो उस स्थिति में सामने आएंगे यदि प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को उस फीस संरचना तक स्वयं को सीमित करना होता है, जो सरकारी चिकित्सीय और तकनीकी शिक्षा संस्थाओं में प्रभारित की जाती है, भारत संघ के प्रतिशपथपत्र के पैरा 9 में प्रगणित किया गया है।

87. शिक्षा पर केन्द्रीय सरकार की नीति वर्ष 1986 में तैयार की गई थी। वर्ष 1992 में उसमें उपांतरण किए गए।

88. शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति के सुसंगत उद्धरण, अर्थात् पैरा 6.20, 10.1, 10.9 और 11.2 नीचे उपवर्णित किए जा रहे हैं:—

"6.20. स्तर बनाए रखने के हित में और अन्य अनेक विधिमान्य कारणों से, तकनीकी और वृत्तिक शिक्षा के वाणिज्यीकरण पर नियंत्रण रखा जाएगा। स्वीकृत नियमों और लक्ष्यों के अनुरूप, शिक्षा के इस क्षेत्र में प्राइवेट और स्वैच्छिक प्रयासों को अंतर्वलित करने के लिए आनुकल्पिक पद्धति तैयार की जाएगी।"

"10.1 योजना की पद्धति और शिक्षा के प्रबंधन में सुधार को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी। इस संबंध में मार्गदर्शक विचारणाएं ये होंगी:—

(क) शिक्षा की दीर्घावधि योजना और प्रबंध-परिप्रेक्ष्य तैयार करना और उसका देश की विकास और जनशक्ति संबंधी आवश्यकताओं से समन्वय;

(ख) विकेन्द्रीकरण और शिक्षा संस्थाओं के लिए स्वायत्तता की भावना का सर्जन;

(ग) गैर-सरकारी अभिकरणों के सहयोग और स्वैच्छिक प्रयास सहित, लोगों को

अंतर्वलित करने के कार्य को प्रधानता देना;

(घ) शिक्षा की योजना और प्रबंधन में और अधिक महिलाओं को सम्मिलित करना;

(ङ) प्रदत्त (विशेष) उद्देश्यों और नियमों के संबंध में जवाबदेही के सिद्धांत की स्थापना।"

"10.9 समुचित प्रबंधन के अधीन रहते हुए, गैर-सरकारी और स्वैच्छिक प्रयासों को प्रोत्साहन दिया जाएगा, जिसमें सामाजिक कार्यकर्ता समूह सम्मिलित होंगे, और वित्तीय सहायता का उपबन्ध किया जाएगा। इस के साथ ही, शिक्षा का वाणिज्यीकरण करने के लिए स्थापित संस्थाओं की स्थापना को रोकने के लिए कदम उठाए जाएंगे।"

"11.2 यथासम्भव सीमा तक हिताधिकारी समुदायों से विद्यालय भवनों और उपभोग्य वस्तुओं के प्रदाय को बनाए रखने के लिए कह कर और शिक्षा के उच्चतर स्तरों पर फीस में वृद्धि कर तथा सुविधाओं के दक्षतापूर्ण उपयोग द्वारा कुछ बचत करके और दान जुटा कर संसाधन बढ़ाए जाएंगे। तकनीकी और वैज्ञानिक जनशक्ति के अनुसंधान और विकास से सम्बद्ध संस्थाओं को, उपयोग करने वाले अभिकरणों पर सेस (उपकर) या प्रभार उद्गृहीत करके कुछ निधियां जुटानी चाहिए, जिनमें सरकारी विभाग और उद्यमी सम्मिलित होंगे। ये सभी उपाय न केवल राज्य संसाधनों पर भार को कम करने के लिए होंगे बल्कि शिक्षा पद्धति में उत्तरदायित्व के गुरुतर भाव सर्जित करने के लिए भी किए जाएंगे। तथापि, ये उपाय केवल सीमान्त रूप में ही कुल निधिकरण में योगदान करेंगे। सरकार और सामान्यतः सम्पूर्ण समुदाय ऐसे कार्यक्रमों के लिए निधियां जुटाएगा, उदाहरणार्थ, प्राथमिक शिक्षा का सामान्यीकरण; निरक्षरता को समाप्त करना; सम्पूर्ण देश में सभी वर्गों को शिक्षा के अवसरों की उपलभ्यता की समानता; शैक्षिक कार्यक्रमों की सामाजिक संगति, गुणवत्ता और कृत्यात्मक प्रभावकारिता बढ़ाना; वैज्ञानिक क्षेत्रों में ज्ञान बढ़ाना और प्रौद्योगिकी का विकास करना, जो आत्म-निर्भर आर्थिक विकास के लिए निर्णायक हो और राष्ट्रीय विकास हेतु मूल्यों और अनिवार्यताओं की समीक्षात्मक चेतना सर्जित करना।"

89. अतः आज की स्थिति में, विशेष रूप से उच्चतर शिक्षा के लिए, शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था करने में प्राइवेट पहल को निरुत्साहित करना अव्यवहारिक और अबुद्धिमत्ततापूर्ण होगा। शिक्षा के क्षेत्र में अत्यावश्यक संसाधनों का संवर्धन करने के लिए प्राइवेट सेक्टर को अंतर्वलित और वस्तुतः प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे कि इस संबंध में सांविधानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में यथासम्भव उन्नति की जा सके। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राइवेट महाविद्यालय समय की अनुभूत आवश्यकताएं हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि झोंपड़ियों में चलाए जाने वाले तथाकथित महाविद्यालयों को भी स्वीकार कर लिया जाना चाहिए, जहां कोई उपस्कर नहीं है, कोई प्रयोगशाला नहीं है और शिक्षा की कोई सुविधा नहीं है और बच्चों को अस्वास्थ्यकर वातावरण में शिक्षा प्राप्त करनी होती है। ऐसी शिक्षा संस्थाओं को इस बात का विचार किए बिना कड़ाई से समाप्त किया जाना चाहिए कि किस व्यक्ति ने ऐसी शिक्षा-संस्था को आरम्भ किया है या कौन ऐसी शिक्षा संस्था को स्थापित करना चाहता है। ये संस्थाएं शिक्षा के क्षेत्र में विषैली घास के समान हैं। जो लोग ऐसी शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने का प्रयास करते हैं, वे वित्तीय उद्यमी हैं और उनमें कोई नैतिकता या विवेक नहीं है। उनका एकमात्र उद्देश्य सौदेबाजी करके धन कमाना होता है और वे इस प्रकार लोगों की वृत्तिक उपाधि प्राप्त करने की उत्सुकता का शोषण करते हैं, जो उपाधि ऐसे देश में नियोजन के लिए पास-पोर्ट का काम करती है, जिसमें बेकारी ही बेकारी है। ऐसे लोगों को शिक्षा के समुद्र में जलदस्यु भी कहा जा सकता है।

90. इस स्थल प्रक्रम पर 48वें अखिल भारत चिकित्सीय सम्मेलन में पारित संकल्प के प्रति निर्देश करना उचित होगा।

संकल्प सं० 2

चिकित्सीय शिक्षा में धोखाधड़ी

यतः देश में अनेक ऐसी संस्थाएं स्थापित हो गई हैं, जो स्वयं को चिकित्सीय महाविद्यालय का नाम देती हैं; और यतः ऐसी संस्थाएं केपिटेशन फीस के रूप में बड़ी-बड़ी रकमें प्रभारित करती हैं, जो ऐसा व्यवहार कार्य है जिसका भारतीय चिकित्सा संगम और भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् ने अनेक बार विरोध किया है; और

यतः ऐसी संस्थाओं के पास न तो उपयुक्त भवन हैं और न समुचित उपस्कर ही है तथा उनमें अपेक्षित अर्हता वाले पर्याप्त स्टाफ का भी अभाव है तथा यह बात भी प्रकाश में आई है कि ये संस्थाएं छात्रों से बड़ी-बड़ी रकमें लेकर जनता को ठगती हैं यद्यपि इन संस्थाओं को प्राधिकारी/प्राधिकरणों द्वारा मान्यताप्रदान नहीं की गई है;

अतः, यह 48वां अखिल भारत चिकित्सीय सम्मेलन सरकारों से ऐसे व्यक्तियों/संस्थाओं के विरुद्ध कठोर उपाय करने का आग्रह करता है जो ऐसे चिकित्सा महाविद्यालय चलाते हैं/चलाती हैं, तथा उन्हें बंद करने और भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् को उन्हें मान्यता न देने की सिफारिश करने का आग्रह भी करता है।"

(48 वां सम्मेलन, दिसम्बर; 29, 31, 1972, अहमदाबाद)

91. तथापि इस संबंध में चेतावनी के रूप में कुछ कहा जाना आवश्यक होगा। सभी प्राइवेट संस्थाएं इस प्रवर्ग से संबंध नहीं रखती हैं। ऐसी शिक्षा संस्थाएं भी हैं, जिन्होंने लगन द्वारा उच्च शैक्षिक स्तर बनाए रखकर बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। वे अनेक मामलों में सरकार द्वारा चलाए गए महाविद्यालयों से भी आगे हैं। उनको प्रोत्साहन दिए जाने की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से, नियामक नियंत्रण जारी रखे जाने हैं और उन्हें सुदृढ़ किया जाना है। शिक्षा के वाणिज्यीकरण और उस क्षेत्र में काला-बाजार और धोखा-धड़ी को अवश्य ही रोका जाना चाहिए। राज्य को इस दिशा में अधिकतम प्रयास करना चाहिए।

92. यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं न्यूनतम स्तर और सुविधाएं बनाए रखती हैं, नियामक उपाय किए जाने चाहिएं सभी समूहों और प्रवर्गों के अंतर्गत प्रवेश केवल योग्यता पर ही आधारित होना चाहिए। समाज के निर्बल वर्गों और ऐसे अन्य समूहों के पक्ष में स्थानों का आरक्षण किया जा सकता है, जो विशेष व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। प्रवेश हेतु नियम पूर्वावधारित, वस्तुपरक और स्पष्ट होने चाहिएं।

93. स्कीम से पूर्व यह प्रश्न उद्भूत हो सकता है कि क्या स्कीम के प्रवर्तन के लिए परमादेश जारी किया जा सकता है, यदि न्यायालय द्वारा ऐसा प्रस्थापित किया जाता है। इसके लिए हम **सुमन गुप्ता और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य**[1] वाले मामले का अवलोकन करना उचित समझते हैं।

> "भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् को, इस निर्णय में अंतर्विष्ट मताभिव्यक्तियों के प्रकाश में, राज्य के बाहर चिकित्सा महाविद्यालयों में स्थानों पर नामनिर्देशन के लिए अभ्यर्थियों के चयन को अवधारित करने के लिए समुचित सांविधानिक आधार तैयार करने का निदेश दिया जाता है। जब तक ऐसी नीति तैयार नहीं कर ली जाती है और चयनित प्रक्रिया में ठोस मापदण्ड सन्निविष्ट नहीं कर लिए जाते हैं, तब तक पूर्णतः योग्यता के आधार पर अभ्यर्थियों का चयन करके नामनिर्देशन किए जाएंगे। और नामनिर्देशित अभ्यर्थी ऐसे अभ्यर्थी होंगे, जो योग्यता क्रम में, गृह राज्य के चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु चयनित अभ्यर्थियों से ठीक नीचे होंगे।"

94. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मुनाफा कमाना एक बुराई है। यदि विद्युत् जैसी लोक उपयोगिता (की वस्तु) को नियंत्रित किया जा सकता है, तो निश्चय ही वृत्तिक महाविद्यालयों को भी विनियमित (नियन्त्रित) किये जाने की आवश्यकता है।

95. **केरल राज्य विद्युत् बोर्ड** बनाम **एस०एन० गोविन्द प्रभु**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है:—

> "यह एक लोक उपयोगिता वाला एकाधिकार उपक्रम है, जो शुद्ध लाभ हेतुक द्वारा नहीं चलाया जा सकता और यह कि उस लाभ से नहीं बचा जा सकता किंतु उसकी सेवा न कि लाभ, उसकी कार्यवाही से सूचित होने चाहिएं। बोर्ड का कृत्य अपने कार्यों का इस प्रकार से प्रबंध करना नहीं है जिससे एक प्राइवेट निगमित निकाय के रूप में भी अधिकतम लाभ अर्जित किया जा सके और उसके शेयरधारकों को व्यापक लाभांश का संदाय करने के उद्देश्य से अधिक लाभ अर्जित करने की इच्छा हो। किंतु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि बोर्ड अपने कर्तव्यों के निर्वहन और कानून के अधीन. अपने दायित्वों का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए लाभ अर्जित नहीं कर सकता। इससे यह सामान्य भाव है कि बोर्ड को अपने कार्यों का ठीक आर्थिक सिद्धांतों के आधार पर प्रबंध करना चाहिए। वाणिज्य के क्षेत्र में प्रवेश करने पर कोई भी लोक सेवा उपक्रम यह कहने के लिए कि वह कारबार के उन सिद्धांतों की उपेक्षा करेगा जो कि उस लोक सेवा उपक्रम के लिए उतने ही आवश्यक हैं, जितने कि वाणिज्यिक प्रयास के लिए उपयुक्त हैं।"

पृष्ठ 650-651 पर यह अभिनिर्धारित किया है:—

> "बोर्ड उसको लोक उपयोगिता उपक्रम के स्वरूप के रूप में अनुज्ञात नहीं कर सकता, जिसको शुद्ध लाभ हेतु केवल प्राइवेट या विनिर्माण गृह में बदला जा सके न तो टैरिफ और न ही परिणामी अधिशेष उस सीमा तक पहुंच सकते हैं जिससे यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकले कि बोर्ड ने अपनी लोक उपयोगिता वाला स्वरूप खो दिया है। जब ऐसा होता है तो न्यायालय स्पष्टतः मनमाने टैरिफ के संशोधन को अभिखण्डित कर सकता है।"

96. **तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और एक अन्य** बनाम **गुजरात के प्राकृतिक गैस का उपभोग करने वाले उद्योगों का संगम और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है:—

> "यह धारणा है कि 'खर्च और.....' का आधार लोक उद्यमों के मामले में कीमतों के नियतन का एकमात्र मापदण्ड हो सकता है, मुख्यतः इस संकल्पना से उद्भूत होती है कि ऐसे उद्यमों को 'कोई लाभ नहीं, कोई हानि नहीं' आधार पर या न्यूनतम लाभ आधार पर कार्य करना चाहिए। यह सही दृष्टिकोण नहीं है। आवश्यक वस्तुओं या सेवाओं के मामले में, जहां प्राइवेट समुत्थानों को विनिहित पूंजी पर न्यूनतम प्रतिफल अनुज्ञात किया जाना चाहिए, वहीं लोक उपक्रमों या उपयोगिता उपक्रमों (उपयोगी वस्तुओं/जनोपयोगी सेवाओं) को घाटे पर भी चलाया जा सकता है, यदि ऐसा करना आवश्यक हो, और न्यूनतम प्रतिफल आश्वस्त (सुनिश्चित) नहीं भी हो सकता है। कम महत्वपूर्ण किंतु फिर भी आधारिक वस्तुओं के मामले में, ऐसा हो सकता है कि उनसे न्यूनतम लाभ मार्जिन सहित, आवश्यकताओं की पूर्ति करना अपेक्षित (आवश्यक) हो। किंतु प्रवर्तन के किसी अनुकूल क्षेत्र के मिलने पर, 'वाणिज्यिक लाभ' का पब्लिक सेक्टर उद्यमों के लिए भी अभिशाप 'निषिद्ध

---

[1] ए० आई० आर० 1983 एस० सी० 1235=[1983] 3 एस० सी० आर० 985.
[2] [1987] 1 उम० नि० प० 715=[1986] 3 एस० सी० आर० 628.

[1] ए० आई० आर० 1991 एस०सी० डब्ल्यू० 1900=(1990) सप्ली० एस०सी०सी० 397. पृष्ठ 399.

फल' के रूप में माना जाना आवश्यक नहीं हैं।"

97. **हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड** बनाम **एं॰पी॰एस॰ई॰बी॰**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है—

इस न्यायालय ने अभियक्त रूप से यह निवेदन अस्वीकार कर दिया, जिसे केरल उच्च न्यायालय ने महत्व दिया था, कि राज्य सरकार द्वारा विनिर्देश के अभाव में स्थिति वही होगी, जैसी कि वह 1978 वाले संशोधन से पूर्व थी, अर्थात् बोर्ड को अपने कार्य इस प्रकार करने थे और टैरिफों का ऐसी रीति में समायोजन करना था, जिससे और अधिक हानि उपगत न हो। इस निवेदन को अस्वीकार करते हुए, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया (एस॰सी॰सी॰ पृष्ठ 213-214, पैरा 10):—

"हमारा यह मत है कि सरकार की उस अधिशेष को विनिर्दिष्ट करने में असफलता, जिसका बोर्ड द्वारा उत्पादन किया जा सकता है, बोर्ड को, ऐसे व्ययों को, जिनका पूरा किया जाना आवश्यक हो, पूरा करने के पश्चात् अधिशेष का उत्पादन करने से निवारित नहीं कर सकती। कदाचित् अधिशेष का परिमाण उस परिमाण से अधिक नहीं हो सकेगा, जिसका किसी प्रज्ञावान् लोक सेवा उपक्रम से उन हितों का बलिदान किए बिना उत्पादन करने की आशा की जाती है, जिन हितों को उसके द्वारा पूरा किया जाना प्रत्याशित है और वह प्राइवेट उद्यमी के शुद्ध लाभ हेतु की भावना से अभिभूत नहीं होगा। बोर्ड लोक उपयोगिता उपक्रम के रूप में अपने स्वरूप के लाभ प्रेरित प्राइवेट व्यापार या विनिर्माण घराने (घर) के रूप में बदले जाने की अनुज्ञा कर सकेगा। न तो टैरिफ और न ही परिणामी अधिशेष उस सीमा तक पहुंच सकते हैं जिससे यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकले कि बोर्ड ने अपना लोक उपयोगिता वाला स्वरूप त्याग दिया है। जब ऐसा होता है, तब न्यायालय स्पष्टतः मनमाना होने के कारण टैरिफ के संशोधन को अभिखण्डित कर सकता है। किंतु तब तक नहीं। नहीं मात्र इसलिए क्योंकि एक अधिशेष का उत्पादन किया गया है, ऐसा अधिशेष, जो किसी भी रूप में व्यर्थ नहीं कहा जा सकता। तब न्यायालय टैरिफ पर विचार करने से अपने आप को विरत रखेगा। आखिरकार, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अकसर कहा गया है, 'मूल्य-नियतन' न तो न्यायालय की 'विशेष योग्यता' है और न ही कृत्य है।"

98. यह दलील नहीं दी जा सकती कि शिक्षा निःशुल्क उपलब्ध करायी जानी चाहिए और वह पूर्त आधार पर होनी चाहिए। इस संबंध में हम पी॰आर॰ गणपति अय्यर की कृति "द ला रिलेटिंग टू हिन्दू एण्ड मोहमडन एनडाउमेंट्स" से, उस दान की संकल्पना के संबंध में उद्धरण देना उपयोगी समझते हैं, जो नम्य है। अध्याय 3 के पृष्ठ 46 पर यह कहा गया है—

"महाविद्यालय, औषधालय आदि पूर्त स्थापन होता है, जब कि मस्जिद, मंदिर आदि धार्मिक स्थापन होता है उनके लिए विन्यास किये जा सकते हैं।"

पृष्ठ 47 पर यह कहा गया है:—

आंग्ल विधि में "दान" शब्द का सामान्य और तकनीकी, दोनों ही प्रकार का अर्थ है। उक्त शब्द का सामान्य अर्थ उसके विधिक या तकनीकी अर्थ से मेल नहीं खाता है। सामान्य या आम अर्थ के अनुसार भी, उक्त शब्द का एकाधिक अर्थों में प्रयोग किया जाता है। संकीर्ण और सीमित अर्थ में, उक्त शब्द की सामान्य स्वीकृति "भौतिक आवश्यकता या अभाव से राहत" के रूप में है (बेयड्स ट्रस्टीज़ **बनाम** लार्ड एडवोकेट 15 सेशन केसेज़, चौथी सीरीज़ 682) वाले मामले में लार्ड शेण्ड के अनुसार कुछ और अधिक विस्तारित अर्थ में उक्त शब्द का सामान्य और आम ग्रहीतार्थ (अर्थ) 'निर्धनता से राहत' 'पूर्त कार्य या प्रयोजन' है, जो निर्धनता या अभाव से मुक्ति दिलाने में निहित है। वही लार्ड प्रेंजीडेंट (इंग्लिश)। उससे भी अधिक विस्तारित अर्थ में और उसके सामान्य और प्रचलित अर्थ में "दान" में सभी प्रकार के फायदे और सुविधाएं सम्मिलित हैं, चाहे वे धार्मिक हों अथवा बौद्धिक या भौतिक हों, जो ऐसे व्यक्तियों को प्रदत्त की गई हों, जो अपनी निर्धनता के कारण, सहायता के बिना स्वयं ऐसे सुविधाओं को अभिप्राप्त करने में असमर्थ हैं। [कमिश्नर्स फार स्पेशल परपज़ेज ऑफ इन्कम टैक्स **बनाम** पेमसेल, [(1891) ए॰सी॰ 531 (पृ॰537)] ।"

पृष्ठ 49 पर यह कहा गया है:—

उसके विधिक अर्थ में दान में, जैसा कि उसे आंग्ल विधि में समझा जाता है चार प्रधान प्रभाग अंतर्विष्ट होते हैं—(1) निर्धनता से राहत के लिए न्यास; (2) शिक्षा की उन्नति के लिए न्यास; (3) धर्म की उन्नति के लिए न्यास; और (4) समाज के लिए लाभ कर अन्य प्रयोजनों के लिए न्यास, जो पूर्वगामी शीर्षों में से किसी शीर्ष के अंतर्गत नहीं आते हैं।"

बी॰के॰ मुखर्जी कृत "दि हिन्दू लॉ ऑफ रिलीजियस एंड चैरिटेबल ट्रस्ट" (पृष्ठ 58, पैरा 2.7क) में यह कहा गया है—

"2.7 क शिक्षा—लार्ड मैकनेग्टन के वर्गीकरण में पूर्त न्यासों के द्वितीय प्रवर्ग में शिक्षा हेतु न्यास समाविष्ट हैं। यह आवश्यक नहीं है कि यह न्यास अनन्यतः निर्धन लोगों के लिए ही आशयित हों। निस्संदेह, लोक प्रयोजन होना चाहिए, ऐसी कोई चीज (होनी चाहिए) जिसकी प्रवृत्ति समाज का फायदा करने के लिए हो। किसी शैक्षिक प्रयोजन के संवर्धन द्वारा या उसे अग्रसर करके साधारण लोक लाभ होना चाहिए। किंतु यदि इस महत्वपूर्ण शर्त को पूरा कर दिया जाता है, तो "शिक्षा" की परिधि अनेक अर्थों में पर्याप्त रूप से व्यापक प्रतीत होगी।"

99. **सेंट स्टीफन कालेज** बनाम **दिल्ली विश्वविद्यालय**[1]

[1] (1991) 3 एस॰ सी॰ सी॰ 299 (पृष्ठ 306-307)= ए॰ आई॰ आर॰ 1991 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 1329=ए॰ आई॰ आर॰ 1991 एस॰ सी॰ 1473.

[1] (1992) 1 एस॰ सी॰ सी॰ 558, पृष्ठ 609-10.

वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है:—

> "शिक्षा संस्थाएं व्यापार घराने (घर) नहीं हैं। वे धन उत्पन्न नहीं करते। ये संस्थाएं लोक निधियों या प्राइवेट (निजी) सहायता के बिना जीवित नहीं रह सकती हैं। यह कहा गया है कि छात्र-शुल्क के संग्रहण पर निर्बन्धन भी (होता) है। फीस के संग्रहण पर निर्बन्धन होने के कारण, अल्पसंख्यकों पर, सहायतानुदान के बिना, शिक्षा संस्थाओं को चलाने का भार अधिरोपित नहीं किया जा सकता है। उन्हें अन्य लोगों की तुलना में कोई आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं होता है। राज्य की सहायता के बिना शिक्षा संस्थाएं चलाना सम्भव नहीं है। केरल एजूकेशन बिल [(1970) 2 एस० सी० सी० 417=(1971)1 एस०सी०आर० 734] में मु० न्या० दास ने भी यह मत व्यक्त किया है। अतः अल्पसंख्यकों से स्वयं अपने बूते पर शिक्षा संस्थाएं चलाने के लिए नहीं कहा जा सकता है।"

100. यह अभिनिर्धारित करने का अभी समय नहीं आया है कि शिक्षा पूर्त आधार पर उपलब्ध करायी जानी चाहिए। यह सच है कि जब कभी भी शिक्षा की प्रगति के लिए न्यास बनाए गए हैं, तो उन्हें पूर्त प्रयोजन के लिए न्यास ही माना गया। **विशेष आय-कर आयुक्त** बनाम **पेमसेल**[1] वाले मामले में लार्ड मैकनेग्टन ने यह कहा है:—

> "निस्संदेह 'दान' और 'पूर्त' शब्दों का सामान्य अर्थ उनके विधिक अर्थ से मेल नहीं खाता है, और निस्संदेह पुस्तकों से ऐसे कुछ विनिश्चय संगृहीत करना काफी सरल है, जिनसे यह प्रतीत होता है कि न्यायालय के सिद्धांत को अतिवादी सीमा तक खींचा गया है और लगभग हास्यास्पद सीमा तक दोनों अर्थों के बीच तुलना प्रस्तुत की गई है। किंतु फिर भी मतभेद के मुद्दे को नियत करना कठिन है, और कोई भी व्यक्ति 'दान' शब्द के सामान्य अर्थ को परिभाषित करने में अभी तक सफल नहीं हुआ है। क्राउन (सम्राट्/सम्राज्ञी) के विद्वान काउंसेल ने ऐसा करने का कोई प्रयास नहीं किया। मास्टर ऑफ रौल्स की व्याख्या भी संतोषजनक नहीं है . . . .। 'दान' पद में, उसके विधिक अर्थ में, चार प्रधान प्रभाग समाविष्ट हैं; निर्धनता दूर करने के लिए न्यास, शिक्षा की उन्नति (प्रगति) के लिए न्यास; धर्म (सम्प्रदाय) की उन्नति (प्रगति) के लिए न्यास, और समाज के लिए लाभकर अन्य प्रयोजनों के लिए न्यास, जो पूर्वगामी शीर्षों में से किसी शीर्ष के अंतर्गत नहीं आते हैं। अंतिम निर्दिष्ट न्यास विधि की दृष्टि में कम पूर्त न्यास नहीं हैं क्योंकि, प्रसंगवश वे धनवान और निर्धन, दोनों ही को फायदा पहुंचाते हैं, क्योंकि वस्तुतः प्रत्येक दान के कार्य को, जिसे दान कहा जा सकता है, प्रत्यक्षतः या परोक्षतः ऐसा करना ही चाहिए।"

101. अगला मामला, जिसके प्रति निर्देश किया जा सकता है, **दि किंग** बनाम **कमिश्नर फार स्पेशल परपजेज ऑफ दि इन्कम टैक्स**[2] वाला मामला है। उसमें यह प्रश्न उद्भूत हुआ था कि क्या नार्थ वेल्स के यूनिवर्सिटी कालेज को पूर्त प्रयोजनों के लिए स्थापित कालेज माना जा सकता था। फ्लैचर माल्टन, एल० जे० ने, ऊपर निर्दिष्ट पेमसेल वाले मामले का अवलंब लेते हुए, यह अभिनिर्धारित किया कि शिक्षा की उन्नति (प्रगति) के लिए न्यास पूर्त न्यास था।

102. **दि एबे मालवेर्न वेल्स लिमिटेड** बनाम **मिनिस्टर ऑफ टाऊन एंड कंट्री पलानिंग**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया:—

> "वर्तमान मामले में, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी व्यक्ति यह सुनिश्चित करने के लिए कंपनी के विधान को देखने के लिए हकदार है और वस्तुतः वह ऐसा करने के लिए आबद्ध है कि वस्तुतः नियंत्रण किस का है। मैं यह पाता हूं कि कंपनी के अनुच्छेदों के अनुच्छेद 3 द्वारा कंपनी, पूर्णतः परिषद् नामक एक निकाय द्वारा नियंत्रित है जो व्यक्तियों का एक निकाय है, और अनुच्छेद 64 द्वारा व्यक्तियों का उक्त निकाय न्यास-विलेख के न्यासी के रूप में होना चाहिए। अतः, सिद्धांततः, कंपनी को लाभ कमाने और पारिणामिक लाभ को सदस्यों के बीच लाभांश के वितरण में लगाने के प्रयोजन के लिए अपनी सम्पत्ति और आस्तियों को विनियोजित करने की शक्ति प्राप्त है, मैं यह पाता हूं कि वे व्यक्ति जो कंपनी की संक्रियाओं (कार्यों) को विनियमित करते हैं, अपनी संक्रियाओं में निर्बन्धित रूप से स्वतंत्र व्यक्ति नहीं है, बल्कि वे न्यास-विलेख के न्यासी हैं और न्यास-विलेख के निबंधनों के अधीन वे कंपनी की सम्पत्ति का उपयोग एक विशिष्ट रीति में ही कर सकते हैं और उन्हें लाभ कमाने के प्रयोजन के लिए कंपनी की आस्तियों का उपयोग नहीं करना चाहिए। मेरा यह निष्कर्ष है कि वे न्यास-विलेख के न्यासों द्वारा पूर्णतः आबद्ध हैं और वे न्यास पूर्त न्यास हैं। अतः मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जहां नाम के लिए, कंपनी की सम्पत्ति संगम ज्ञापन और अनुच्छेदों के उपबंधों के अधीन धारित होती है, वहीं वस्तुतः कंपनी की सम्पत्ति संगम ज्ञापन और अनुच्छेदों के निबंधनों तथा न्यास-विलेख के उपबंधों द्वारा विनियमित है और इसलिए कंपनी को वस्तुतः अपनी सम्पत्ति और आस्तियों का उपयोग करने में निर्बन्धित किया गया है और वह उनका केवल उन पूर्त प्रयोजनों के लिए ही उपयोग कर सकती है, जो न्यास-विलेख में वर्णित हैं।"

103. दान को परिभाषित करने के प्रयोजन के लिए ऐसा हो सकता है, किंतु हमारे जैसे देश में यह अभिनिर्धारित करना असम्भव है कि ऐसे सिद्धांतों को अग्रसर या कार्यान्वित किया जा सकता है।

न्या० बी०पी० जीवन रेड्डी (अपनी ओर से और न्या० एस० रत्नवेल पाण्डियन की ओर से):—

104. चिकित्सीय और इंजीनियरी शिक्षा देने के कार्य में रत या

[1] 1891 ए० सी० 531=3 टैक्स केसेज 53.

[2] (1909) 5 टैक्स केसेज 408=100 एल०टी० 585=25 टी० एल० आर० 368.

[1] 1951 (2) आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 154 पृष्ठ 160-161=1 टी० एल० आर० 1050.

रत होने का विचार रखने (की प्रस्थापना करने) वाली प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं द्वारा फाइल की गई इन रिट याचिकाओं में, कुमारी मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य वाले मामले में न्या० कुलदीप सिंह और आर०एम० सहाय वाले खण्ड न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय की शुद्धता को प्रश्नगत किया गया है। याचियों का, जो आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु राज्यों में मेडिकल/इंजीनियरिंग कालेज चला रहे हैं, यह कहना है कि यदि ऊपर निर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में किया गया विनिश्चय सही है और उसका संबंधित राज्य सरकारों द्वारा अनुसरण और क्रियान्वयन किया जाता है — जैसा करने के लिए वे वस्तुतः आबद्ध हैं — तो उन्हें बंद किया जाना होगा; उनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। अतः सर्वप्रथम यह अभिनिश्चित करना आवश्यक है कि उक्त विनिश्चय में ठीक-ठीक क्या अधिकथित किया गया है।

105. कर्नाटक विधानमण्डल ने वर्ष 1984 में [कर्नाटक एजुकेशनल इन्स्टीट्यूशन्स (प्रोहिबीशन आफ कैपिटेशन फीस) ऐक्ट] कर्नाटक शिक्षा संस्थाएं (प्रति व्यक्ति फीस का प्रतिषेध) अधिनियम को अधिनियमित किया। उक्त अधिनियम की उद्देशिका में यह कहा गया है:—

> *"कर्नाटक राज्य में शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश हेतु कैपिटेशन फीस के संग्रहण को प्रतिषिद्ध करने और उससे संबंधित विषयों के लिए अधिनियम;
>
> यतः शिक्षा संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश देने के लिए कैपिटेशन फीस संगृहीत करने की प्रथा राज्य में काफी फैली हुई है;
>
> और यतः शिक्षा के बड़े पैमाने पर वाणिज्यीकरण को बढ़ावा देने के अतिरिक्त, यह अवांछनीय प्रथा शैक्षिक स्तरों (मानकों) के बनाए रखने में उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ है;
>
> और यतः कैपिटेशन फीस के संग्रहण के प्रतिषेध और उससे संबंधित अन्य विषयों का उपबंध करके, लोक हित में इस बुरी प्रथा को प्रभावी रूप से नियंत्रण में रखना आवश्यक समझा गया है;
>
> अतः भारत के गणराज्य के चौंतीसवें वर्ष में कर्नाटक राज्य विधानमण्डल द्वारा यह अधिनियमित किया जाए।"

धारा 2 के खण्ड (ख) में "कैपिटेशन फीस" पद को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:—

> *"2(ख). 'कैपिटेशन फीस' से ऐसी कोई रकम अभिप्रेत है, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए, जो धारा 5 के अधीन विहित फीस के आधिक्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संदत्त या संगृहीत की जाती है, किंतु उसके अंतर्गत धारा 3 के परंतुक के अधीन विनिर्दिष्ट निक्षेप नहीं आता है।"

धारा 3 द्वारा, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के होते हुए भी, किसी शिक्षा संस्था द्वारा या उसके प्रबंध से सम्बद्ध किसी भी व्यक्ति द्वारा कैपिटेशन फीस का संग्रहण प्रतिषेध किया गया है, उक्त धारा उसके परंतुक सहित इस प्रकार है:—

> **"3. कैपिटेशन फीस का संग्रहण प्रतिषेध — तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, किसी शिक्षा संस्था द्वारा, जो ऐसी संस्था के प्रबंध का भारसाधक है या उसके लिए उत्तरदायी है, कोई कैपिटेशन फीस (प्रतिव्यक्ति फीस) संगृहीत नहीं की जाएगी:
>
> परंतु . . . . ।"

धारा 5, जो पूर्वोक्त परिभाषा में निर्दिष्ट अन्य उपबंध है, इस प्रकार है:—

> ***"5. फीस का विनियम—(1) सरकार, अधिसूचना द्वारा, ट्यूशन फीस या किसी अन्य फीस या निक्षेप या अन्य रकम को विनियमित करने के लिए सक्षम होगी, जो छात्रों के किसी वर्ग या सभी वर्गों की बाबत किसी संस्था द्वारा या ऐसी संस्थाओं के वर्ग द्वारा प्राप्त या संगृहीत की जाए।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है:—

> "Act to prohibit the collection of capitation fee for admission to educational institutions in the State of Karnataka and matters relating thereto;
>
> Whereas the practice of collecting capitation fee for admitting students into educational institutions is widespread in the State;
>
> And whereas this undersirable practice beside contributing to large scale commercialisation of education has not been conducive to the maintenance of educational standards;
>
> And whereas it is considered necessary to effectively curb this evil practice in public interest by providing for prohibition of collection of capitation fee and matters relating thereto;
>
> Be it enacted by the Karnataka State Legislature in the Thirty-Fourth Year of the Republic of India as follows"

> * "2(b). 'Capitation fee' means any amount, by whatever name called, paid or collected directly or indirectly in excess of the fee prescribed under section 5, but does not include the deposit specified under the proviso to Section 2."

> ** "3. Collection of capitation fee prohibited— Notwithstanding anything contained in any law for the time being in force, no capitation fee shall be collected by or on behalf of any educational institution or by any person who is incharge of or is responsible for the management of such institution:
>
> Provided . . . ."

> *** "5. Regulation of fees etc—(1) It shall be competent for the Government, by notification, to regulate the tution fee or any other fee or deposit or other amount that may be received or collected by any educational institution or class of such institutions in respect of any or all class or classses of students."

(2) कोई भी शिक्षा संस्था उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित या धारा 3 के परंतुक के अधीन अनुज्ञात रकमों के आधिक्य में कोई फीस या रकम संगृहीत नहीं करेगी या निक्षेप स्वीकार नहीं करेगी।

(3) प्रत्येक शिक्षा संस्था उसके द्वारा संगृहीत फीस या कैपिटेशन फीस या निक्षेप या रकम के लिए रसीद देगी।

(4) फीस या कैपिटेशन फीस या निक्षेप या अन्य रकम के रूप में किसी भी शिक्षा संथा द्वारा प्राप्त सभी धन किसी अनुसूचित बैंक में संथा के खाते में जमा कराए जाएंगे और उन्हें संस्था के सुधार के लिए और शैक्षिक सुविधाओं के विकास के लिए तथा ऐसे अन्य सम्बद्ध प्रयोजन के लिए और ऐसी सीमा तक और ऐसी रीति में उपयोजित और व्यय किए जाएंगे, जिन्हें सरकार आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करें।

(5) उपधारा (4) के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, सरकार किसी भी शिक्षा संस्था से अपने कार्यक्रम या संस्था के सुधार और विकास की योजनाएं सरकार के अनुमोदन हेतु प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगी।"

106. धारा 4 में राज्य में शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के विनियमन का उपबंध किया गया है। उपधारा (1) के अनुसार, प्रवेश हेतु छात्रों जिन छात्रों को पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया जा सकता है कि अधिकतम संख्या और न्यूनतम अर्हताएं सरकार द्वारा विहित की जाएंगी। तथापि, विश्वविद्यालय द्वारा चलाई जा रही और उससे सम्बद्ध संस्था में पाठ्यक्रम की दशा (के मामले) में, न्यूनतम अर्हताएं विश्वविद्यालय द्वारा नियत की जाएंगी, न कि सरकार द्वारा । धारा 4 की उपधारा (2) और (3) धारा 3 के परंतुक के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि के दौरान कैपिटेशन फीस के संबंध में है। उनके महत्व को देखते हुए, उनका पूर्णतः उपवर्णित किया जाना उचित होगाः—

*"(2) धारा 3 के परंतुक के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि के दौरान प्रभारित या संगृहीत कैपिटेशन फीस को विनियमित करने के लिए, सरकार समय-समय पर, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, प्रत्येक प्राइवेट शिक्षा संस्था या ऐसी संस्थाओं के वर्ग या वर्गों की बाबतः—

(क) सरकारी स्थानों के रूप में अलग रखे गए स्थानों की संख्या;

(ख) ऐसे स्थानों की संख्या, जो ऐसी संस्था के प्रबंधतंत्र द्वारा भरे जा सकेंगे;

(i) योग्यता के आधार पर कर्नाटक के छात्रों में से, ब्याज सहित या रहित, उतने वर्षों के पश्चात् जो उसमें विनिर्दिष्ट किए जाएं, किंतु कैपिटेशन फीस के संदाय के बिना, प्रतिदेय नकद निक्षेपों के संदाय पर; या

(ii) विवेकानुसार;

---

(2) No educational institution shall collect any fees or amount or accept deposits in excess of the amounts notified under sub-section (1) or permitted under the proviso to section 3.

(3) Every educational institution shall issue an official receipt for the fee or capitation fee or deposits or other amount collected by it.

(4) All moneys received by any educational institution by way of fee or capitation fee or deposits or other amount shall be deposited in the account of the institution, in any Scheduled Bank and shall be applied and expended for the improvement of the institution and the development of the educational facilities and for such other related purpose and to such extent and in such manner as may be specified by order by the Government.

(5) In order to carry out the purposes of sub-section (4), the Government may require any education institution or to submit their programmes or plans of improvement and development of the institution for the approval of the Government."

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार हैः—

"(2) In order to regulate the capitation fee charged or collected during the period specified under the proviso to section 3, the Government may, from time to time, by general or special order, specify in respect of each private educational institution or class or classes of such institutions.

(a) the number of seats set apart as Government seats;

(b) the number of seats that may be filled up by the management of such institution;

(i) from among Karnataka students on the basis of merit, on payment of such cash deposits refundable after such number of years, with or without interest as may be specified therein, but without the payment of capitation fee; or

(ii) at the discretion;

विनिर्दिष्ट कर सकेगीः

*"परंतुक ऐसे स्थानों की संख्या, जो सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए किंतु जो खण्ड (क) और (ख) में निर्दिष्ट स्थानों की कुल संख्या के पचास प्रतिशत से कम नहीं होगी, कर्नाटक के छात्रों में से भरी जाएगी।

स्पटीकरण — इस धारा के प्रयोजन के लिए कर्नाटक के छात्रों से ऐसे व्यक्ति अभिप्रेत हैं जिन्होंने सरकार द्वारा चलाई जाने वाली या मान्य, कर्नाटक राज्य की ऐसी शिक्षा संस्थाओं में इतने वर्षों तक अध्ययन किया है, जिन्हें सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट करे;

(3) ऐसी शिक्षा संस्था, जिससे खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) की मद (i) के अनुसार स्थान भरने की अपेक्षा की जाती है, ऐसे स्थानों के लिए अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए एक समिति बनाएगी। सरकार और विश्वविद्यालय का, जिससे शिक्षा संस्था सम्बद्ध है, एक-एक नामनिर्देशिती ऐसी समिति के सदस्य के रूप से सम्मिलित किया जाएगा।"

संक्षेप में, इन दोनों उपधाराओं में यह कहा गया है कि : (i) सरकार को ऐसे स्थानों की संख्या विनिर्दिष्ट करने का अधिकार प्राप्त है, जो किसी प्राइवेट शिक्षा संस्था या ऐसी संस्थाओं के वर्ग या वर्गों में "सरकारी स्थानों" के रूप में आरक्षित (अलग) रखे जा सकेंगे; (ii) सरकार यह भी विनिर्दिष्ट कर सकती है कि प्रबंधतंत्र द्वारा भरे जाने वाले स्थानों (प्रबंधतंत्र कोटा) में से, ऐसे प्रतिदेय निक्षेप के संदाय पर जो विहित किया जाए, योग्यता के आधार पर कर्नाटक के छात्रों में से एक विशेष संख्या में स्थान भरे जा सकेंगे; सरकार उन स्थानों की संख्या भी विनिर्दिष्ट कर सकती है, जो प्रबंधतंत्र के विवेकानुसार भरे जा सकेंगे। यह स्पष्ट है कि यदि योग्यता/प्रतिदेय निक्षेप के आधार पर भरे जाने वाले स्थान विनिर्दिष्ट नहीं किए जाते हैं, तो सरकारी स्थानों से भिन्न सभी स्थान प्रबंधतंत्र के विवेकानुसार भरे जा सकते हैं; (iii) "कर्नाटक के छात्रों" (जिस पद को स्पष्टीकरण द्वारा परिभाषित किया गया है) की संख्या कुल मिलाकर पचास प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए; (iv) यदि योग्यता एवं प्रतिदेय निक्षेप के आधार पर भरे जाने वाले स्थानों की संख्या विनिर्दिष्ट कर दी जाती है, तो उपधारा (3) द्वारा यथा अनुध्यात, चयन करने के लिए चयन-समिति बनाई जाएगी। "सरकारी स्थान" पद को धारा 2 के खण्ड (ङ) को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

*" 'सरकारी स्थान' से राज्य की ऐसी शिक्षा संस्थाओं में या ऐसी संस्थाओं के वर्ग या वर्गों में स्थानों की ऐसी संख्या अभिप्रेत है, जिसे सरकार समय-समय पर, ऐसी रीति में भरे जाने के लिए विनिर्दिष्ट करे, जैसे वह अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों और ऐसे अन्य प्रवर्गों के लिए, जो सरकार द्वारा, समय-समय पर विनिर्दिष्ट किए जाएं, कैपिटेशन फीस के संदाय या नकद निक्षेप की अध्यपेक्षा के बिना योग्यता और आरक्षण के आधार पर साधारण या विशेष आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे।"

107. अधिनियम की धारा 5 द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में, कर्नाटक सरकार ने तारीख 5 जनवरी, 1989 को एक अधिसूचना जारी की। उसमें यह उपबंध किया गया कि शैक्षणिक वर्ष 1989-90 से प्राइवेट मेडिकल कालेजों में संदेय फीस, "सरकारी स्थानों" के लिए प्रवेश दिए गए छात्रों की दशा में दो हजार रुपए प्रतिवर्ष (जैसी कि सरकारी मेडिकल कालेजों में है), अन्य कर्नाटक छात्रों के मामले में पच्चीस हजार रुपए और गैर-कर्नाटक छात्रों की दशा में साठ हजार रुपए होगी।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार हैः—

"Provided that such number of seats as may be specified by the Government but not less than fifty percent of the total number of seats referred to in the clauses (a) and (b) shall befilled from among Karnataka students.

Explanation:—For the purpose of this section Karnataka students means persons who have studied in such educational institutions in the State of Karnataka run or recognised by the Government and such number of years as the Government may specify;

(3) an educational institution required to fill seats in accordance with item (i) of sub-clause (b) of clause (2) shall form a committee to select candidates for such seats. A nominee each of the Government and the University to which such educational institution is affiliated shall be included as members of such committee."

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार हैः—

"'Government seats' means such number of seats in such educational institution or class or classes of such institutions in the state as the Government may, from time to time, specify for being filled up by it in such manner as may be specified by it by general or special order on the basis of merits and reservation for Scheduled Castes, Scheduled Tribes, Backward Classes and such other categories as may be specified, by the Government from time to time, without the requirement of payment of capitation fee or cash deposit."

"5. एक गैर-कर्नाटक छात्रा कुमारी मोहिनी जैन (वह उत्तर प्रदेश के मेरठ नगर की थी) ने कर्नाटक के एक प्राइवेट मेडिकल कालेज में एम०बी०बी०एस० पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु आवेदन किया। उसे कालेज द्वारा यह सूचित किया गया कि यदि वह प्रथम वर्ष की ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) के रूप में साठ हजार रुपए का संदाय करती है और एम०बी०बी०एस० पाठ्यक्रम के शेष वर्षों के लिए संदेय फीस की बैंक गारण्टी देती है, तो उसे प्रवेश दे दिया जाएगा। उसके माता-पिता उक्त राशि का संदाय करने की स्थिति में नहीं थे और इसलिए उसे प्रवेश नहीं दिया जा सका। उस का आगे यह पक्षकथन था (जिसका कालेज के प्रबंधतंत्र द्वारा प्रत्याख्यान किया गया) कि उससे प्रवेश की शर्त के रूप में चार लाख पचास हजार रुपए की कैपिटेशन फीस (प्रति व्यक्ति फीस) का संदाय करने के लिए कहा गया था। उसने कर्नाटक सरकार की पूर्वोक्त अधिसूचना को चुनौती देते हुए और उसी फीस के संदाय पर प्रवेश दिए जाने हेतु निदेश जारी किए जाने का अनुरोध करते हुए, अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय में समावेदन किया, जो फीस "सरकारी स्थानों" पर प्रवेश दिए गए कर्नाटक छात्रों द्वारा संदेय थी।"

108. न्यायपीठ ने, जिसने रिट याचिका की सुनवाई की और उसका निपटारा किया, उसके विचारार्थ उद्भूत होने वाले चार प्रश्न विरचित किए, अर्थात—(i) क्या संविधान के अधीन भारत के लोगों को शिक्षा का अधिकार गारण्टीकृत किया गया है। यदि हां, तो क्या कैपिटेशन फीस की संकल्पना से उसका उल्लंघन होता है। (ii) क्या शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के प्रति फलस्वरूप कैपिटेशन फीस का प्रभारित किया जाना मनमाना, अनुचित और अन्यायसंगत है और इस प्रकार उससे संविधान के अनुच्छेद 14 में अंतर्विष्ट समता खण्ड का उल्लंघन होता है। (iii) क्या आक्षेपित अधिसूचना द्वारा प्राइवेट मेडिकल कालेजों को अधिनियम के अधीन फीस विनियमित करने की आड़ में कैपिटेशन फीस प्रभारित करने के लिए अनुज्ञात किया गया है और (iv) क्या उक्त अधिसूचना से अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन होता है, जिसके द्वारा विनिर्दिष्ट शब्दों में, कर्नाटक राज्य में किसी शिक्षा संस्था द्वारा कैपिटेशन फीस का प्रभारित किया जाना प्रतिषिद्ध किया गया है।

109. न्यायपीठ ने संविधान के अनुच्छेद 21, 38, 39(क) और (च) तथा 45 पर विचार करने के पश्चात्, प्रथम प्रश्न के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया:—

(क) संविधान-निर्माताओं ने राज्य के लिए अपने नागरिकों को शिक्षा की व्यवस्था करना बाध्यकारी बनाया है;

(ख) संविधान की उद्देशिका में उपवर्णित उद्देश्य तब तक पूरे नहीं किए जा सकते हैं, जब तक इस देश के नागरिकों को शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जाती।

(ग) उद्देशिका में व्यक्ति की गरिमा भी आश्वस्त की गई है। शिक्षा के बिना, व्यक्ति की गरिमा आश्वस्त नहीं की जा सकती है;

(घ) संविधान के भाग 3 और 4 एक दूसरे के पूरक हैं। जब तक अनुच्छेद 41 में वर्णित 'शिक्षा के अधिकार' को वास्तविकता का रूप नहीं दिया जाता है, तब तक भाग 3 में वर्णित मूल अधिकार निरक्षर (अशिक्षित) बहुमत की पहुंच से परे रहेंगे;

(ङ) अनुच्छेद 21 का इस न्यायालय द्वारा इस प्रकार निर्वचन किया गया है कि उसके अंतर्गत मानव-गरिमा के साथ रहने का अधिकार और उससे संलग्न सभी चीजें आती हैं। 'शिक्षा का अधिकार' सीधा जीवन के अधिकार से उद्भूत होता है। दूसरे शब्दों में, 'शिक्षा का अधिकार' संविधान के भाग 3 में सन्निविष्ट मूल अधिकारों का सहवर्ती (तत्व) है। राज्य नागरिकों के फायदे के लिए सभी स्तरों पर शिक्षा संस्थाओं की व्यवस्था करने के लिए सांविधानिक आदेश के अधीन है। शिक्षा का फायदा कुछ सम्पन्न वर्गों तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता है;

(च) कैपिटेशन फीस प्रवेश हेतु प्रतिफल ही है, कोई अन्य चीज नहीं है। 'शिक्षण-दुकानों' की संकल्पना हमारी सांविधानिक स्कीम के लिए एक बाह्य संकल्पना है। भारत में शिक्षा कभी भी विक्रय की वस्तु नहीं रही है।

(छ) हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि प्रत्येक नागरिक को संविधान के अधीन शिक्षा का अधिकार प्राप्त है। राज्य नागरिकों को उक्त अधिकार का उपभोग करने हेतु समर्थ बनाने के लिए शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने की बाध्यता के अधीन है। राज्य अपनी इस बाध्यता का निर्वहन राज्य के स्वामित्वाधीन या राज्य द्वारा मान्य शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से कर सकता है। जब राज्य सरकार प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को मान्यता प्रदान करती है, तब वह संविधान के अधीन अपनी बाध्यता को पूरा करने के लिए एक अभिकरण सर्जित करती है। छात्रों को शिक्षा संस्थाओं में, चाहे वे राज्य के स्वामित्वाधीन हों या राज्य द्वारा मान्य हों, संविधान के अधीन उनके शिक्षा के अधिकार के मान्यतास्वरूप प्रवेश दिया जाता है। शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के प्रतिफलस्वरूप कैपिटेशन फीस प्रभारित करना संविधान के अधीन नागरिक के शिक्षा के अधिकार का स्पष्ट वंचन है।

110. दूसरे प्रश्न पर न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य सरकार की, राज्य द्वारा मान्य शिक्षा संस्थाओं द्वारा कैपिटेशन फीस प्रभारित करने की अनुज्ञा देने की, कार्यवाही पूर्णतः मनमानी है और इस प्रकार उससे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है.................................। कैपिटेशन फीस से एक स्पष्ट वर्ग-भेद (पक्षपात) सामने आता है। कैपिटेशन फीस प्रभारित करके—चाहे वह किसी रूप में हो—अयोग्य छात्रों को प्रवेश देने से संविधान की स्कीम और हमारी शिक्षा-पद्धति के मूल पर ही प्रहार होता है।

डी० पी० जोशी[1] वाले मामले से प्राइवेट संस्थाओं को कोई संरक्षण नहीं मिलता है।

111. तृतीय प्रश्न पर न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की स्कीम को देखते हुए, प्रवेश हेतु साठ हजार रुपए प्रभारित करना कैपिटेशन फीस ही है, कोई अन्य चीज नहीं। प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालय को, योग्यता का विचार किए बिना, कर्नाटक से बाहर के छात्रों से प्रवेश के विषय में खुली छूट दी गई है। उसने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यदि राज्य सरकार सरकारी महाविद्यालय में ट्यूशन फीस के रूप में और प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालय में सरकारी स्थानों के लिए प्रति वर्ष दो हजार रुपए नियत करती है, तो यह सुनिश्चित करना राज्य का उत्तरदायित्व है कि ऐसे किसी प्राइवेट महाविद्यालय को, जो सरकार की अनुज्ञा से स्थापित किया गया है और सरकारी मान्यता से चलाया जा रहा है, ऐसे किसी छात्र से दो हजार रुपए से अधिक प्रभारित करने से प्रतिषिद्ध किया जाता है, जो छात्र भारत के किसी भाग का निवासी हो सकता है। जब राज्य सरकार किसी प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालय के स्थापित किए जाने को अनुज्ञा दे देती है और उसके पाठ्यक्रम तथा उपाधियों को मान्यता प्रदान करती है, तब महाविद्यालय ऐसे कृत्य का निष्पादन कर रहा होता है, जो संविधान के अधीन राज्य सरकार को समनुदेशित किया गया है। अतः हमारा यह मत है कि अधिसूचना के पैरा 1(घ) में कर्नाटक से बाहर के भारतीय छात्रों से प्रभारित किए जाने के लिए अनुज्ञात प्रतिवर्ष साठ हजार रुपए की राशि ट्यूशन फीस नहीं है बल्कि वह वस्तुतः कैपिटेशन फीस है और इस प्रकार उसे कायम रखे जाने योग्य नहीं माना जा सकता है तथा वह विखण्डित किए जाने योग्य है।

112. तदनुसार आक्षेपित अधिसूचना अधिनियम की परिधि से बाह्य और अविधिमान्य मानी गई। (यह घोषित किया गया कि निर्णय विदेशी छात्रों और प्रवासी भारतीय छात्रों को लागू नहीं होगा। तदनुसार रिट याचिका मंजूर की गई किन्तु मोहिनी जैन को प्रवेश देने से इनकार कर दिया गया क्योंकि महाविद्यालय में उसका प्रवेश योग्यता के आधार पर नहीं किया गया था और दूसरे, पाठ्यक्रम मार्च-अप्रैल, 1991 में ही आरम्भ हो गया था) (यह विनिश्चय तारीख 23 जुलाई, 1992 को किया गया)। यह निदेश किया गया कि उक्त विनिश्चय का केवल भविष्यलक्षी प्रभाव होगा और उससे उक्त अधिसूचना के अनुसार पहले से ही किए गए प्रवेश प्रभावित नहीं होंगे।

उक्त प्रतिपादनाओं से ही रिट याचिकाओं का यह समूह उद्भूत हुआ है।

113. मोहनी जैन वाले मामले का आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ ने **क्रान्ति संग्राम परिषद** बनाम **एन० जे० रेड्डी**[2] वाले मामले में अनुसरण किया। उक्त रिट याचिकाओं में प्रत्यर्थियों ने, जिनमें आंध्र प्रदेश राज्य भी सम्मिलित है, उक्त निर्णय के विरुद्ध अपील करने की अनुमति की ईप्सा करते हुए, अनेक विशेष अनुमति याचिकाएं फाइल की हैं। उक्त विशेष अनुमति याचिकाओं में, ऐसे कुछ विवाद्यक उद्भूत होते हैं, जो उन मामलों तक ही सीमित हैं और जिन पर हम यहां विचार नहीं कर रहे हैं। यह विनिश्चय मुख्यतः ऊपर निर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में किए गए विनिश्चय की शुद्धता और निम्नलिखित 3 प्रश्नों के संबंध में है, जो हमारे द्वारा सुनवाई के प्रक्रम पर विरचित किए गए। उक्त तीन प्रश्न इस प्रकार हैं:—

> "(1) क्या भारत के संविधान द्वारा नागरिकों को शिक्षा का मूल अधिकार गारण्टीकृत किया गया है?
>
> (2) क्या भारत के नागरिक को अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन या संविधान के किसी अन्य उपबंध के अधीन कोई शिक्षा संस्था स्थापित करने और चलाने का मूल अधिकार प्राप्त है?
>
> (3) क्या शिक्षा संस्था स्थापित करने के लिए अनुज्ञा और किसी विश्वविद्यालय द्वारा सम्बधन (सम्बद्ध किए जाने) की मंजूरी के तथ्य से किसी शिक्षा संस्था पर छात्रों के प्रवेश के विषय ऋजुतापूर्वक कार्य करने की कोई बाध्यता अधिरोपित होती है?"

उक्त प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व, हम तीन अन्य राज्यों अर्थात् आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में मौजूद, विधिक और सुसंगत ताथ्यिक स्थिति की अवेक्षा करना उचित समझते हैं। हमारे समक्ष सभी मामले केवल इन चार राज्यों से ही उद्भूत हुए हैं। तथापि इन मामलों में देश के सभी राज्यों को सूचना दिए जाने का निदेश किया गया। किन्तु उपर्युक्त चार राज्यों को छोड़कर, कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है।

आंध्र प्रदेश

114. आंध्र प्रदेश शिक्षा अधिनियम, 1982 राज्य विधान मण्डल द्वारा शिक्षा-पद्धति में सुधार करने, उसे संगठित करने और उसका विकास तथा उससे सम्बद्ध या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए, आंध्र प्रदेश राज्य में शिक्षा-पद्धति से संबंधित विधियों को समेकित और संशोधित करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया। धारा 1 की उपधारा (3) के आधार पर, वह राज्य में सभी शिक्षा संस्थाओं और ट्यूटोरियल (शिक्षण) संस्थाओं को लागू होता है, सिवाय उन संस्थाओं के, जिन्हें विश्वविद्यालय अधिनियम या आंध्र प्रदेश इन्टरमीडिएट एजूकेशन ऐक्ट (आंध्र प्रदेश अंतर्वर्ती शिक्षा अधिनियम), 1971 लागू होता है। धारा 2 द्वारा अधिनियम में वर्णित कुछ पदों को परिभाषित किया गया है। खण्ड (11) द्वारा "महाविद्यालय" पद को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उसके अंतर्गत राज्य में किसी विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित या संधारित या प्रशासित या सम्बद्ध या सहबद्ध या मान्य चिकित्सा-महाविद्यालय भी आता है। खण्ड (18) द्वारा "शिक्षा संस्था" पद को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उससे चिकित्सा-महाविद्यालयों सहित, मान्यताप्राप्त विद्यालय और महाविद्यालय अभिप्रेत हैं। अध्याय 6 (धारा 18 से 33) शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, उनके प्रशासन और नियंत्रण के संबंध में है। धारा 18 में यह कहा गया है कि सरकार, अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के

---

[1] [1955] 1 एस० सी० आर० 1215=ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 334.

[2] (1992) 3 ए० एल० टी० 99.

लिए, स्वतः शिक्षा संस्थाएं स्थापित करके और उन्हें संधारित करके अथवा किसी स्थानीय प्राधिकरण या व्यक्तियों के प्राइवेट निकाय को शिक्षा संस्थाओं को स्थापित करने और संधारित करने की अनुज्ञा देकर, शिक्षा प्रदान करने के लिए पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था कर सकेगी। धारा 19 में शिक्षा संस्थाओं को (क) राज्य संस्थाओं, (ख) स्थानीय प्राधिकरण संस्थाओं, तथा (ग) प्राइवेट संथाओं के रूप में वर्गीकृत किया गया है। धारा 20 शिक्षा संस्थाओं की स्थापना के लिए अनुज्ञा दिए जाने के संबंध में है। उसमें यह कहा गया है कि सक्षम प्राधिकारी [धारा 2 के खण्ड (12) में यथापरिभाषित], समय-समय पर, अपनी अधिकारिता के अधीन बस्ती की शैक्षिक आवश्यकताओं को जानने के लिए एक सर्वेक्षण करेगा और शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने के इच्छुक शैक्षिक अभिकरणों से आवेदन आमंत्रित करते हुए, स्थानीय समाचार-पत्रों में उसे विहित रीति में अधिसूचित करेगा। ऐसी अधिसूचना के अनुसरण में, विद्यमान संस्थाओं द्वारा या नई संस्थाओं द्वारा तथा स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा भी नई संस्थाएं स्थापित किए जाने के लिए या विद्यमान संस्थाओं के विस्तार के लिए आवेदन फाइल किए जा सकेंगे। उपधारा (3) में ऐसी अध्यपेक्षाएं विहित की गई हैं, जिनकी आवेदक द्वारा पूर्ति की जानी है, तथा ऐसे विषय विहित किए गए हैं, जिनकी बावत सक्षम प्राधिकारी का, अनुज्ञा देने से पूर्व समाधान होना है तथा उन उपायों को भी विहित किया गया है, जो उस व्यक्ति द्वारा (जिसे अनुज्ञा दी गई हो) विनिर्दिष्ट अवधि के अंदर किए जाने हैं। उक्त उपधारा के अनुसार आवेदन के साथ निम्नलिखित को संलग्न किया जाएगाः—

> (1) उपबन्धित (व्यवस्था) किए जाने के लिए प्रस्थापित भवन, खेल के मैदान और उद्यान हेतु स्थल से संबंधित हक-विलेख; (2) संबंधित स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा अनुमोदित रेखांक, जो उसके लिए विहित नियमों के अनुरूप होंगे; और प्रस्थापित भवनों का सन्निर्माण करने के लिए आवश्यक वित्तपोषण की उपलभ्यता को परिसाक्ष्यित करने वाले दस्तावेज। अनुज्ञा देने से पूर्व संबंधित प्राधिकारी का यह समाधान अवश्य होना चाहिए कि संबंधित बस्ती में लोगों को शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था करना आवश्यक है; यह कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा यथाविहित, संस्था के सतत और दक्षतापूर्ण रख-रखाव के लिए पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था है और इस बात का भी साक्ष्य मौजूद है कि संस्था का स्वच्छ और आरोग्यकर परिवेश में स्थापित किया जाना प्रस्थापित है। स्थानीय प्राधिकरण/प्राधिकारी को या व्यक्तियों के निकाय को, जिसे अनुज्ञा दी गई है, इस संबंध में सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार अर्हताप्राप्त शिक्षण (अध्यापन) स्टाफ (कर्मचारीवृंद) को नियुक्त करना होता है और अधिनियम तथा उसके अधीन बनाए गए नियमों और आदेशों द्वारा यथाधिकथित अन्य अध्यपेक्षाओं को, प्राधिकारियों द्वारा विनिर्दिष्ट (की गई) अवधि के भीतर पूरा करना होता है। ऐसे अनुपालन के व्यतिक्रम में प्राधिकारी के लिए अनुज्ञा रद्द करना सक्षमतापूर्ण होगा। उपधारा (4) द्वारा व्यक्ति द्वारा अधिनियम के उपबंधों से भिन्न रीति में किसी शिक्षा संस्था की स्थापना किया जाना दण्डनीय बनाया गया है। अनुज्ञा के रद्दकरण के पश्चात कोई संस्था चलाने वाला व्यक्ति भी दण्डनीय होगा।

115. धारा 20-क में यह घोषित किया गया है कि आंध्र प्रदेश शिक्षा (संशोधन) अधिनियम, 1987 के प्रारम्भ पर या से कोई व्यक्ति प्राइवेट संस्था की स्थापना नहीं करेगा। तथापि, व्यक्तियों द्वारा पहले से ही स्थापित संस्थाएं उक्त उपबंध द्वारा प्रभावित नहीं होंगी। धारा 21 संस्था को मान्यता दिए जाने और उसके वापस लिए जाने के संबंध में है। उसमें यह उपबंध किया गया है कि सक्षम प्राधिकारी, लिखित आदेश द्वारा, ऐसी शर्तों के अधीन, जैसी जगह, उपस्कर और शिक्षण (अध्यापन) स्टाफ की नियुक्ति आदि के संबंध में विहित की जाएं, धारा 20 के अधीन स्थापित किए जाने के लिए अनुज्ञात शिक्षा संस्था को मान्यता दे सकेगा। उसमें यह उपबंध भी किया गया है कि यदि कोई स्थानीय प्राधिकारी/प्राधिकरण या अन्य प्राइवेट शिक्षा संस्था मान्यता की सभी या किसी शर्त को पूरा करने में असफल रहती है या उपधारा (2) में वर्णित कोई अन्य अनियमितता करती है, तो उसकी मान्यता वापस ली जा सकेगी। अधिनियम के अन्य उपबंधों की अवेक्षा करना आवश्यक नहीं है।

116. वर्ष 1983 में, आंध्र प्रदेश विधानमण्डल ने आंध्र प्रदेश शिक्षा संस्थाएं (प्रवेश का विनियमन और कैपिटेशन फीस का प्रतिषेध) अधिनियम, 1983 अधिनियमित किया। उक्त अधिनियम आंध्र प्रदेश राज्य में शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश को विनियमित करने और कैपिटेशन फीस के संग्रहण को प्रतिषिद्ध करने का उपबंध करने के लिए बनाया गया है। यहां उक्त अधिनियम की उद्देशिका की अवेक्षा करना उचित होगा। उद्देशिका इस प्रकार हैः—

> *"यतः राज्य में शिक्षा संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश देने के समय कैपिटेशन फीस संगृहीत करने की अवांछनीय पद्धति बढ़ती जा रही है;
>
> और यतः उक्त पद्धति से बड़े पैमाने पर शिक्षा का वाणिज्यीककरण हो रहा है;
>
> और यतः योग्य और निर्धन छात्रों में निराशा की भावना समाप्त करने और छात्रों में शिक्षा की उत्कृष्टता (श्रेष्ठता) को बनाए रखने के लिए इस बुरी पद्धति को प्रभावी रूप से नियंत्रित करना आवश्यक समझा जाता है।
>
> अतः आंध्र प्रदेश राज्य के विधानमण्डल द्वारा भारत गणराज्य के 34वें वर्ष में यह अधिनियमित हो।"

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार हैः—

> "Whereas the undesirable practice of collecting capitation fee at the time of admitting students into educational institutions is on the increase in the State;
>
> And whereas, the said practice has been contributing to large scale commercialisation of Education;
>
> And whereas, it is considered necessary, to effectively curb this evil practice in order to avoid frustration among the meritorious and indigent students and to maintain excellence in the students of education;
>
> Be it enacted by the Legislature of the State of Andhra Pradesh in the Thirty-fourth year of the Republic of India as follows:"

117. उक्त अधिनियम तारीख 30 जनवरी, 1983 को ओर से प्रवृत्त हुआ। धारा 2 में निर्वचन खण्ड (अंतर्विष्ट) है। खण्ड (ख) में "कैपिटेशन फीस" पद को इस प्रकार परिभाषित किया गया कि उससे धारा 7 में विहित फीस के आधिक्य में संगृहीत कोई रकम अभिप्रेत है। धारा 3 में यह उपबंध किया गया है कि राज्य में शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश, अर्हक परीक्षा में, अभिप्राप्त अंकों के आधार पर या ऐसे प्राधिकारी द्वारा और ऐसी रीति में, जो विहित किए जाएं, आयोजित प्रवेश परीक्षा में दी गई रैंकिंग (क्रम) के आधार पर किया जाएगा। जहां तक चिकित्सा और इंजीनियरी महाविद्यालयों का संबंध है, यह उपबंध किया गया है कि उनमें प्रवेश अनन्यतः प्रवेश परीक्षा में दी गई रैंकिंग (क्रम) के अनुसार किया जाएगा। राज्य ने अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के लिए स्थान विनिर्दिष्ट करने की शक्ति भी अपने लिए आरक्षित रखी है। धारा 4 में यह उपबंध किया गया है कि अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं को भी उस अल्पसंख्यक वर्ग के छात्रों या अन्य छात्रों को प्रवेश देते समय, योग्यता के आधार पर छात्रों का प्रवेश करना होगा। धारा 5 द्वारा कैपिटेशन फीस को प्रतिषिद्ध किया गया है। उसमें यह कहा गया है कि किसी शिक्षा संस्था द्वारा या ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा, जो संस्था के प्रबंध का भारसाधक है या उसके लिए उत्तरदायी है, किसी प्रकार की कैपिटेशन फीस का संग्रहण एतद्द्वारा प्रतिषिद्ध किया जाता है। धारा 6 में यह कहा गया है कि शिक्षा संस्था को दिए जाने वाले दान केवल विहित रीति में ही किए जाएंगे, अन्यथा नहीं, और इस प्रकार प्राप्त धन का विहित रीति में निक्षेप और उपयोजन किया जाएगा।

धारा 7 द्वारा उस फीस को विनियमित किया गया है जो किसी शिक्षा संस्था द्वारा प्रभारित की जा सकती है। यहां उक्त धारा को समग्र रूप से उद्धृत करना उचित होगा:—

> *"7(1) सरकार अधिसूचना द्वारा, ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क), या कोई अन्य फीस विनियमित करने के लिए सक्षम होगी, जो किसी शिक्षा संस्था द्वारा छात्रों के प्रत्येक वर्ग की बाबत उद्गृहीत और संगृहीत की जा सकेगी।
>
> (2) कोई भी शिक्षा संस्था उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित फीस के आधिक्य में कोई फीस संगृहीत नहीं करेगी।
>
> (3) प्रत्येक शिक्षा संस्था, उसके द्वारा संगृहीत फीस के लिए आधिकारिक रसीद जारी करेगी (देगी)।"

धारा 9 में अधिनियम के उपबंधों के उल्लंघन की दशा में शास्तियों का उपबंध किया गया है। विहित दण्ड, जुर्माने के अतिरिक्त, तीन वर्ष से अन्यून और सात वर्ष से अनधिक कारावास है। धारा 15 द्वारा सरकार को अधिनियमिति के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है।

118. 1983 वाले अधिनियम में धारा 3-क अंतःस्थापित करके वर्ष 1992 में संशोधन किया गया; जो धारा 3 इस प्रकार है:—

> *"धारा 3 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, किंतु ऐसे नियमों के अधीन, जो इस संबंध में बनाए जाएं, और आंध्र प्रदेश शिक्षा संस्थाएं (प्रवेश का विनियमन) आदेश, 1974 के अधीन रहते हुए, कोई गैर-सहायता प्राप्त प्राइवेट इंजीनियरी-महाविद्यालय, चिकित्सा-महाविद्यालय, दंत महाविद्यालय और गैर-सहायताप्राप्त शिक्षा संस्थाओं का ऐसा अन्य वर्ग, जिसे इस संबंध में सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए, ऐसे छात्रों में से, जिन्होंने यथास्थिति, सामान्य प्रवेश परीक्षा या अर्हक परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर ली है और जिनके प्रति धारा 3 की उपधारा (1) में निर्देश किया गया है, ऐसे परीक्षण या परीक्षा में उन्हें दिए गए क्रम (रैंकिंग) का विचार किए बिना, स्थानों की कुल संख्या के आधे भाग की सीमा तक ऐसे महाविद्यालयों या शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश देने के लिए सक्षम होगा और धारा 5 में अंतर्विष्ट कोई बात ऐसे प्रवेश को लागू नहीं होगी।"

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है:—

"7.(1) It shall be competent for the Government by notification, to regulate the tuition fee or any other fee that may be levied and collected by any educational institution in respect of each class of students.

(2) No educational institution shall collect any fees in excess of the fee notified under sub-section (1).

(3) Every educational institution shall issue an official receipt for the fee collected by it."

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है:—

"Notwithstanding anything contained in Section 3, but subject to such rules as may be made in this behalf and the Andhra Pradesh Educational Institutions (Regulation of Admission) Order, 1974, it shall be lawful for the management of any un-aided private Engineering College, Medical College, Dental College and such other class of un-aided educational institutions as may be notified by the Government in this behalf to admit students into such Colleges or educational institutions to the extent of one half of the total number of seats from among those who have qualified in the common entrance test or in the qualifying examination, as the case may be, referred to in sub-section (1) of Section-3 irrespective of the ranking assigned to them in such test or examination and nothing contained in Section 5 shall apply to such admission."

यहां इस बात की अवेक्षा करना आवश्यक है कि इस धारा में ठीक-ठीक क्या उपबंध किया गया है। यह धारा "धारा 3 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, किंतु ऐसे नियमों के अधीन, जो इस संबंध में बनाए जाएं, और संविधान के अनुच्छेद 371-घ के अधीन जारी किए गए आन्ध्र प्रदेश शिक्षा संस्थाएं (प्रवेश का विनियमन) आदेश, 1974 (राष्ट्रपतीय आदेश) के अधीन रहते हुए" अध्यारोही खण्ड से आरंभ होता है; उसके पश्चात् उसमें यह कहा गया है कि गैर-सहायता प्राप्त प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालय, चिकित्सा महाविद्यालय और गैर-सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं के ऐसे अन्य वर्ग के (प्रबंधतन्त्र) के लिए, जो इस संबंध में सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए, यथास्थिति, प्रवेश परीक्षा या अर्हक परीक्षा में अर्हता प्राप्त छात्रों में से कुल स्थानों के पचास प्रतिशत की सीमा तक ऐसे महाविद्यालयों या शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश देना सक्षमतापूर्ण होगा; उसके आगे उक्त धारा में — कुछ विचित्रतापूर्वक — यह भी कहा गया है कि शिक्षा संस्था, प्रवेश परीक्षा या अर्हक परीक्षा में उन्हें दिए गए क्रम पर विचार किए बिना, उन्हें प्रवेश देने के लिए हकदार होगी; और यह भी कि धारा 5 में अंतर्विष्ट कोई बात ऐसे प्रवेश को लागू नहीं होगी। संक्षेप में इसका अर्थ यह हुआ कि प्राइवेट चिकित्सा/इंजीनियरी महाविद्यालय को पचास प्रतिशत की सीमा तक अपनी पसंद के छात्रों को प्रवेश देने की छूट प्राप्त है — जब तक उन्हें सामान्य प्रवेश परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर रखी है — और क्रम और/या योग्यता पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा। उपर्युक्त प्रयोजन के लिए धारा 5 से अभिमुक्ति इस बात का स्पष्ट संकेत है कि संस्था के लिए ऐसी कैपिटेशन फीस संगृहीत करने का अधिकार प्राप्त है, जो वह ऐसे छात्रों से संगृहीत कर सकती है। निस्संदेह, "ट्यूशन फीस" (शिक्षण-शुल्क) वहीं होगी, जो धारा 7 के अधीन सरकार द्वारा विहित की गई है।

धारा 3-क तारीख 15 अप्रैल, 1992 को प्रवृत्त हुई। उक्त धारा के अधीन सरकार द्वारा अभी तक कोई नियम नहीं बनाए गए हैं।

119. तारीख 25 मई, 1992 को, सरकार ने चिकित्सा, दंत और इंजीनियरी महाविद्यालय स्थापित करने के लिए अनुज्ञा हेतु आवेदन आमंत्रित करते हुए, एक अधिसूचना जारी की। आवेदनों की प्राप्ति के लिए विहित अंतिम तारीख 8 जून, 1992 थी। चिकित्सा महाविद्यालय के लिए आवेदकों को उक्त तारीख के अंदर नकद एक करोड़ रुपए की राशि जमा करनी थी, एक करोड़ रुपए की बैंक गारण्टी देनी थी और चार करोड़ रुपए की सीमा तक वित्तीय सक्षमता का साक्ष्य प्रस्तुत करना था। आवेदकों द्वारा प्रस्थापित (पेशकश की गई) भूमि और अन्य प्रसुविधाओं का निरीक्षण करने के लिए एक समिति नियुक्त की गई। समिति ने तारीख 28 जून, 1992 को अपने दिशा-निर्देश विरचित किए और 12 चिकित्सा महाविद्यालयों और 8 दंत महाविद्यालयों की सिफारिश करते हुए, तारीख 21 जुलाई, 1992 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। तत्कालीन मुख्य मंत्री ने तारीख 27 जुलाई, 1992 को सिफारिशों का अनुमोदन किया और अनुज्ञा देते हुए, उसी दिन सरकारी आदेश जारी किया गया। उक्त मंजूरी (अनुदान) और धारा 3-क को चुनौती देते हुए, उच्च न्यायालय में अनेक रिट याचिकाएं तुरन्त फाइल की गईं।

120. राज्य में अनेक प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालय हैं। चालू शैक्षणिक वर्ष (1992-93) तक, इन महाविद्यालयों में सभी स्थान सामान्य प्रवेश परीक्षा के आयोजक द्वारा भरे जाते थे। प्रबंध तंत्र को छात्रों के मामले में कोई विवेकाधिकार या विकल्प प्राप्त नहीं था। तथापि, उन्हें एक विशेष फीस प्रभारित करने के लिए अनुज्ञात किया गया था, जो सरकारी इंजीनियरी महाविद्यालयों में प्रभारित फीस की तुलना में अधिक थी। इससे अधिक कुछ नहीं। किंतु जब तारीख 15 अप्रैल, 1992 को 1983 वाले अधिनियम में धारा 3-क जोड़ी गई, तब इन प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालयों ने यह आधार लिया कि वे, योग्यता का विचार किए बिना, अपनी पसंद के अनुसार कुल स्थानों के पचास प्रतिशत की सीमा तक छात्रों को प्रवेश देने के लिए हकदार हैं, जब तक उन छात्रों ने प्रवेश परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर रखी हैं। यह स्पष्ट है कि इस आधार का अर्थ यह था कि वे अपनी इच्छा के अनुसार कैपिटेशन फीस संगृहीत कर सकते थे। ऐसे प्रवेशों के विरुद्ध छात्रों और शिक्षक समुदाय में हंगामा मच गया। सरकार भी उक्त अभ्यापति की उपेक्षा नहीं कर सकी और उसने तारीख 26 जुलाई, 1992 को प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालयों को तब तक प्रवेश न करने के लिए संसूचित किया, जब तक धारा 3-क के अधीन नियम नहीं बना लिए जाते। किंतु इंजीनियरी महाविद्यालयों ने यह आधार लिया कि वे पचास प्रतिशत की सीमा तक अपनी पसंद के अनुसार प्रवेश पहले ही कर चुके हैं। वस्तुतः यह सब इस तथ्य द्वारा सुकर बनाया गया कि आयोजक ने, पूर्व के समान 100 प्रतिशत के बजाय, उनकी अपनी-अपनी क्षमता के पचास प्रतिशत की सीमा तक ही इन इंजीनियरी महाविद्यालयों को छात्र आबंटित किए—और इस प्रकार यह स्पष्ट संकेत दिया गया कि महाविद्यालय शेष स्थानों को अपनी इच्छा से भरने के लिए स्वतंत्र थे। जो भी हो, इन प्रवेशों के कारण आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में रिट याचिकाओं का एक समूह फाइल किया गया। ऊपरनिर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले का अनुसरण करते हुए और कतिपय अन्य आधारों पर, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ ने रिट याचिकाएं मंजूर कीं। उसने धारा 3-क को असंवैधानिक घोषित कर दिया। उसने यह भी घोषित किया कि अपनी पसंद के अनुसार 50 प्रतिशत की सीमा तक प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालयों द्वारा किए गए प्रवेश अवैध थे। न्यायालय ने यह भी घोषित किया कि 12 चिकित्सा महाविद्यालयों और 8 दंत महाविद्यालयों को अनुज्ञा दिया जाना भी उसी प्रकार अविधिमान्य था। उक्त विनिश्चय के विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य, कुछ शिक्षा संस्थाओं और प्रबंधतंत्र की पसंद के अनुसार प्रवेश पाने वाले छात्रों ने अनेक विशेष अनुमति याचिकाएं फाइल की हैं।

121. 1992 की रिट याचिका सं० 8248 और समूह में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तारीख 18 सितम्बर, 1992 के पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय के विरुद्ध फाइल की गई सभी विशेष अनुमति याचिकाओं में अनुमति प्रदान की जाती है। अपीलों के अतिरिक्त, ऊपरनिर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में किए गए निर्णय के आधार की शुद्धता को प्रश्नगत करते हुए, इस राज्य से कुछ रिट याचिकाएं भी फाइल की गईं।

महाराष्ट्र राज्य

122. महाराष्ट्र विधानमण्डल ने, महाराष्ट्र राज्य में शिक्षा संस्थाओं में छात्रों के प्रवेश और उच्चतर कक्षा में उनकी प्रोन्नति हेतु कैपिटेशन फीस के संग्रहण को प्रतिषिद्ध करने और उससे संबंधित विषयों

का उपबंध करने के लिए महाराष्ट्र शिक्षा संस्थाएं (कैपिटेशन फीस का प्रतिषेध) अधिनियम, 1987 (1988 का महाराष्ट्र अधिनियम सं॰ 6) अधिनियमित किया। उक्त अधिनियम की उद्देशिका में यह घोषित किया गया है:—

*"यतः शिक्षा-संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश देने के लिए और शिक्षा के विभिनन प्रक्रमों पर, उच्चतर स्तर या कक्षा में छात्रों को प्रोन्नत करने के समय कैपिटेशन फीस संगृहीत करने की पद्धति राज्य में वृद्धि पर है;

और यतः इस अवांछनीय पद्धति से शिक्षा का बड़े पैमाने पर वाणिज्यीककरण हो रहा है, जो शैक्षिक मानकों को बनाए रखने के लिए उपयोगी नहीं है;

और यतः शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति, 1986 में यह परिकल्पित किया गया है कि तकनीकी और वृत्तिक शिक्षा के वाणिज्यीककरण को रोका जाना चाहिए और शिक्षा का वाणिज्यीककरण करने के लिए स्थापित संस्थाओं की स्थापना को निवारित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए;

और यतः इस बुरी पद्धति को प्रभावी रूप से रोकने के लिए, महाराष्ट्र राज्य में शिक्षा संस्थाओं में छात्र को प्रवेश देने हेतु और उच्चतर स्तर या कक्षा में प्रोन्नति देने हेतु कैपिटेशन फीस के संग्रहण को प्रतिषिद्ध करना और उससे संबंधित विषयों का उपबंध करना लोक हित में समीचीन है;

अतः भारत गणराज्य के 38वें वर्ष में एतद्द्वारा यह अधिनियमित किया जाता है।"

123. धारा 2 में अधिनियम में वर्णित कुछ पदों को परिभाषित किया गया है। खण्ड (क) में "कैपिटेशन फीस" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उससे ऐसी कोई रकम अभिप्रेत है चाहे, उसे कोई नाम दिया जाए, भले ही वह नकदी में हो या वस्तु रूप में, जो उपधारा (4) के अधीन विनियमित फीस की, यथास्थिति, विहित या अनुमोदित दर के आधिक्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संदत्त या संगृहीत की जाती है। धारा 3 की उपधारा (1) द्वारा छात्र के प्रवेश हेतु या उच्चतर कक्षा में उसकी प्रोन्नति हेतु कैपिटेशन फीस का संग्रहण प्रतिषिद्ध किया गया है। किंतु उपधारा (2) द्वारा किसी शिक्षा संस्था के प्रबंधतंत्र को परोपकारी व्यक्तियों पर संगठनों, न्यासों और अन्य संगमों से दान स्वीकार और संगृहीत करने के लिए अनुज्ञात किया गया है। किंतु उसमें यह कहा गया है कि उसके प्रतिफलस्वरूप कोई भी स्थान आरक्षित नहीं रखे जाएंगे। इस प्रकार प्राप्त धन का विहित रीति में निक्षेप (जमा) और संव्यवहार (लेन-देन) करना होगा। उपधारा (3) में यह उपबंध किया गया है कि यदि किसी प्राइवेट शिक्षा संस्था ने अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के किसी उपबंध का उल्लंघन किया गया है, तो उसे उसका उस व्यक्ति को प्रतिदाय करने का निदेश किया जाएगा, जिससे वह संगृहीत किया गया है। धारा 4 द्वारा सरकार को ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) विनियमित करने के लिए सशक्त किया गया है, जो ऐसी संस्था में किसी पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु किसी संस्था द्वारा प्राप्त या संगृहीत की जा सकती है। गैर-सहायता प्राप्त संस्थाओं के मामलों में, ट्यूशन फीस, भूमियों, भवनों या ऐसी किसी अन्य मद पर, जो राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित की जाए, किसी व्यय को अपवर्जित करते हुए, प्रायिक व्यय को ध्यान में रखते हुए, विहित की जाएगी। यथास्थिति, विभिन्न संस्थाओं या विभिन्न क्षेत्रों या विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए ट्यूशन फीस के विभिन्न मानक विहित किए जा सकते हैं। धारा 7 में (कारावास के) दंड का उपबंध किया गया है, जो अधिनियम या नियमों के किसी उपबंध के उल्लंघन की दशा में तीन वर्ष तक का हो सकता है और जुर्माना भी किया जा सकता है।

124. यह कहा गया है कि महाराष्ट्र सरकार ने प्राइवेट गैर-सहायता /प्राप्त इंजीनियरी महाविद्यालयों के मामले में प्रति वर्ष 6,500 रुपए की एक रूप फीस विहित की थी, जिसे वर्ष 1991 में बढ़ा कर 8,500 रुपए कर दिया गया। 1992 में केवल बाह्य छात्रों (महाराष्ट्र राज्य के बाहर के छात्रों) के मामले में फीस बढ़ा कर 17,000 रुपए कर दी गई।

यह भी कहा गया है कि महाराष्ट्र सरकार ने यह निदेश करते हुए एक अधिसूचना जारी की थी कि किसी प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालय में 90 प्रतिशत स्थान सरकार के नाम निर्देशितियों वारा भरे जाएंगे और शेष 10 प्रतिशत स्थान प्रबंधतंत्र द्वारा स्वविवेकानुसार भरे जाएंगे। चिकित्सा महाविद्यालयों के मामले में चालू शैक्षणिक वर्ष के

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है:—

"Whereas the practice of collecting capitation fee for admitting students into educational institutions and at the time of promoting students to a higher standard or class at various stages of education is on the increase in the State;

And Whereas this undersirable practice has been contributing to large scale commercialisation of education which is not conductive to the maintenance of educational standards;

And Whereas the National Policy on Education, 1986 envisages that the commercialisation of technical and professional education should be curbed and that steps should be taken to prevent the establishment of institutions set up to commercialise education;

And whereas with a view to effectively curb this evil practice, it is expedient in the public interest to prohibit collection of capitation fee for admission of student to and their promotion to a higher standard or class in, the educational institutions in the State of Maharashtra and to provide for matters connected therewith;

it is hereby enacted in the Thirty-eighty Year of the Republic of India as follows."

लिए प्राइवेट गैर-सहायता प्राप्त चिकित्सा महाविद्यालय के मामले में विहित फीस महाराष्ट्र के छात्रों के लिए 30,000 रुपए और बाहर के छात्रों के मामले में 60,000 रुपए है। चिकित्सा महाविद्यालयों के मामलों में, 20 प्रतिशत स्थानों का प्रबंधतंत्र द्वारा स्वविवेकानुसार भरा जाना अनुज्ञात किया गया है। शेष 80 प्रतिशत स्थान सरकारी नाम-निर्देशितियों द्वारा भरे जाने हैं।

125. 1992 की सी०ए०सं० 3573 में अपीलार्थी, महात्मा गांधी मिशन, नान्देड़ को राज्य सरकार द्वारा औरंगाबाद में गैर-सहायता-प्राप्त चिकित्सा महाविद्यालय आरम्भ करने की अनुज्ञा दी गई। यह कहा गया है कि अपीलार्थी सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 और मुम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950 के अधीन रजिस्ट्रीकृत सार्वजनिक पूर्त न्यास है। चिकित्सा महाविद्यालय मराठवाड़ा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है और उसे महाराष्ट्र में चिकित्सा परिषद् द्वारा भी मान्यता प्रदान की गई है। कुल प्रवेश-क्षमता प्रतिवर्ष 100 स्थान है। अपीलार्थी को चिकित्सा महाविद्यालय आरम्भ करने की अनुज्ञा "कोई सहायता अनुदान नहीं" आधार पर दी गई थी। अपीलार्थी को स्वविवेकानुसार ऐसे छात्रों में से 20 प्रतिशत स्थान भरने के लिए अनुज्ञात किया गया, जिन्होंने विनिर्दिष्ट विषयों में कुल अंकों में से कम से कम 50 प्रतिशत अंक अभिप्राप्त किए हों और जिन्होंने प्रथम प्रयास में ही अर्हक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली हो। (महाराष्ट्र में सामान्य प्रवेश परीक्षा की कोई पद्धति नहीं है)। तदनुसार चालू शैक्षणिक वर्ष के लिए प्रवेश किए गए। ऊपरनिर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के तुरन्त पश्चात्, अनेक छात्रों ने मुम्बई उच्च न्यायालय (औरंगाबाद न्यायपीठ) में रिट याचिका फाइल की, जिसमें ऐसे पाठ्यक्रम के लिए सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों में छात्रों के लिए सरकार द्वारा विहित फीस के आधिक्य में उनसे संगृहीत फीस के प्रतिदाय का दावा किया गया है। खण्ड न्यायपीठ ने तारीख 27 अगस्त, 1992 को एक अंतरिम आदेश किया, जिसमें अपीलार्थी संस्था को उसके द्वारा छात्रों से संगृहीत अधिक रकम के 50 प्रतिशत की सीमा तक, अर्थात् रिट याचिका का निपटारा लम्बित रहने तक, 42 लाख रुपए की राशि के लिए बैंक गारण्टी देने का निदेश किया गया। यह निदेश भी किया गया कि रिट याचिका का निपटारा होने तक उक्त संस्था किसी भी छात्र से 3,000 रुपए से अधिक कोई रकम संगृहीत नहीं करेगी। अपीलार्थी ने 1992 की सिविल अपील सं० 3572 में उक्त अंतर्वर्ती आदेश को चुनौती दी है।

126. 1992 की रिट याचिका सं० 855 जम्मू-कश्मीर छात्र अभिभावक संगम द्वारा फाइल की गई है, जिसमें महाराष्ट्र सरकार द्वारा जारी की गई उस अधिसूचना को प्रश्नगत किया गया है, जिसके द्वारा महाराष्ट्र से बाहर के छात्रों से महाराष्ट्र के छात्रों द्वारा संदेय ट्यूशन फीस से दुगनी ट्यूशन फीस का संदाय करना बाध्यकर बनाया गया था।

127. 1992 की रिट याचिका सं० 678 महाराष्ट्र प्रौद्योगिकी संस्थान, पुणे द्वारा फाइल की गई है जिसमें ऊपरनिर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में किए गए विनिश्चय की शुद्धता को प्रश्नगत किया गया है और यह घोषणा जारी किए जाने की प्रार्थना की गई है कि याची को, कानून की विनियामक अध्यपेक्षाओं के अनुपालन के अधीन रहते हुए, स्वःवित्तपोषित इंजीनियरी महाविद्यालय स्थापित करने और चलाने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन, मूल अधिकार प्राप्त है। याची ने अनुच्छेद 19(1)(ग) का भी इस रूप में अवलंब लिया है कि उसके द्वारा उसे स्वःवित्तपोषण आधार पर इंजीनियरी कालेज चलाने हेतु कोई संगम स्थापित करने/बनाने का अधिकार प्राप्त है।

तमिलनाडु

128. ऊपरनिर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में विनिश्चय के शीघ्र पश्चात्, तमिलनाडु के राज्यपाल ने तमिलनाडु शिक्षा संस्थाएं (कैपिटेशन फीस के संग्रहण का प्रतिषेध) [तमिलनाडु एजूकेशनल इंस्टीट्यूशन्स (प्राहिबीशन ऑफ कालेक्शन आफ कैपिटेशन फीस) आर्डिनेन्स, 1992 नामक एक अध्यादेश (1992 का अध्यादेश सं० 10)] प्रख्यापित किया। अब उक्त अध्यादेश का स्थान एक अधिनियम—तमिलनाडु शिक्षा संस्थाएं (कैपिटेशन फीस के संग्रहण का प्रतिषेध) अधिनियम [तमिलनाडु एजूकेशनल इंस्टीट्यूशन्स (प्राहिबीशन ऑफ कालेक्शन ऑफ कैपिटेशन फीस) ऐक्ट, 1992 (1992 का अधिनियम सं० 57)] द्वारा ले लिया गया है। उक्त अधिनियम तमिलनाडु राज्य में शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश हेतु कैपिटेशन फीस के संग्रहण को प्रतिषिद्ध करने और उससे संबंधित विषयों का उपबंध करने के लिए आशयित है। अधिनियम की उद्देशिका में यह कहा गया है:—

> *"यतः शिक्षा संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश देने के लिए कैपिटेशन फीस संगृहीत करने की पद्धति राज्य में अत्यधिक फैली हुई है;
>
> और यतः शिक्षा का बड़े पैमाने पर वाणिज्यीकरण करने के अतिरिक्त, यह अवांछनीय पद्धति शैक्षिक मानकों के बनाए रखने में उपयोगी सिद्ध नहीं हुई है;
>
> और यतः लोक हित में कैपिटेशन फीस के संग्रहण को प्रतिषिद्ध करके, इस अवांछनीय पद्धति को प्रभावी रूप से रोकना और उससे संबंधित विषयों का उपबंध आवश्यक समझा जाता है;
>
> अतः भारत गणराज्य के 43वें वर्ष में तमिलनाडु राज्य की विधानसभा द्वारा यह अधिनियमित किया जाए।"

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है:—

> "Whereas the practice of collecting capitation fee for admitting students into educational institutions is widespread in the State;
>
> And Whereas this undersirable practice, besides contributing a large scale commercialisation of education, has not been conducive to the maintenance of educational standards;
>
> And Whereas it is considered necessary to effectively curb this undersirable practice, in public interest, by prohibiting the collection of capitation fee and to provide for matters relating thereto;
>
> Be it enacted by the Legislative Assembly of the State of Tamil Nadu in the Forty-third year of the Republic of India as follows."

129. उक्त अधिनियम को तारीख 20 अगस्त, 1992 से प्रभावी बनाया गया है, जो ऐसी तारीख है, जिसको अध्यादेश जारी किया गया था। "कैपिटेशन फीस" पद को धारा 2 के खण्ड (क) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उससे धारा 4 के अधीन विहित फीस के आधिक्य में, प्रयक्ष या परोक्ष रूप से संदत्त या संगृहीत कोई रकम अभिप्रेत है, चाहे उसे किसी नाम से पुकारा जाए। धारा 3 द्वारा किसी शिक्षा संस्था या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा कैपिटेशन फीस के संग्रहण को प्रतिषिद्ध किया गया है। धारा 4 द्वारा सरकार को शिक्षा संस्थाओं में प्रभार्य फीस को विनियमित करने के लिए सशक्त किया गया है। जब एक बार ऐसी अधिसूचना जारी कर दी जाती है, तब कोई भी संस्था विहित फीस से अधिक कोई फीस प्रभारित या संगृहीत नहीं कर सकती है। उक्त धारा इस प्रकार है:—

*"4(1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, सरकार, अधिसूचना द्वारा, ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) या किसी अन्य फीस या निक्षेप को, जो छात्रों के सभी या किसी वर्ग की बाबत ऐसी शिक्षा संस्था या ऐसी शिक्षा संस्थाओं के वर्ग अथवा वर्गों द्वारा प्राप्त या संगृहीत किया जाए, विनियमित कर सकेगी:

परन्तु इस उपधारा के अधीन अधिसूचना जारी करने से पूर्व. जिसका प्रारूप यह वर्णित करते हुए तमिलनाडु सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा कि ऐसे किसी आक्षेप या सुझाव पर, जो ऐसी अवधि के भीतर, जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाए, सरकार द्वारा प्राप्त किया जाए, उनके द्वारा विचार किया जाएगा।

(2) कोई भी शिक्षा संस्था उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित रकम के आधिक्य में कोई फीस प्राप्त या संगृहीत नहीं करेगी या कोई निक्षेप स्वीकार नहीं करेगी।

(3) प्रत्येक शिक्षा संस्था, उसके द्वारा प्राप्त या संगृहीत फीस या निक्षेप के लिए आधिकारिक रसीद जारी करेगी।"

धारा 5 द्वारा सरकार को ऐसी रीति में, जैसी विहित की जाए, शिक्षा संस्थाओं द्वारा लेखाओं के रख-रखाव को विनियमित करने के लिए सशक्त किया गया है। इस प्रकार, धारा 6 द्वारा सरकार को शिक्षा संस्थाओं से ऐसे रूप में और ऐसी रीति में ऐसी विवरणियां या कथन प्रस्तुत करने हेतु कहने के लिए सशक्त किया गया है, जिन्हें अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए विहित किया जाए। धारा 7 में अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के किसी उपबंध के उल्लंघन की दशा में शास्तियों का उपबंध किया गया है। न्यूनतम दंड, जुर्माने के अतिरिक्त, तीन वर्ष का कारावास है, जो सात वर्ष तक का हो सकता है। दंड के अतिरिक्त, शिक्षा संस्था को संगृहीत अधिक रकम/कैपिटेशन फीस का संबंधित छात्रों/व्यक्तियों को प्रतिदाय करने के लिए भी दायी बनाया गया है। धारा 12 द्वारा अधिनियम के उपबंधों को तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि पर अध्यारोही प्रभाव रखने वाला बनाया गया है। धारा 14 द्वारा सरकार को अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने हेतु नियम बनाने के लिए सशक्त किया गया है। यह बात हमारी जानकारी में नहीं लाई गई है कि अधिनियम के अधीन नियम बना लिए गए हैं। तथापि, तमिलनाडु राज्य के विद्वान काउंसेल श्री पी॰आर॰ सीतारामन ने "तमिलनाडु में स्वःवित्तपोषित प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालयों और इंजीनियरी महाविद्यालयों की बाबत वर्तमान प्रवेश फार्मूला" नामक एक कथन (विवरण) फाइल किया है। यहां उक्त कथन का पूर्णतः उपवर्णित किया जाना आवश्यक है। यह कथन इस प्रकार है:—

"तमिलनाडु सरकार ने स्वःवित्तपोषित चिकित्सा और इंजीनियरी तथा कला और विज्ञान के महाविद्यालयों तथा प्राइवेट-सहायता प्राप्त महाविद्यालयों के गैर-सहायता प्राप्त पाठ्यक्रमों की बाबत फीस के नियतन के विनियमन के संबंध में की गई प्रस्थापना पर विचार करने के लिए अभी हाल ही में एक समिति भी गठित की है। आदेश की सत्य प्रतिलिपि इससे उपाबद्ध है। तमिलनाडु में स्वःवित्तपोषित चिकित्सा महाविद्यालयों को, सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों के लिए विहित न्यूनतम अंक नियम का पालन करते हुए, महाविद्यालय में अनुमोदित प्रवेश के साठ प्रतिशत तक अपनी पसंद के छात्रों को प्रवेश देने के लिए अनुज्ञात किया गया है। शेष चालीस प्रतिशत स्थानों का प्रतिवर्ष चिकित्सीय शिक्षा के निदेशक द्वारा भरा जाना अनुज्ञात किया गया है और उसे सरकारी और प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु चयन किए गए अभ्यर्थियों की

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है:—

"4 (1) Notwithstanding any contained in any other law for the time being in force, the Government may, by notification, regulate the tution fee or any other fee or deposit that may be received or collected by any educational institution or class or classes of such educational institutions in respect of any or all class or classes of students:

Provided that before issuing a notification under this sub-section. the draft of which shall be published in the Tamil Nadu Government GAZETTE stating that any objection or suggestion which may be received by the Government. within such period as may be specified therein shall be considered by them.

(2) No educational institution shall receive or collect any fee or accept deposit in excess of the amount notified under sub-section(1).

(3) Every educational institution shall issue an official receipt for the fee or deposit received or collected by it."

अनुमोदित सूची में से भरा जाता है। स्वःवित्तपोषित प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालयों को प्रबंधतंत्र के कोटे के अधीन महाविद्यालय के अनुमोदित प्रवेश के 50 प्रतिशत भाग तक अपनी पसंद के छात्रों को प्रवेश देने के लिए अनुज्ञात किया गया है। शेष 50 प्रतिशत स्थानों का प्रतिवर्ष तकनीकी शिक्षा निदेशक द्वारा सरकारी और सहायता-प्राप्त महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु चयन किए गए छात्रों की अनुमोदित सूची में से भरा जाना अनुज्ञात किया गया है। तमिलनाडु सरकार द्वारा पारित आदेशों की सत्य प्रतिलिपियां इससे उपाबद्ध हैं।

आज दिल्ली में 1992 के दिसम्बर मास के 10वें दिन दिनांकित।

तमिलनाडु राज्य की ओर से काउंसेल।"

130. श्री सीतारामन ने यह भी कहा कि सरकार इस बात पर जोर देगी कि 40 प्रतिशत सरकारी स्थानों पर प्रवेश दिए गए छात्रों से केवल सरकारी चिकित्सा महाविद्यालय में संगृहीत फीस का संग्रहण ही अनुज्ञात किया जाएगा। वह इस तथ्य को भी हमारी जानकारी में लाए कि सरकार ने मामले पर विचार करने और स्वयं वित्तपोषित चिकित्सा, इंजीनियरी और अन्य महाविद्यालयों में फीस संरचना को विनियमित करते हुए, नियम विरचित करने के लिए एक समिति गठित की है। [देखें : तारीख 30 नवम्बर, 1992 का जी०ओ०एम०एस० 1172 एजूकेशन (जे०आई०) डिपार्टमेंट]।

130क. 1992 की रिट याचिका सं० 701 अन्नामलाई विश्वविद्यालय और उसके प्रति कुलपति, डा० एम०ए०एम० रामस्वामी द्वारा फाइल की गई है, जिसमें उपर्युक्त अधिनियम के उपबंधों और ऊपर निर्दिष्ट **मोहिनी जैन** वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांतों की शुद्धता को प्रश्नगत किया गया है। इस संस्था द्वारा प्रत्यर्थियों के (तमिलनाडु राज्य, भारत संघ और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) को किसी भी रीति में, कैपिटेशन फीस को, चाहे वह किसी नाम से वर्णित किया जाए, याची विश्वविद्यालय के नियंत्रण के अधीन महाविद्यालयों में विभिन्न उपाधि पाठ्यक्रमों में प्रवेश की ईप्सा करने वाले छात्रों से संगृहीत करने के याची के अधिकार में हस्तक्षेप करने से प्रविरत रहने के लिए निदेश हेतु परमादेश के रिट की ईप्सा की गई है, जिससे कि पूंजी-विनिधान के युक्तिसंगत आगम को सम्मिलित किया जा सके और विभिन्न छात्रों से, जो प्रवेश की ईप्सा करते हैं और जिनके पास प्रवेश के लिए अपेक्षित योग्यता है और जो ऐसी रकम का संदाय करने के लिए तैयार और इच्छुक हैं, राजा सर मुथैया चिकित्सा महाविद्यालय और अस्पताल चलाने सहित, महाविद्यालयों में पाठ्यक्रम चलाने के लिए प्रतिवर्ष आवर्ती व्यय को पूरा किया जा सके। यह सुनिश्चित करने के लिए प्रत्यर्थियों को निदेश हेतु एक और परमादेश की ईप्सा की गई है कि याचियों को ऐसे छात्रों से, जिनके पास प्रवेश हेतु अपेक्षित योग्यता है, फीस के संदाय के रूप में और द्वारा, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए, महाविद्यालय चलाने और उसके रख-रखाव के लिए योगदान करने की उनकी क्षमता का विचार किए बिना, राज्य सरकार द्वारा चलाए जा रहे महाविद्यालयों द्वारा प्रभारित फीस की दरों को भी प्रभारित करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता।

131. याचियों ने अपना निम्नलिखित पक्षकथन प्रस्तुत किया है: अन्नामलाई विश्वविद्यालय तत्कालीन मद्रास विधानमंडल द्वारा अधिनियमित अन्नामलाई विश्वविद्यालय अधिनियम, 1928 के अधीन स्थापित और निगमित स्वायत आवासिक एकात्मक विश्वविद्यालय है। उसमें इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी तथा औषधि-विज्ञान सहित 45 संकाय हैं। जहां तक चिकित्सा महाविद्यालय का संबंध है, वार्षिक प्रवेश क्षमता 125 है। 125 की इस संख्या के मुकाबले, याची अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के 50 छात्रों को प्रवेश देता है। उनसे केवल नाम मात्र की फीस संगृहीत की जाती है। शेष 75 छात्रों से फीस के रूप में चार लाख रुपए की राशि संगृहीत की जाती है। चार लाख रुपए की यह राशि चिकित्सीय शिक्षा के खर्च को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। जब तक चार लाख रुपए की यह न्यूनतम फीस कम से कम 75 छात्रों से संगृहीत नहीं की जाती हैं, तब तक चिकित्सा महाविद्यालयों को, जो अस्पताल से संलग्न हैं, चलाना याची के लिए सम्भव नहीं होगा। ऐसी स्थिति में, तमिलनाडु के राज्यपाल ने कैपिटेशन फीस को प्रतिषिद्ध करते हुए, पूर्वोक्त अध्यादेश जारी किया है। स्पष्टतः यह अध्यादेश ऊपरनिर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के अनुसरण में जारी किया गया है। यदि याची को केवल वही फीस संगृहीत करने के लिए बाध्य किया जाता है, जो सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों में सरकार द्वारा प्रभारित की जाती है, तो चिकित्सा महाविद्यालय चलाना असम्भव हो जाएगा। वह बंद हो जाएगा। याची का यह कहना है कि आक्षेपित अध्यादेश से (रिट याचिका फाइल किए जाने की तारीख तक अध्यादेश का स्थान लेने वाला अधिनियम प्रवृत्त नहीं हुआ है) याचियों के, ऐसे छात्रों से, जो चिकित्सा महाविद्यालय में प्रवेश के लिए उसका संदाय करने के लिए तैयार और इच्छुक हैं, समुचित रकम संगृहीत करके, चिकित्सा महाविद्यालय स्थापित और प्रशासित करने के मूल अधिकार का उल्लंघन होता है।

भाग-2

प्रश्न सं० 1. क्या भारत के संविधान में भारत के नागरिकों को शिक्षा के मूल अधिकार की गारण्टी दी गई है।

132. शिक्षा का अधिकार भाग 3 में मूल अधिकार के रूप में अभिव्यक्त रूप से वर्णित नहीं किया गया है। तथापि, इस न्यायालय ने इस नियम का अनुसरण नहीं किया है कि जब तक किसी अधिकार को मूल अधिकार के रूप में अभिव्यक्त रूप से वर्णित नहीं किया जाता है, उसे मूल अधिकार नहीं माना जा सकता है। भाग 3 में प्रेस की स्वतंत्रता को अभिव्यक्त रूप से वर्णित नहीं किया गया है, तथापि उसे भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में पढ़ा और समझा गया है तथा उससे उसे

अनुमित किया गया है। (देखें **एक्सप्रेस न्यूजपेपर** बनाम **भारत संघ**[1] वाला मामला) विशेष रूप से अनुच्छेद 21 से मानव अधिकारों के विधिशास्त्र का संपूर्ण लाट उद्‌भूत हुआ है, अर्थात् कानूनी सहायता और त्वरित विचारण का अधिकार (**हुसैन आरा खातून**[2] वाले मामले से **ए॰ आर॰ अंतुले**[3] वाले मामले तक), आजीविका का अधिकार (देखें **ओल्गा टैलिस**[4] वाला मामला), गरिमा और एकान्तता का अधिकार (**खड़क सिंह**[5] वाला मामला) स्वास्थ्य का अधिकार **विन्सेन्ट** बनाम **भारत संघ**[6] वाला मामला), प्रदूषण-मुक्त पर्यावरण का अधिकार (**एम॰सी॰ मेहता** बनाम **भारत संघ**[7] वाला मामला), आदि। अब हम इस प्रश्न पर विस्तार से विचार करेंगे।

132क. ऊपरनिर्दिष्ट **एक्सप्रेस न्यूज़पेपर** बनाम **भारत संघ** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है किः—

> "भाषण की स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता और भाषण की स्वतंत्रता, दोनों ही, सम्मिलित हैं। तथा भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता नागरिकों के मूल और वैयक्तिक अधिकार हैं।"

133. अनुच्छेद 21 में यह घोषित किया गया है किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं। यह सच है कि उक्त अनुच्छेद की भाषा नकारात्मक है किंतु अब यह बात सुस्थापित हो चुकी है कि अनुच्छेद 21 के नकारात्मक और सकारात्मक, दोनों प्रकार के, आयाम हैं। काफी पहले वर्ष 1962 में ही, ऊपरनिर्दिष्ट **खड़क सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** वाले मामले में संविधान पीठ (जिसमें 6 न्यायाधीश थे) ने अनुच्छेद 21 में वार्णित "दैहिक स्वतंत्रता" पद की अन्तर्वस्तु पर विचार किया। न्या॰ राजगोपाल आय्यंगर ने जिन्होंने बहुमत का निर्णय सुनाया, यह मत व्यक्त कियाः—

> "अब हम अनुच्छेद 21 में वर्णित "दैहिक स्वतंत्रता" पद की परिधि विस्तार और अंतर्वस्तु पर विचार करेंगे। हम यह अभिनिर्धारित करने में असमर्थ हैं कि उक्त पद केवल इस संकीर्ण निर्वचन के लिए आशयित था बल्कि दूसरी ओर, हम यह समझते हैं कि "दैहिक स्वतंत्रता" पद का उक्त अनुच्छेद में इस प्रकार प्रयोग किया गया है कि उसके अंतर्गत सभी प्रकार के अधिकार आते हैं, जो किसी व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रताएं गठित करते हैं; इस पद के अंतर्गत वे अधिकार सम्मिलित नहीं हैं जो अनुच्छेद 19 (1) के विभिन्न खण्डों में वर्णित हैं। दूसरे शब्दों में, जहां अनुच्छेद 19 (1) उस स्वतंत्रता के विशेष प्रकारों या लक्षणों के सम्बन्ध में है, वहीं अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त "दैहिक स्वतंत्रता" पद के अंतर्गत शेष सभी अधिकार समाविष्ट हैं।"

विद्वान न्यायाधीश ने **मन** बनाम **ईलिथोनोइस**[1] वाले मामले में न्या॰ फील्ड की विसम्मतिसूचक राय उद्धृत की। (उन विसम्मति सूचक रायों में से एक राय, जो अधिसंख्य न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त की गई रायों से भी अधिक समय तक टिकी हुई है) जिसमें अमरीकी संविधान के पांचवें और चौदहवें संशोधनों में "जीवन" शब्द को व्यापक अर्थ दिया गया है, जो अन्य बातों के साथ-साथ हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 का समरूपी है। विद्वान न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि "पर्सनल लिबर्टी" (वैयक्तिक स्वतंत्रता) शब्दों के अंतर्गत किसी व्यक्ति के घर की एकान्ततः और दैहिक और व्यक्ति की गरिमा भी आती है।

तथापि, अल्पसंख्यक न्यायाधीशों ने अनुच्छेद 21 का तुलनात्मक रूप से अधिक व्यापक निर्वचन किया। उन्होंने यह कहाः—

> "निस्संदेह, 'दैहिक स्वतंत्रता' पद समावेशकारी पद है और स्वतंत्रतापूर्वक संचरण करने (आने-जाने) का अधिकार वैयक्तिक स्वतंत्रता का एक लक्षण है। यह कहा गया है कि स्वतंत्रतापूर्वक आने-जाने की स्वतंत्रता वैयक्तिक स्वतंत्रता से बनाई गई है और इसलिए अनुच्छेद 21 में 'दैहिक स्वतंत्रता' पद से उक्त लक्षण को अपवर्जित किया गया है। हमारे मतानुसार, यह सही दृष्टिकोण नहीं है। दोनों ही स्वतंत्र मूल अधिकार हैं, यद्यपि दोनों में अति व्याप्ति है। एक अधिकार का दूसरे अधिकार से बनाए जाने का कोई प्रश्न नहीं है। जीवन और दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार के अनेक आयाम (लक्षण) हैं और उनमें से कुछ अनुच्छेद 19 में हैं। यदि अनुच्छेद 21 के अधीन किसी व्यक्ति के मूल अधिकार का उल्लंघन किया जाता है, तो राज्य कार्यवाही करने के लिए विधि का अवलंब ले सकता है, किंतु वह पूर्ण उत्तर नहीं है जबकि उक्त विधि अनुच्छेद 19(2) में अधिकथित कसौटी पर सही नहीं उतरती है, जहां तक अनुच्छेद 19(1) के अंतर्गत आने वाले लक्षणों का संबंध है।"

134. **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में न्या॰ भगवती ने यह अभिनिर्धारित किया कि **आर॰सी॰ कूपर** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले में किए गए निर्णय का ऊपरनिर्दिष्ट **खड़क सिंह** वाले मामले में बहुमत की राय को उलटने और अल्पमत की राय का अनुमोदन करने का प्रभाव है।

---

[1] [1959] एस॰ सी॰ आर॰ 12=ए॰ आई॰ आर॰ 1958 एस॰ सी॰ 578.

[2] [1979] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 532=ए॰ आई॰ आर॰ 1979 एस॰ सी॰ 1369.

[3] [1992] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 225=ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 1872.

[4] [1986] 1 उम॰ नि॰ प॰ 269=ए॰ आई॰ आर॰1986 एस॰ सी॰ 180=1985 (सप्ली॰) 2 एस॰ सी॰ आर॰ 51.

[5] [1964] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 332=ए॰ आई॰ आर॰ 1963 एस॰ सी॰ 1295.

[6] [1987] 2 एस॰ सी॰ आर॰ 468=ए॰ आई॰ आर॰ 1987 एस॰ सी॰ 990.

[7] ए॰ आई॰ आर॰ 1988 एस॰ सी॰ 1037=[1988] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 279.

---

[1] [1877] 94 यू॰ एस॰ 113/142=24 ला॰ ई॰ डी॰ 77.

[2] [1979] 1 उम॰ नि॰ प॰ 243=ए॰ आई॰ आर॰ 1978 एस॰ सी॰ 597.

[3] [1970] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 530=ए॰ आई॰ आर॰ 1970 एस॰ सी॰ 564.

135. **बोलिंग** बनाम **शार्प**[1] वाले मामलों में मु॰ न्या॰ वारेन ने अमरीकी उच्चतम न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए, यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि न्यायालय ने प्रमितता से "स्वतंत्रता" पद को परिभाषित नहीं किया है, तथापि उक्त पद केवल शारीरिक अवरोध से स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं है। विधि के अधीन स्वतंत्रता "आचरण" की पूर्ण रेंज (श्रृंखला) तक विस्तृत है, जिसे करने के लिए कोई व्यक्ति स्वतंत्र है, और उसे समुचित सरकारी उद्देश्य के लिए ही निर्बन्धित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। ऐसा कहने के पश्चात्, विद्वान न्यायाधीश ने आगे यह कहा कि लोक शिक्षा में अलगाव (पृथक्करण) किसी समुचित सरकारी उद्देश्य से युक्तियुक्त रूप से संबंधित नहीं है और इस प्रकार उसके द्वारा कोलम्बिया जिला के नीग्रो बच्चों पर भार अधिरोपित किया गया है, जो सम्यक् प्रक्रिया खंड (ड्यू प्रासेस क्लाज़) के उल्लंघन में उनकी स्वतंत्रता का मनमाना वंचन है।

136. संविधान के अनुच्छेद 21 में वर्णित "प्राण" शब्द का भी व्यापक और विस्तृत निर्वचन किया गया है। यद्यपि उन सबके प्रतिनिर्देश करना आवश्यक नहीं है, तथापि **ओल्गा टैलिस** बनाम **मुम्बई नगर निगम**[2] वाले मामले में किए गए विनिश्चय के प्रति अवश्य ही निर्देश किया जाना चाहिए। मु॰न्या॰ चन्द्रचूड़ ने इस न्यायालय के संविधान पीठ की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह मत व्यक्त किया:—

> "'जीवन' (प्राण) के अधिकार की जो अधिकार अनुच्छेद 21 द्वारा दिया गया है, परिधि बहुत व्यापक और दूरगामी है। उससे केवल यही अभिप्रेत नहीं है कि जीवन या प्राण निर्वापित या छीना नहीं जा सकता है, उदाहरणार्थ, मृत्यु दण्डादेश के अधिरोपण और निष्पादन द्वारा, सिवाय विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार। यह जीवन के अधिकार का केवल एक पहलू है। उक्त अधिकार का उतना महत्वपूर्ण पहलू आजीविका का अधिकार है क्योंकि कोई भी व्यक्ति रहने के साधन के बिना, अर्थात् आजीविका के साधन के बिना (जीवित) नहीं रह सकता है। यदि आजीविका के अधिकार को जीवन के सांविधानिक अधिकार के भाग के रूप में नहीं माना जा सकता है, तो किसी व्यक्ति को उसके जीवन के अधिकार से वंचित करने का सरलतम उपाय उसे आजीविका के उसके साधन से वंचित करना होगा, जिसका अर्थ उसका (शारीरिक) अन्त होगा। ऐसा वंचन न केवल जीवन को उसकी प्रभावी अन्तर्वस्तु और सार्थकता से वंचित कर देगा बल्कि वह जीवन को ही असम्भव भी बना देगा और फिर भी, ऐसा वंचन विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार नहीं होना है, यदि आजीविका के अधिकार को जीवन के अधिकार का भाग नहीं माना जाता है। उस चीज को, केवल जो जीवन को सम्भव बनाती है (उस चीज को छोड़ ही दें जो जीवन को सक्षम बनाती है), जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को उसके आजीविका के अधिकार से वंचित कर दीजिए और उसका अर्थ यह होगा कि आप उसे उसके जीवन से वंचित कर देंगे......।
>
> संविधान के अनुच्छेद 39-क में, जो राज्य की नीति का निदेशक तत्व है यह उपबंध किया गया है कि राज्य यह सुनिश्चित करने की दिशा में अपनी नीति को विशेष रूप से निर्दिष्ट करेगा कि पुरुषों और महिलाओं, सभी नागरिकों, को आजीविका के पर्याप्त साधन का अधिकार प्राप्त होगा। अनुच्छेद 41 में जो एक अन्य नीति निदेशक तत्व है, अन्य बातों के साथ-साथ, यह उपबंध किया गया है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के और बेकारी तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशा में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा। अनुच्छेद 37 में यह उपबंध किया गया है कि नीति निदेशक तत्व, यद्यपि वे किसी न्यायालय प्रवर्तनीय नहीं हैं, (फिर भी) देश के शासन में मूलभूत हैं। अनुच्छेद 39-क और 41 में अंतर्विष्ट सिद्धांत, मूल अधिकारों के अर्थ और उनकी अंतर्वस्तु को समझने और उनके निर्वचन में उतने ही मूलभूत माने जाने चाहिएं। यदि राज्य पर उसके नागरिकों को आजीविका का पर्याप्त साधन और काम का अधिकार सुनिश्चित करने की बाध्यता अधिरोपित की गई है, तो आजीविका के अधिकार को जीवन के अधिकार की अंतर्वस्तु से अपवर्जित करना अति-सिद्धांतवादिता ही होगा।"

137. **बंधुआ मुक्ति मोर्चा** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में न्या॰ भगवती ने इस प्रतिपादना की पुष्टि करते हुए कि अनुच्छेद 21 का राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के प्रकाश में ही अर्थान्वयन किया जाना चाहिए, यह मत व्यक्त किया:—

> "संविधान के अनुच्छेद 21 में सन्निविष्ट मानव-गरिमा से रहने का यह अधिकार अपनी प्राणवायु राज्य की नीति के निदेशक तत्वों से, विशेष रूप से अनुच्छेद 39 के खण्ड (ङ) और (च) तथा अनुच्छेद 41 और 42 से ग्रहण करता है और इसलिए कम से कम उसके अंतर्गत स्त्री और पुरुष कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का संरक्षण, दुरुपयोग के विरुद्ध कोमल वयस् के बच्चों को संरक्षण और आरोग्यकर रीति में और स्वतंत्रता और गरिमा की दशाओं में विकास करना, शैक्षिक सुविधाएं कार्य की मानवोचित दशाएं और मातृत्व अनुतोष (राहत) भी आनी चाहिए। ये न्यूनतम अध्यपेक्षाएं हैं जो मानव-गारिमा के साथ रहने के लिए किसी व्यक्ति को समर्थ बनाने के लिए अवश्य ही अस्तित्व में रहनी चाहिए.....।"

डी॰ एस॰ नकरा बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में संविधान पीठ ने हमारे संविधान की उद्देशिका में "समाजवादी" पद के जोड़े जाने के महत्व को इस प्रकार स्पष्ट किया:—

> "निर्माण के वर्षों के दौरान ...... समाजवादी का

---

[1](1953) 98 ला॰ ई॰ डी॰ 884.

[2][1986] 1 उम॰ नि॰ प॰ 269=[1985] सप्ली 2 एस॰ सी॰ आर॰ 51.

[1] [1984] 3 उम॰ नि॰ प॰ 23=[1984] 3 एस॰ सी॰ सी॰ 161=[1984] 2 एस॰ सी॰ आर॰ 67.

[2] ए॰ आई॰ आर॰ 1983 एस॰ सी॰ 130.

उद्देश्य शैक्षिक कार्यकलाप करने के लिए सभी प्रकार के अवसर जुटाना (होता) है ......। राष्ट्रीय उत्पादन का साम्यापूर्ण वितरण होगा ......।"

विन्सेंट बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के खण्ड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया:—

"अतः कल्याणकारी राज्य में, अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक परिस्थितियां पैदा करने और उन्हें कायम रखने के कार्य को सुनिश्चित करना राज्य की बाध्यता है .....। अभी हाल ही के वर्षों के दौरान, अनेक निर्णयों में इस न्यायालय ने संविधान के भाग 4 के उपबंधों से राज्य की अनेक बाध्यताएं निष्कर्ष स्वरूप निकाली हैं और उससे (राज्य से) उन्हें प्रभावी बनाने की अपेक्षा की है, जिससे कि संविधान निर्माताओं ने जो स्वप्न देखा था, वह एक वास्तविकता बन सके।"

ए०आर० अंतुले बनाम **आर०एस० नायक**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 द्वारा अभियुक्त के शीघ्रतापूर्वक विचारण किए जाने का अधिकार सर्जित किया गया है और उक्त अधिकार के अंतर्गत दाण्डिक मामले के सभी प्रक्रम आएंगे। यह अभिनिर्धारित किया गया कि अभियुक्त के इस अधिकार के उल्लंघन से आरोपों का ही अभिखण्डन हो सकता है।

भाग 3 और 4 की अन्तरक्रिया (पारस्परिक प्रभाव):

138. इस न्यायालय ने भी बराबर यही दृष्टिकोण अपनाया है कि मूल अधिकार और निदेशक तत्व एक दूसरे के पूरक हैं तथा भाग 3 के उपबंधों का संविधान की उद्देशिका और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को ध्यान में रखते हुए निर्वचन किया जाना चाहिए। भाग 4 के महत्व को मान्यता प्रदान करने में आरम्भिक हिचकिचाहट का काफी पहले ही अधित्यजन कर दिया गया है। हम इस मुद्दे को स्पष्ट करना उचित समझते हैं।

मूल अधिकारों पर अंतिम रिपोर्ट, विचार हेतु प्रस्तुत करते समय, सरदार बल्लभभाई पटेल ने भाग 3 और 4 में वर्णित दोनों अधिकारों को "मूल अधिकारों" के रूप में वर्णित किया—एक को न्याय्य अधिकार के रूप में और दूसरे को गैर-न्याय्य अधिकार के रूप में। अपनी अनुपूरक रिपोर्ट में उन्होंने यह कहा:—

"रिपोर्ट के दो भाग थे; एक भाग में मूल अधिकार अंतर्विष्ट हैं, जो न्याय्य थे: और रिपोर्ट के दूसरे भाग में ऐसे मूल अधिकारों के प्रतिनिर्देश किया गया है, जो न्याय्य नहीं थे बल्कि निदेशात्मक सिद्धांत थे"।

इस कथन से संविधान-निर्माताओं द्वारा निदेशक तत्वों को दिया गया महत्व उपदर्शित होता है। यह सच है कि **मद्रास राज्य** बनाम **चम्पकम् दोराईराजन**[3] वाले मामले में, निदेशक तत्वों की तुलना में मूल अधिकार अधिक महत्वपूर्ण माने गए किंतु उसके पश्चात् न्यायालय के, मूल अधिकारों और निदेशक तत्वों की अंतरक्रिया के प्रति, दृष्टिकोण में सुस्पष्ट परिवर्तन आया है।

139. काफी पहले वर्ष 1958 में ही, केरल शिक्षा विधेयक (वाले मामले) में, इस न्यायालय के एक विशेष न्यायपीठ ने, जिसकी ओर से मु० न्या० एस० आर० दास ने निर्णय सुनाया, मूल अधिकारों की प्राथमिकता की पुष्टि करते हुए, निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों से उसे सीमित किया:—

"तथापि, मूल अधिकारों की परिधि और विस्तार को अवधारित करने में, जिनका किसी व्यक्ति या निकाय द्वारा अवलंब लिया जाता है, न्यायालय संविधान के भाग 4 में अधिकथित राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की पूर्णतः उपेक्षा नहीं कर सकता है बल्कि उसे सामंजस्यपरक अर्थान्वयन के सिद्धांतों को अपनाना चाहिए और यथासम्भव दोनों को प्रभावी बनाने का प्रयास करना चाहिए।"

हनीफ बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में भी यही मत व्यक्त किया है।

केशवानन्द भारती बनाम **केरल राज्य**[2] वाले मामले में एकाधिक विद्वान् न्यायाधीशों ने इस पहलू के प्रतिनिर्देश किया। न्यायमूर्ति हेगड़े और न्यायमूर्ति मुखर्जी ने इस संबंध में यह मत व्यक्त किया:—

"मूल अधिकार और नीति के निदेशक तत्व संविधान की अंतरात्मा गठित करते हैं......। भाग 4 की उपेक्षा करना संविधान में उपबंधित सम्बल (विश्वास की भावना) और राष्ट्र को दिखाई गई आशा की किरण और उन आदर्शों की ही उपेक्षा करना है, जिन पर हमारा संविधान निर्मित है......। मूल नियमों और निदेशक तत्वों के बीच कोई विरोध नहीं है......। वे एक दूसरे के पूरक हैं।"

न्यायमूर्ति शैलट और ग्रोवर ने अपने निर्णय में यह मत व्यक्त किया है:—

"भाग 3 और 4, दोनों ही के बीच संतुलन स्थापित किया जाना है और उनमें परस्पर सामंजस्य बैठाया जाना है.....; तभी व्यक्ति की गरिमा प्राप्त की जा सकती है....। वे (मूल अधिकार और निदेशक तत्व) एक दूसरे के पूरक होने के लिए अभिप्रेत थे।"

न्यायमूर्ति मैथ्यू ने, यही दृष्टिकोण अपनाते हुए यह टिप्पणी की:—

"संविधान को स्थापित करने में लोगों का उद्देश्य न्याय, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता और समता का संप्रवर्तन करना था। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने की रीति (कार्य प्रणाली) संविधान के भाग 3 और भाग 4 में उपवर्णित की गई है। भाग 3 और 4, दोनों ही, में कतिपय नैतिक अधिकार प्रगणित किए गए हैं। इनमें से प्रत्येक भाग मुख्यतः एक अर्थ में, कतिपय आकांक्षाओं के कथनों का प्रतिनिधित्व करता है, जिनकी पूर्ति उस प्रकार के समाज के लिए आवश्यक मानी गयी, जिसका संविधान-निर्माता निर्माण करना चाहते थे। इनमें से अनेक अनुच्छेद, चाहे वे भाग 3 में हों या भाग 4 में, उन नैतिक अधिकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्हें उन्होंने अपने देश के प्रत्येक मानव में अंतर्निहित अधिकारों के रूप में मान्यता प्रदान की है। इन अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने और उन्हें साकार करने (कार्य रूप देने) का उत्तरदायित्व राज्य के सभी अंगों पर, अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका पर, अधिरोपित किया गया है। तब इस तथ्य को कितना महत्व दिया जाना है कि भाग 3 के उपबंध न्यायालय में प्रवर्तनीय हैं और भाग 4 के उपबंध प्रवर्तनीय नहीं हैं। क्या ऐसा है कि भाग 3 के उपबंधों में परिलक्षित अधिकार, किसी

[1] [1987] 2 एस० सी० आर० 468.
[2] ए० आई० आर० 1992 एस० सी० डब्ल्यू० 1872=[1992] 1 एस० सी० आर० 225.
[3] ए० आई० आर० 1951 एस० सी० 226.

[1] [1959] एस० सी० आर० 629 (पृष्ठ 655) = ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 731, पृष्ठ 741-42.
[2] [1973] 2 उम० नि० प० 159 = [1973] सप्ली० एस० सी० आर० 521 = ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 1461.

प्रकार, भाग 4 के उपबंधों में परिलक्षित नैतिक दावों और आकांक्षाओं से ऊंचे हैं। मैं नहीं समझता कि ऐसा है। अनुच्छेद 45 के अधीन निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा, निश्चय ही, अनुच्छेद 25 के अधीन धर्म की स्वतंत्रता के समान ही महत्वपूर्ण है। भुखमरी से मुक्ति जीवन के अधिकार के समान ही महत्वपूर्ण है और न भाग 3 के उपबंध इस अर्थ में आत्यंतिक (पूर्ण) हैं कि उन अधिकारों को, जो उनके द्वारा परिलक्षित किए गए हैं, सदा पूर्णतः कार्यान्वित किया जा सकता है।"

न्यायमूर्ति वाई० वी० चन्द्रचूड़ (जैसे कि वह उस समय थे) ने यही भाव निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया:—

"जैसे ही मैं भाग 3 और 4 के उपबंधों का परिशीलन करता हूं, मुझे इस संबंध में कोई संदेह नहीं रह जाता कि व्यक्तियों को स्वतंत्रताएं प्रदत्त करने का आधारभूत उद्देश्य भाग 4 में उपवर्णित आदर्शों की अंतिम उपलब्धि है.... बल्कि मेरा तो यह भी कहना है कि राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को मात्र रेत का रज्जु नहीं बनने दिया जाना चाहिए। यदि राज्य ऐसी परिस्थितियां सर्जित करने में असफल रहता है, जिनमें मूलभूत स्वतंत्रताओं का सभी के द्वारा उपभोग किया जा सकता है, तो कुछ लोगों की स्वतंत्रता अनेक लोगों की दया पर निर्भर होगी और तब सभी प्रकार की स्वतंत्रताएं नष्ट हो जाएंगी।"

140. **कर्नाटक राज्य** बनाम **रंगनाथ रेड्डी**[1] वाले मामले में न्या० कृष्ण अय्यर ने यह कहा:—

"एक हमारी यह प्रतिपादना है कि सामाजिक न्याय की प्रक्रिया को खोने नहीं दिया जाना चाहिए। यदि भाग 3 और 4 के सामंजस्य से राज्य की कार्यवाही और न्यायालय के निर्णय प्रभावित होने हैं।"

यू० पी० एस० सी० बोर्ड बनाम **हरिशंकर**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया:—

"न्यायालयों को सम्बोधित किए जाने पर, व्यादेश (अनुच्छेद 37) से यह अभिप्रेत है कि जहां न्यायालय विधान बनाने का निदेश करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, वहीं वे (न्यायालय) निर्वचन के सिद्धांत को प्रतिपादित, पुष्ट और अंगीकृत करने के लिए **आबद्ध** हैं, जो राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को उपवर्णित लक्ष्यों को अग्रसर करेगा, न कि उनमें बाधा डालेगा। संविधान का यह समादेश सदा न्यायाधीशों के मन में रहना चाहिए, जब वे ऐसे कानूनों का निर्वचन कर रहे हों, जो प्रत्यक्षतः या परोक्षतः राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में उपवर्णित विषयों से संबंधित हों। ऐसा इस मत के आधार पर है कि अनुच्छेद 12 के साथ पठित, अनुच्छेद 36 में राज्य के अंतर्गत न्यायपालिका भी आती है।"

मिनर्वा मिल्स लि० बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले में मु० न्या० चंद्रचूड़ ने ग्रेनविले आस्टिन की इस उपमा को सानुमोदन उद्धृत किया कि भाग 3 और भाग 4 रथ के दो चक्रों के समान हैं और यह मत व्यक्त किया कि एक की तुलना में दूसरे को पूर्ण प्राथमिकता देने का अर्थ संविधान के सामंजस्य में बाधा डालना होगा। भारत के विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने यह मत भी व्यक्त किया:—

"वे अधिकार (मूल अधिकार) स्वयं में साध्य नहीं हैं बल्कि वे किसी साध्य के साधन हैं। साध्य को भाग 4 में विनिर्दिष्ट किया गया है।"

141. इस प्रकार इस न्यायालय के विनिश्चयों द्वारा यह बात सुस्थापित हो चुकी है कि भाग 3 और 4 के उपबंध एक दूसरे के पूरक और अनुपूरक हैं तथा मूल अधिकार भाग 4 में उपदर्शित लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन मात्र हैं। यह भी अभिनिर्धारित किया जाता है कि मूल अधिकारों का निदेशक तत्वों के प्रकाश में ही अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। उपर्युक्त दृष्टिकोण से ही प्रश्न सं० 1 पर विचार किया जाना है।

अनुच्छेद 21 और शिक्षा का अधिकार

142. **बंधुआ मुक्ति मोर्चा** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 द्वारा गारण्टीकृत (प्रदत्त) शिक्षा के अधिकार में शिक्षा-संबंधी सुविधाएं भी आती हैं। (सुसंगत अंश इसमें इससे पूर्व उद्धृत किया जा चुका है)। किसी व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन में शिक्षा के मूलभूत महत्व को ध्यान में रखते हुए और इसमें इससे पूर्व निर्दिष्ट इस न्यायालय के पूर्वतर विनिश्चयों में अंगीकृत तर्क को और कारणों को स्वीकार करते हुए, हम ऊपरनिर्दिष्ट बंधुआ मुक्ति मोर्चा वाले मामले में किए गए इस कथन से सहमति व्यक्त करते हैं कि शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के अधिकार में सन्निहित है और उससे उद्भूत होता है। इस बात को कि शिक्षा का अधिकार किसी व्यक्ति के जीवन में उच्चतम महत्व का अधिकार माना गया है, न केवल इस देश में हजारों वर्षों से मान्यता प्रदान की गई है बल्कि संपूर्ण संसार में इस बात को मान्यता प्रदान की गई है। ऊपरनिर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में, शिक्षा के महत्व पर सम्यक् रूप से और ठीक ही बल दिया गया है। सुसंगत मताभिव्यक्तियां पहले ही पैरा 7 में उपवर्णित की जा चुकी हैं। विशेष रूप से, हम इस मताभिव्यक्ति से सहमति व्यक्त करते हैं कि इस देश के नागरिकों को शिक्षा की व्यवस्था किए बिना, संविधान की उद्देशिका में उपवर्णित उद्देश्यों को पूरा नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के बिना संविधान निरर्थक हो जाएगा। हम नहीं समझते कि शिक्षा के महत्व को उपर्युक्त शब्दों से बेहतर शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। शिक्षा के महत्व पर भर्तृ हरि (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी) ने अपनी कृति "नीतिशतकम्" में इस प्रकार बल दिया था:—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशः सुख करी विद्या गुरुणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीनः पशुः।।

अर्थात्, विद्या ही मनुष्य का श्रेष्ठ रूप है। वह छिपा हुआ सुरक्षित धन है। विद्या भोग-विलास (भौतिक सुख) देने वाली है तथा वह यश और सुख देने वाली है। विद्या गुरुओं का भी गुरु है। राजाओं के मध्य में विद्या ही पूजी जाती है, धन नहीं। अतः विद्या से हीन मनुष्य पशु ही है।

इस तथ्य से कि शिक्षा का अधिकार भाग 4 के तीन अनुच्छेदों, अर्थात् अनुच्छेद 41,45 और 46 में वर्णित है, संविधान-निर्माताओं द्वारा उसे दिया गया महत्व दर्शित होता है। भाग 3 के कुछ अनुच्छेदों, अर्थात् अनुच्छेद 29 और 30, में भी शिक्षा का उल्लेख किया गया है।

143. **ओलिवर ब्राउन** बनाम **बोर्ड ऑफ एजूकेशन**[2] वाले मामले में मु० न्या० अर्लवारेन ने, अमरीकी उच्चतम न्यायालय की ओर से

[1] [1981] 3 उम० नि० प० 1047 = ए० आई० आर० 1978 एस० सी० 215 (पृष्ठ 234).
[2] [1979] 3 उम० नि० प० 308 = ए० आई० आर० 1979 एस० सी० 65.
[3] [1981] 3 उम० नि० प० 146 = ए० आई० आर० 1980 एस० सी० 1789.

[1] [1984] 3 उम० नि० प० 23 = ए० आई० आर० 1984 एस० सी० 802.
[2] [1933] 98 ला० ईडी० 873.

निर्णय सुनाते हुए, शिक्षा के अधिकार पर निम्नलिखित शब्दों में बल दिया है :—

> "आजकल, शिक्षा कदाचित् राज्य और स्थानीय स्वशासनों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृत्य है............। हमारे सर्वाधिक आधारभूत उत्तरदायित्वों के निर्वहन में, सशस्त्र बलों में सेवा के निर्वहन में भी उसकी आवश्यकता पड़ती है। वह अच्छी नागरिकता का आधार ही है। आजकल बालकों को सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति जागरूक बनाने, उन्हें पश्चात्वर्ती वृत्तिक प्रशिक्षण हेतु तैयार करने और उन्हें उनके पर्यावरण से सामान्यतः समायोजन करने में सहायता देने के लिए भी प्रधान साधन है। इन दिनों यह बात संदेहास्पद है कि किसी बालक से जीवन में सफल होने की युक्तियुक्त रूप से आशा की जा सकती है, यदि उसे शिक्षा के अवसर से वंचित किया जाता है।"

विसकोन्सिन बनाम **योडर**[1] वाले मामले में न्यायालय ने निम्नलिखित तथ्य को मान्यता प्रदान कीः—

> "पब्लिक स्कूलों (लोक विद्यालयों) की व्यवस्था करना राज्य का उच्चतम कृत्य है।"

उक्त तथ्य की डा० राधाकृष्णन्, जे०पी० नायक, डा० कोठारी और अन्य (शिक्षाविदों) जैसे आधुनिक भारत के महान् शिक्षाविदों द्वारा भी पुष्टि की गई है।

144. याचियों के कुछ काउंसेलों ने यह तर्क दिया है कि अनुच्छेद 21 स्वरूप में नकारात्मक है और उसमें मात्र यह घोषित किया गया है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं। चूंकि राज्य द्वारा प्रत्यर्थी-छात्रों को उनके शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं किया जा रहा है, अतः अनुच्छेद 21 लागू नहीं होता— ऐसा निवेदन किया गया है। उनके अनुसार, यदि और जब राज्य शिक्षा के अधिकार को छीनते हुए, कोई विधि बनाता है, तो अनुच्छेद 21 लागू होगा। हमारी राय में, यह तर्क वस्तुतः भ्रम के कारण उद्भूत हुआ है; किसी भी दशा में, वह विवाद्यक के बारे में भ्रम उत्पन्न करने के लिए आशयित है। प्रथम प्रश्न यह है कि क्या अनुच्छेद 21 द्वारा गारण्टीकृत जीवन का अधिकार अपनी परिधि में शिक्षा के अधिकार को भी लेता है या नहीं। उसके पश्चात् ही यह द्वितीय प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या राज्य उस अधिकार को छीन रहा है। मात्र इस तथ्य से कि राज्य उस अधिकार को नहीं छीन रहा है, यह अभिप्रेत नहीं है कि शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार में सम्मिलित नहीं है। उक्त अधिकार की अंतर्वस्तु धमकी की अनुभूति (धारणा) द्वारा अवधारित नहीं है। जीवन के अधिकार की अंतर्वस्तु को वंचन की धमकी के होने या न होने के आधार पर अवधारित नहीं किया जाना है। यह अभिनिर्धारित करने का कि शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार में विवक्षित है, प्रभाव यह है कि राज्य नागरिक को उसके शिक्षा के अधिकार से विधि द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित कर सकता है, अन्यथा नहीं।

145. विधि की उपर्युक्त स्थिति को देखते हुए, यह दलील देना सही नहीं होगा कि ऊपरनिर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में किया गया विनिश्चय इस अर्थ में गलत था कि उसमें यह घोषित किया गया था कि शिक्षा का अधिकार सीधे जीवन के अधिकार से उद्भूत होता है। किंतु प्रश्न यह है कि इस अधिकार की अंतर्वस्तु क्या है। जीवन को सार्थक बनाने के लिए कितनी शिक्षा और किस स्तर तक की शिक्षा आवश्यक है। क्या इससे यह अभिप्रेत है कि इस देश का प्रत्येक नागरिक राज्य से अपनी पसंद की शिक्षा की व्यवस्था करने की अपेक्षा कर सकता है। दूसरे शब्दों में, क्या इस देश के नागरिक यह मांग कर सकते हैं कि राज्य उनकी सभी शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त संख्या में चिकित्सा महाविद्यालयों, इंजीनियरी महाविद्यालयों और अन्य शैक्षिक संस्थाओं की व्यवस्था करे। ऐसा प्रतीत होता है कि ऊपरनिर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में किए गए विनिश्चय में उक्त प्रश्न का सकारात्मक उत्तर दिया गया है। ससम्मान, हम ऐसी व्यापक प्रतिपादना से सहमत नहीं हो सकते हैं। शिक्षा के अधिकार का, जो अनुच्छेद 21 द्वारा गारण्टीकृत जीवन और वैयक्तिक स्वतंत्रता के अधिकार में विवक्षित है, संविधान के भाग 4 में नीति के निदेशक तत्वों के प्रकाश में ही अर्थान्वयन किया जाना चाहिए। जहां तक शिक्षा के अधिकार का संबंध है, भाग 4 में ऐसे अनेक उपबंध हैं, जिनमें अभिव्यक्त रूप से उसका उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 41 में यह कहा गया है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा। अनुच्छेद 44 में यह कहा गया है कि राज्य भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा। अनुच्छेद 45 में यह कहा गया है कि राज्य, इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा। अनुच्छेद 46 में यह कहा गया है कि राज्य जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के, शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा। शिक्षा का अर्थ ज्ञान है — और ज्ञान स्वयं शक्ति है। जैसा कि जॉन एडम्स ने ठीक ही कहा है, निम्नतम श्रेणियों में ज्ञान के साधन का परिरक्षण, देश में सभी सम्पन्न व्यक्तियों की संपूर्ण सम्पत्ति की तुलना में जनता के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। (डिसर्टेशन ऑन कैनन एंड फयूडल ला, पृष्ठ 1765)। अनुच्छेद 46 में यही व्यग्रता अंतर्निहित प्रतीत होती है। केवल क्रूर और बुरे शासक ही वंचित वर्गों में शिक्षा और ज्ञान के प्रसार से भयभीत होते हैं। उदाहरण के रूप में, हिटलर का नाम लिया जा सकता है। वह सार्वजनीन (सामान्य) शिक्षा के पूर्णतः विरुद्ध था। उसने इस संबंध में यह कहा था—"सार्वजनिक (सामान्य) शिक्षा ऐसा सर्वाधिक क्षारणकारी और विघटनकारी विष है, जिसे उदारवाद ने स्वयं अपने विनाश के लिए खोजा है।" (राशनिंग, दि वायस आफ डेस्ट्रक्शनः हिटलर स्पीक्स)। सच्चा जनतंत्र वहां है, जहां शिक्षा सार्वजनीन है, जहां लोग यह समझते हैं कि उनके लिए और राष्ट्र के लिए कौन सी चीज अच्छी है, और जहां वे स्वयं को शासित करना जानते हैं। तीनों अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 45, 46 और 41 अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आशयित हैं। इन उपबंधों के प्रकाश में ही शिक्षा के अधिकार की अंतर्वस्तु और प्राचलों (पैरामीटरों) को अवधारित किया जाना है। अनुच्छेद 45 और 41 के संदर्भ में समझे जाने पर शिक्षा के अधिकार से यह अभिप्रेत हैः (क) इस देश के प्रत्येक बच्चे/नागरिक को निःशुल्क शिक्षा का अधिकार प्राप्त है, जब तक कि वह 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेता है; और (ख) बालक/नागरिक द्वारा 14 वर्ष की आयु पूरा किए जाने के पश्चात् उसके शिक्षा का अधिकार राज्य की आर्थिक क्षमता (सामर्थ्य) और उसके विकास की सीमाओं द्वारा सीमित है। हम इन दोनों भागों पर अलग-अलग विचार करना उचित समझते हैं।

---

[1] [1972] 32 ला० ईडी० 2 डी० 15.

सभी बालकों के लिए निःशुल्क शिक्षा का अधिकार, जब तक कि वे 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेते हैं (अनुच्छेद 45) यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भाग 4 के अनेक अनुच्छेदों में से केवल अनुच्छेद 45 में ही समय-सीमा का उल्लेख किया गया है। किसी अन्य उपबन्ध में उसका उल्लेख नहीं है। क्या संविधान के चवालीस वर्ष के पश्चात् भी यह मात्र एक पवित्र इच्छा बन कर रह गया है। क्या राज्य 44 वर्ष के पश्चात् भी इस आधार पर उक्त निदेश का उल्लंघन कर सकता है कि उक्त अनुच्छेद में केवल उसकी व्यवस्था करने का प्रयास करने की ही अपेक्षा की गई है और इस अतिरिक्त आधार पर भी कि उक्त अनुच्छेद, अनुच्छेद 37 में की गई घोषणा के आधार पर प्रवर्तनीय नहीं है। क्या 44 वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात्, जो अनुच्छेद 35 में नियत अवधि की चौगुनी से भी अधिक अवधि है, उक्त अनुच्छेद द्वारा सर्जित बाध्यता प्रवर्तनीय अधिकार के रूप में संपरिवर्तित नहीं हो जाती है। इस संदर्भ में हम यह कहने के लिए विवश हो गए हैं कि भारत में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों को उपलब्ध निधियों का आबंटन संविधान द्वारा उपदर्शित प्राथमिकताओं का अपवर्तन प्रकट करता है। संविधान द्वारा यह अनुध्यात किया गया था कि अनुच्छेद 45 में उपवर्णित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राज्य द्वारा हंगामी कार्यक्रम आरम्भ किया जाएगा। यहां यह अवेक्षा करना सुसंगत होगा कि अनुच्छेद 45 में उसकी आर्थिक क्षमता (सामर्थ्य) और विकास की परिसीमाओं का उल्लेख नहीं किया गया है, जैसा कि अनुच्छेद 41 में किया गया है, जिसमें अन्य चीजों के साथ-साथ, शिक्षा के अधिकार का भी उल्लेख किया गया है। वस्तुतः जो कुछ (घटित) हुआ है वह यह है कि प्राथमिक शिक्षा की तुलना में और उसकी कीमत पर उच्चतर शिक्षा की दिशा में अधिक धन खर्च किया गया है और अधिक ध्यान दिया गया है। (प्राथमिक शिक्षा से हमारा अभिप्राय उस शिक्षा से है, जो कोई सामान्य बालक 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक, प्राप्त करता है)। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्र और अनुच्छेद 46 में निर्दिष्ट समाज के दुर्बल वर्ग भी अत्यधिक उपेक्षित हैं। हम यह बात स्पष्ट कर दे रहे हैं कि हम सरकार के लिए प्राथमिकताएं अधिकथित करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं—हम केवल उस सांविधानिक स्कीम पर ही बल दे रहे हैं, जो अनुच्छेद 45, 46 और 41 द्वारा प्रकट की गई है। निश्चय ही, इन सांविधानिक उपबंधों में निहित प्रज्ञा प्रश्नातीत है। प्राथमिकताओं के इस अपवर्तन की शिक्षाविदों और अर्थ-शास्त्रियों, दोनों ही, द्वारा प्रतिकूल रूप से समीक्षा की गई है।

प्रसिद्ध अर्थ शास्त्री और समाज शास्त्री, गुन्नार मिर्डाल ने, जो दक्षिण एशिया पर अधिकारी लेखक हैं, अपनी पुस्तक "एशियन ड्रामा" (संक्षिप्त संस्करण—1972 में प्रकाशित), (पृष्ठ 335) में ये प्रतिबोधी मताभिव्यक्तियां की हैं:—

> "किंतु एक अन्य और अधिक विधिमान्य आलोचना भी है। यद्यपि घोषित प्रयोजन प्राथमिक शिक्षा में वृद्धि को प्राथमिकता देना था, जिससे कि लोगों में साक्षरता की दर बढ़ाई जा सके, तथापि वस्तुतः जो बात (घटित) हुई है, वह यह है कि माध्यमिक शिक्षा काफी तेजी से बढ़ रही है और तृतीय स्तर की शिक्षा और भी अधिक तेजी से बढ़ी है। इस बात की अच्छी-खासी सामान्य प्रवृत्ति है कि वृद्धिगत प्राथमिक शिक्षा के योजनाबद्ध लक्ष्य प्राप्त न किए जा सके, जब कि लक्ष्यों को सीमा से अधिक तक प्राप्त कर लिया गया था, कभी-कभी तो सारभूत रूप से भी, जहां तक माध्यमिक, और विशेष रूप से तृतीय स्तर, की शिक्षा में वृद्धि का संबंध है। यह सब इस तथ्य के बावजूद हुआ है कि माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा की तुलना में 3 से 5 गुनी तक अधिक खर्चीली (प्रतीत होती है) और तृतीय स्तर पर शिक्षा, माध्यमिक स्तर की तुलना में पांच गुनी से 7 गुनी तक अधिक खर्चीली प्रतीत होती है।
>
> यहां हम जिस चीज को काम करते हुए देख रहे हैं, वह उच्चतर स्तरों पर अभिभावकों और शिष्यों की ओर से दबाव के प्रभाव के अधीन योजनाबद्ध लक्ष्यों से विकास की विकृति है, जो सर्वत्र राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हैं। इससे भी अधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि योजना के उद्देश्यों के दृष्टिकोण से विकृति की यह प्रकृति निर्धनतम देशों, अर्थात्, पाकिस्तान, भारत, बर्मा और इंडोनेशिया में अधिक स्पष्ट है, जहां प्राथमिक विद्यालयों में बहुत थोड़े बच्चों के साथ ही शुरुआत की गई थी और इसलिए जो प्राथमिक शिक्षा को उच्चतम प्राथमिकता देने के कार्यक्रम कार्यान्वित करने के लिए सर्वाधिक सशक्त कारण होने चाहिए थे। सामान्यतः निर्धन देश ही, सापेक्ष रूप में भी प्राथमिक शिक्षा पर अल्पतम व्यय कर रहे हैं और माध्यमिक तथा तृतीय स्तर की शिक्षा के पक्ष में योजनाबद्ध लक्ष्यों से अधिकतम विकृतियां होने दे रहे हैं।"

अपनी अन्य पुस्तक " चैलेंज आफ वर्ल्ड पावर्टी" (1970 में प्रकाशित), में उन्होंने अध्याय 6 में "शिक्षा"—इस देश में प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा के कारण और परिणाम—का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उन्होंने श्री जे॰ पी॰ नायक (प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री, जिनकी शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, 1966 अब भी भारत में शिक्षा के दृश्यपटल का सर्वाधिक प्रामाणिक अध्ययन मानी जाती है) को इस प्रकार कहते हुए उद्धृत किया है—शैक्षिक विकास . . . . . विपन्न लोगों की तुलना में सम्पन्न लोगों को अधिक फायदा पहुंचा रहा है। यह सामाजिक न्याय और स्वयं योजना की अस्वीकृति है—और हमारे संविधान में सामाजिक न्याय [उद्देशिका और अनुच्छेद 38(1)] का बार-बार उल्लेख किया है। काफी बाद में, वर्ष 1985 में शिक्षा मंत्रालय ने अपने प्रकाशन "शिक्षा की चुनौती—एक नीतिगत परिप्रेक्ष्य" के पैरा 3.74 में यह कहा था:—

> "3.74. प्राथमिक शिक्षा के सामान्यीकरण से संबंधित सांविधानिक आदेश को देखते हुए, यह आशा की जाती थी कि इस क्षेत्र के अंश को आरोप से संरक्षण प्रदान किया जाएगा। तथापि, तथ्य विपरीत दिशा की ओर इंगित करते हैं। प्रथम योजना में 56 प्रतिशत के अंश से घटकर द्वितीय योजना में 35 प्रतिशत अंश रह गया, तृतीय योजना में घटकर 34 प्रतिशत अंश रह गया और चतुर्थ योजना में घट कर 30 प्रतिशत अंश रह गया। केवल पांचवीं योजना में ही उसमें पुनः वृद्धि आरम्भ हुई, जब वह 32 प्रतिशत के स्तर तक पहुंच गया, छठी योजना में बढ़ कर 36 प्रतिशत हो गया, जो प्रथम योजना स्तर से फिर भी

20 प्रतिशत नीचे था। दूसरी ओर, प्रथम और छठी पंचवर्षीय योजनाओं के बीच विश्वविद्यालय का अंश 9 प्रतिशत से बढ़ कर 16 प्रतिशत हो गया।"

जो भी हो, हमें यह कहना ही होगा कि कम से कम इस समय राज्य को अनुच्छेद 45 के समादेश का सम्मान करना ही चाहिए। कम से कम अब तो उसे वास्तविकता का रूप दिया ही जाना चाहिए। वस्तुतः "राष्ट्रीय शिक्षा नीति—1986" में यह कहा गया है कि अनुच्छेद 45 में दिया गया वचन का इस शताब्दी के अंत तक पालन किया ही जाना चाहिए। बहरहाल, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि बालक (नागरिक) को 14 वर्ष की आयु तक निःशुल्क शिक्षा का मूल अधिकार प्राप्त है।

146. किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस बाध्यता का केवल राज्य विद्यालयों के माध्यम से ही निर्वहन किया जा सकता है। ऐसा स्वैच्छिक—गैर-सरकारी संगठनों को अनुज्ञा, मान्यता और सहायता देकर भी किया जा सकता है, जो बालकों को निःशुल्क शिक्षा देने के लिए तैयार हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि गैर-सहायताप्राप्त प्राइवेट विद्यालय चालू नहीं रह सकते हैं। वस्तुतः वे भी इस संबंध में भूमिका निभा सकते हैं। वे जनसंख्या के उस भाग की मांग को पूरा करते हैं, जो (भाग) अपने बालकों को राज्य द्वारा चलाए जाने वाले विद्यालयों में शिक्षा नहीं दिलाना चाहते। उन्हें अनिवार्यतः छात्रों से फीस प्रभारित करनी होती है। तथापि, इस निर्णय में हम ऐसे विद्यालयों या तत्प्रयोजनार्थ अन्य प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं के बारे में कुछ नहीं कहना चाहते हैं, सिवाय वृत्तिक महाविद्यालयों के। वस्तुतः यह विचार-विमर्श ऊपरनिर्दिष्ट **मोहिनी जैन** वाले मामले में किए गए विनिश्चय में प्रतिपादित सिद्धांतों और इन रिट याचिकाओं में उक्त सिद्धांतों के विरुद्ध दी गई चुनौती के कारण आवश्यक हुआ है।

147. इस प्रक्रम पर भारत संघ द्वारा फाइल किए गए अतिरिक्त शपथपत्र के प्रतिनिर्देश करना उचित होगा। इस शपथपत्र में प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति उपवर्णित की गई है। (प्रारम्भिक प्रक्रम से अभिप्रेत है कक्षा 1 से 5 तक का प्रक्रम)। (उच्चतर प्रारम्भिक प्रक्रम से अभिप्रेत है कक्षा छठी से आठवीं तक प्रक्रम)। विद्यालयों और उनमें प्रवेश की संख्या की प्रविष्टियां उपवर्णित करने के पश्चात् पैरा 3 में यह कहा गया है कि इस वृद्धि से संसार की बृहत्तम पद्धतियों में से एक की भारतीय शिक्षा-पद्धति में व्यवस्था की गई है, जिसके कारण देश की जनसंख्या के लगभग 94 प्रतिशत भाग को अंतर्विष्ट करते हुए, 8.26 लाख घरों को एक किलोमीटर की दूरी के अंदर प्राथमिक विद्यालयों की व्यवस्था की गई है। 1980 के दशक में प्रवेश में वृद्धि से ऐसी वृद्धि दर्शित होती है, जिससे प्राथमिक प्रारम्भिक प्रक्रम पर प्रवेश की दरें 100 प्रतिशत के निकट आ गई। पुनः पैरा 4 में "निःशुल्क शिक्षा" उप-शीर्षक के अधीन निम्नलिखित कथन किया गया है:—

"4. प्रवेश में वृद्धि करने और यू॰ ई॰ ई॰ के लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयास में, सभी राज्य सरकारों ने सरकारी विद्यालयों में ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) समाप्त कर दिया है और स्थानीय निकायों द्वारा चलाए जाने वाले विद्यालयों और प्राइवेट सहायताप्राप्त संस्थाओं में ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) इन राज्यों में अधिकांशतः प्रभारित नहीं की जाती है; तथापि प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त विद्यालयों में, जो देश के कुल प्राथमिक विद्यालयों का 3.7 प्रतिशत गठित करते हैं, कुछ फीस प्रभारित की जाती है। इस प्रकार, कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वस्तुतः सभी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर तक शिक्षा निःशुल्क है। पाठ्य-पुस्तकों, वर्दी, विद्यालय बैग, परिवहन आदि जैसे शिक्षा के अन्य व्यय राज्यों द्वारा वहन किए जाते हैं, सिवाय कुछ थोड़े से मामलों में के, और निर्धन कुटुम्बों के बालकों या अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के बालकों को प्रोत्साहन दिया जाता है। इस बात का कि राज्य सरकारें इस अतिरिक्त व्यय को वहन करने के लिए क्यों समर्थ नहीं हैं, कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षा पर 96 प्रतिशत व्यय शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ के वेतन के संदाय पर किया जाता है।"

शपथपत्र का पैरा 5 "अनिवार्य शिक्षा" के संबंध में है। वह इस प्रकार है:—

"5. 14 राज्यों और 4 संघ राज्य क्षेत्रों ने शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए विधान अधिनियमित किया है किंतु उन सामाजिक—आर्थिक बाध्यताओं ने, जो बालकों को विद्यालयों से दूर रखती हैं, उन्हें नियम और विनियम विहित करने से निर्बन्धित किया है, जिनके द्वारा उक्त उपबंधों का पृष्ठांकन किया जा सकता है।"

प्रतिशपथपत्र में "आपरेशन ब्लेकबोर्ड" सहित, राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसरण में केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा उठाए गए कदमों और प्राथमिक शिक्षा में वृद्धि में उसके योगदान का भी उल्लेख किया गया है। वस्तुतः इन तथ्यों की अवेक्षा संतोष प्रदान करती है यद्यपि शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए अभी भी काफी कुछ किया जाना शेष रहता है।

आगे बढ़ने से पूर्व, हम यह कहना ठीक समझते हैं:—हम इस बात से अवगत हैं कि शिक्षा, प्रतिरक्षा के पश्चात् बजटगत व्यय का द्वितीय उच्चतम क्षेत्र (सैक्टर) है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 3 प्रतिशत से भी अधिक भाग का शिक्षा पर व्यय किया जाता है, जैसाकि "शिक्षा की चुनौती" के पैरा 2.31 में उपदर्शित किया गया है। किंतु इसी प्रकाशन में यह भी कहा गया है कि "अनेक देशों की तुलना में भारत सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात में शिक्षा पर बहुत कम व्यय करता है" और उसमें आगे यह भी कहा गया है—"इस तथ्य के बावजूद कि शैक्षिक व्यय, व्यय की उच्चतम मंद अब भी बना हुआ है, जो केवल प्रतिरक्षा के व्यय से ही कम है, शैक्षिक आवश्यकताओं के लिए संसाधन अंतराल बड़ी

समस्याओं में से एक है। चालू व्यय का अधिकांश भाग केवल वेतन संदाय के रूप में है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अतिरिक्त पूंजी व्यय अध्यापक-उत्पादकता में सारभूत रूप से वृद्धि करेगा, क्योंकि अन्य शीर्षों पर व्यय के अभाव में स्टाफ का उपयोग भी निम्न स्तर पर रहता है"। हम यह महसूस करते हैं कि अंततः यह संसाधनों का प्रश्न है और संसाधनों के मामले में (हिसाब से) यह देश अच्छी स्थिति में नहीं है। हम केवल यही कह रहे हैं कि उपलब्ध संसाधनों को आबंटित करते समय, अनुच्छेद 45 और 46 में संविधान-निर्माताओं के बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। ऐसा नहीं है कि हम उच्चतर शिक्षा के महत्व से अवगत नहीं हैं। कदाचित् जिस चीज की आवश्यकता है, वह है शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों के बीच समुचित संतुलन का कायम रखा जाना।

बालक/नागरिक के 14 वर्ष की आयु पूरी करने के पश्चात् शिक्षा का अधिकार

148. शिक्षा के अधिकार से यह भी अभिप्रेत है कि नागरिक को राज्य से, उसकी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की परिसीमाओं के अंदर उसे शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था करने की अपेक्षा करने का अधिकार प्राप्त है। ऐसा कह कर, हम अनुच्छेद 41 को भाग 4 से भाग 3 के लिए अंतरित नहीं कर रहे हैं—हम केवल अनुच्छेद 21 से उद्भूत होने वाले शिक्षा के अधिकार की अंतर्वस्तु को स्पष्ट करने के लिए ही अनुच्छेद 41 का अवलंब ले रहे हैं। हम यह विश्वास नहीं कर सकते हैं कि कोई राज्य यह कहेगा कि उसे अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की परिसीमाओं के अंतर्गत रहते हुए भी, अपने लोगों को शिक्षा की व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है। यह कहना अनावश्यक है कि आर्थिक सामर्थ्य की परिसीमाएं, सामान्यतः, राज्य के आत्मपरक समाधान के अंतर्गत आने वाले विषय हैं।

149. उपर्युक्त प्रतिपादना के प्रकाश में (को देखते हुए), याचियों के विद्वान, काउंसेल द्वारा व्यक्त की गई यह आशंका निराधार मानी जानी चाहिए कि अनुच्छेद 21 में शिक्षा के अधिकार को पढ़ने से यह न्यायालय इस देश के प्रत्येक नागरिक को ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए, जैसी वह चाहता है, राज्य को बाध्य करने हेतु न्यायालय का अवलंब लेने के लिए समर्थ बनाएगा। निःशुल्क शिक्षा का अधिकार केवल बालकों को ही उपलब्ध है, जब तक कि वे 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेते हैं। तत्पश्चात् राज्य की शिक्षा की व्यवस्था करने की बाध्यता उसकी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की परिसीमाओं के अध्यधीन है। वास्तव में, हम कोई नई चीज नहीं कह रहे हैं। मामले के इस पहलू पर **फ्रांसिस सी० मुल्लिन** बनाम **प्रशासक, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा पहले ही बल दिया जा चुका है। अनुच्छेद 21 के अधीन गारण्टीकृत अधिकार की परिधि की व्याख्या करते हुए, इस न्यायालय ने यह कहा है:—

> "किंतु इस संबंध में जो प्रश्न उद्भूत होता है वह यह है कि क्या जीवन का अधिकार शरीर के अंग या क्षमता के संरक्षण तक ही सीमित है या वह और भी आगे जाता है और अपनी परिधि में उससे भी अधिक, किसी और चीज को भी सम्मिलित करता है। हम समझते हैं कि जीवन के अधिकार के अंतर्गत मानव-गरिमा के साथ जीवन-यापन करने और उससे संलग्न सभी बातों का अधिकार भी आता है, अर्थात् जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं, जैसे कि पर्याप्त पोषण, वस्त्र और आवास तथा पढ़ने-लिखने और विभिन्न रूपों में स्वयं को व्यक्त करने, स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करने और अपने साथियों के साथ मिलने-जुलने की सुविधाएं। निस्संदेह, इस अधिकार के संघटक तत्वों का परिमाण और अंतर्वस्तु देश के आर्थिक विकास के परिमाण पर निर्भर करेगा, किंतु मामले को किसी भी दृष्टि से देखा जाए, उसके अंतर्गत जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं का अधिकार और ऐसे कृत्य और कार्यकलाप करने का अधिकार भी आना चाहिए, जो मनुष्य की न्यूनतम अभिव्यक्ति गठित करते हैं।"

150. यहां हम यह भी जोड़ना उचित समझते हैं कि केवल इस कारण कि हमने अनुच्छेद 21 में सन्निहित शिक्षा के अधिकार के प्राचलों (पैरामीटरों) का पता लगाने के लिए नीति के निदेशक तत्वों में से कुछ का अवलंब लिया है, स्वतः यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि भाग 4 में निर्दिष्ट प्रत्येक बाध्यता स्वतः अनुच्छेद 21 की परिधि के अंतर्गत आ जाती है। हम, उसके अंतर्निहित आधारभूत महत्व के कारण, जीवन के अधिकार में शिक्षा के अधिकार को विवक्षित मान चुके हैं। वस्तुतः हमने केवल उक्त अधिकार के प्राचलों को अवधारित करने के लिए ही अनुच्छेद 41, 45 और 46 के प्रतिनिर्देश किया है।

भाग 3

प्रश्न सं० 2 और 3

151. प्रश्न सं० 2 और 3 पर एक साथ विचार करना सुविधाजनक होगा। याचियों के विद्वान काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों को, मोटे रूप में, निम्नलिखित शब्दों में सार-संक्षिप्ति दी जा सकती है।

> (क) राज्य को शिक्षा प्रदान करने के विषय में कोई एकाधिकार प्राप्त नहीं है। प्रत्येक नागरिक को संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) द्वारा उसे प्रदत्त अधिकार के भाग के रूप में शिक्षा संस्था की स्थापना करने का मूल अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार लाभ हेतु के साथ, अर्थात् कारबार के रूप में भी शिक्षा संस्था की स्थापना तक भी

---

[1] [1981] 4 उम० नि० प० 1133=[1981] 2 एस० सी० आर० 516.

विस्तारित है। निस्संदेह, उक्त अधिकार ऐसा युक्तिसंगत निर्बन्धनों के अधीन है, जो अनुच्छेद 19 के खण्ड (6) के अंतर्गत विधि द्वारा उस पर अधिरोपित किए जाएं। उक्त निर्बन्धनों के अभाव में, उक्त अधिकार आत्यंतिक (पूर्ण) है।

(ख) दोष, व्यक्तियों और प्राइवेट निकायों द्वारा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना में नहीं है, बल्कि अनावश्यक राज्य-नियंत्रण में है। मांग और पूर्ति की विधि, अर्थात् बाजार—बल को स्वछन्द (मुक्त) रूप से काम करने देना चाहिए। चूंकि प्रवेश चाहने वाले व्यक्तियों की संख्या विद्यमान संस्थाओं की तुलना में कहीं अधिक है, इसीलिए अनेक बुराइयां, जिनके बारे में शिकायत की गई है, पैदा हो गई हैं।

(ग) शिक्षा संस्था की स्थापना किसी अन्य प्रयास, अर्थात् कोई कारबार या उद्योग आरम्भ करने, से भिन्न प्रयास नहीं है। यह बात तात्विक नहीं है कि संस्था लाभ हेतु के साथ स्थापित की गई है या उसके बिना। वास्तव में, केवल तभी, जब लाभ हेतु होता है, साधन-सम्पन्न व्यक्ति अधिकाधिक विद्यालय और महाविद्यालय खोलने के लिए आगे आएंगे। आज ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं, जो दान या परोपकार के रूप में ऐसी संस्थाओं की स्थापना करने के लिए बड़ी-बड़ी निधि दान में देने के लिए तैयार हों।

(घ) यदि किसी कारणवश यह मान भी लिया जाता है कि व्यक्ति को कारबार-उद्यम (उपक्रम) के रूप में शिक्षा संस्था स्थापित करने का कोई अधिकार नहीं है, तब भी कम से कम उसे स्ववित्तपोषित शिक्षा संस्था स्थापित करने का अधिकार तो है। ऐसी संस्था को व्ययाधारित (खर्च पर आधारित) शिक्षा प्रदान करने वाली संस्था के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी व्यक्ति को इच्छुक लोगों से रकमें संगृहीत करने और यथास्थिति, ऐसे व्यक्तियों या उनके बालकों को शिक्षा देने के लिए संस्था की स्थापना करने का अधिकार प्राप्त है। स्थापित संस्था में भी वह फीस, जो छात्रों से संगृहीत की जा सकती है, ऐसी होनी चाहिए, जो न केवल संस्था को चलाने के व्यय को पूरा कर सके, बल्कि उसके सुधार, विस्तार, विविधीकरण और विकास के खर्च को भी पूरा करने के लिए पर्याप्त हो। ऐसी संस्थाओं में, प्रभारित की जाने वाली फीस की मात्रा संबंधित संस्थाओं पर छोड़ दी जानी चाहिए। सरकार को इस विषय में कुछ भी नहीं कहने का अधिकार नहीं होना चाहिए। जहां तक न्यायालय का संबंध है, वस्तुस्थिति को देखते हुए, यह सम्भव नहीं है कि न्यायालय इस विवाद्यक पर विचार करे। प्रत्येक शिक्षा संस्था की आवश्यकताएं भिन्न (अलग-अलग) हो सकती हैं। दी गई शिक्षा का स्तर और उपबंधित सुविधाएं अलग-अलग संस्थाओं में अलग-अलग हो सकती हैं। ऐसा हो सकता है कि सरकार या न्यायालय इस बात का आग्रह करे कि ऐसी संस्था चलाने की शर्त के रूप में, पूर्णतः योग्यता के आधार पर छात्रों को युक्तियुक्त संख्या में स्थान आबंटित किए जाने चाहिएं, जिनसे केवल ऐसी फीस का संदाय करने के लिए कहा जाएगा, जो वैसी ही सरकारी संस्थाओं में प्रभारित की जाती है। यदि ऐसा किया जाता है—जिस पर याचियों को कोई आपत्ति नहीं है—तो उससे न केवल उन लोगों की शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति होगी, जिनकी संदाय करने की क्षमता है, बल्कि उससे अन्य योग्य छात्रों की आवश्यकताओं की भी पूर्ति होगी, जो सरकारी संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त करने में समर्थ नहीं हैं और उस फीस का संदाय करने की भी स्थिति में नहीं हैं, जो सामान्यतः ऐसी प्राइवेट संस्थाओं में प्रभारित की जाती है। यह दर्शित करने के लिए हमारे समक्ष अनेक तथ्य और आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं कि प्रत्येक राज्य में ये प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं किस प्रकार सरकार के नाम-निर्देशितियों को अधिक संख्या में "मुक्त स्थानों" की व्यवस्था कर रही है। यह उपदर्शित किया गया है कि इन सभी छात्रों को अपनी पंसद के पाठ्यक्रम में अध्ययन करने का अवसर नहीं मिलता, यदि ऐसी प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं नहीं होतीं।

(ङ) ऊपरनिर्दिष्ट **मोहिनी जैन** वाले मामले में किया गया विनिश्चय उपर्युक्त स्थिति में इस अर्थ में सही नहीं था कि उसमें यह कहा गया है कि सरकार द्वारा अपने महाविद्यालयों में प्रभारित फीस से अधिक किसी रकम के प्रभारित किए जाने को, चाहे उसे किसी नाम से क्यों न पुकारा जाए, कैपिटेशन-फीस के रूप में माना जाना चाहिए। ऐसा कहने का अर्थ एक असम्भव शर्त को अधिरोपित करना है। यदि प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं केवल उसी फीस को प्रभारित करने के लिए बाध्य की जाती हैं, जो सरकारी संस्थाओं में प्रभारित की जाती हैं, तो उनका अस्तित्व में रहना सम्भव नहीं होगा। इंजीनियरी या चिकित्सा स्नातक को शिक्षा प्रदान करने का व्यय बहुत ऊंचा होता है। वह संपूर्ण व्यय सरकारी महाविद्यालयों में राज्य द्वारा वहन किया जाता है। किंतु राज्य प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को सहायता नहीं देता है। प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को अपने वित्त की स्वयं व्यवस्था करनी होती है और वह वित्त केवल छात्रों से ही प्राप्त हो सकता है।

(च) यदि शिक्षा संस्था स्थापित करने का अधिकार अनुच्छेद 19(1) (छ) के अंतर्गत व्यापार या कारबार नहीं भी है, तब भी वह उक्त खण्ड के अर्थान्तर्गत "उपजीविका"

तो निश्चित रूप से है। वस्तुतः अनुच्छेद 19(1) (छ) में "वृति, उपजीविका, व्यापार या कारबार" पदों का प्रयोग मानव—कार्यकलाप के संपूर्ण क्षेत्र को सम्मिलित करने के लिए आशयित था। ऐसी स्थिति में, याचियों के लिए यह उपदर्शित करना आवश्यक नहीं है कि उनका कार्यकलाप किस विशेष पद से संबंध रखता है। यह कहना पर्याप्त है कि याचियों को प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं—किसी भी दशा में स्ववित्तपोषित/व्यय-आधारित प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं—स्थापित करने का अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार को विधि द्वारा केवल अनुच्छेद 19 के खण्ड (छ) द्वारा अनुध्यात रीति में ही निर्बन्धित किया जा सकता है।

(छ) शिक्षा संस्था स्थापित और प्रशासित करने का अधिकार (धार्मिक या भाषाई बहुसंख्यक समुदाय के सदस्य द्वारा) अनुच्छेद 30 से, आवश्यक विवक्षा द्वारा, उद्भूत होता है। संविधान का, उक्त अधिकार को केवल अल्पसंख्यकों तक सीमित करने और बहुसंख्यक समुदायों को उससे वंचित करने का आशय नहीं हो सकता था।

(ज) सरकार या विश्वविद्यालय इस बात का आग्रह नहीं कर सकती या सकता है या इस बात को मान्यता/संबन्धन की शर्त के रूप में अधिरोपित नहीं कर सकती/सकता है कि प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को अनन्यतः योग्यता के आधार पर ही प्रवेश देना चाहिए। इस न्यायालय द्वारा इस तथ्य को भली-भांति मान्यता प्रदान की गई है कि ऐसा व्यक्ति भी जो शिक्षा के लिए संदाय करता है, उस रीति को भी नियत करने के लिए हकदार है, जिसमें वह छात्रों को प्रवेश देगा। इस बात का कोई कारण नहीं है कि ऐसे अधिकार को प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं के मामले में मान्यता क्यों नहीं प्रदान की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, अनेक प्रकार की प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं हो सकती हैं; उन्हें कतिपय विनिर्दिष्ट प्रयोजनों को पूरा करने के लिए स्थापित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, किसी विशेष क्षेत्र या जिले की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चिकित्सा या इंजीनियरी महाविद्यालय की स्थापना की जा सकती है। इसी प्रकार, किसी विशेष समुदाय के सदस्यों द्वारा अपने बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए, किसी अन्य शिक्षा संस्था की स्थापना की जा सकती है। यह उपदर्शित किया गया है कि कर्नाटक राज्य में गुलबर्गा मेडिकल कालेज की, चिकित्सा के क्षेत्र में उन छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्थापना की गई है, जो गुलबर्गा, रायचूर और बीदर जिलों के हैं, जो जिले पहले निजाम के राज्यक्षेत्र के अंतर्गत थे और जो राज्यों का पुनर्गठन किए जाने पर कर्नाटक राज्य में सम्मिलित किए गए। इसी प्रकार यह निवेदन किया गया है कि कर्नाटक में कैम्पे गौडा मेडिकल कालेज की स्थापना वोक्कलिगा समुदाय के सदस्यों द्वारा की गई है। उन की इच्छाओं और उद्देश्यों का सम्मान किया जाना है। ऐसी भी कोई संस्था हो सकती है, जो पूर्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किसी व्यक्ति द्वारा बड़े दान की सहायता से स्थापित की गई हो, जैसे कि तमिलनाडु में अन्नामल्लाई विश्वविद्यालय। यदि ऐसा विश्वविद्यालय यह शर्त अधिरोपित करता है कि संस्थापक के कुटुम्ब के सदस्यों या उनके नामनिर्देशितियों को, एक निश्चित प्रतिशतता की सीमा तक प्रतिवर्ष प्रवेश दिया जाएगा, तो उसे दोषपूर्ण नहीं माना जा सकता है।

(झ) मात्र मान्यता और/या सम्बन्धन के आधार पर, ये प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य के परिकरण का रूप धारण नहीं कर लेती हैं। 'राज्य कार्यवाही' की संकल्पना इन महाविद्यालयों को इस अर्थ में विस्तारित नहीं की जा सकती है कि उन्हें भाग 3 के अनुशासन के अधीन लाया जा सके। यदि उक्त संस्था को राज्य से आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से कोई सहायता मिल रही है, तो यह भिन्न बात होगी। ऐसी स्थिति में अनुच्छेद 29(2) का समादेश प्रभावी होता है किंतु वह भी संस्था को अनन्यतः योग्यता के आधार पर छात्रों को प्रवेश देने के लिए बाध्य नहीं करता है—बल्कि केवल उसमें वर्णित किसी आधार पर किसी व्यक्ति को प्रवेश देने से इनकार न करने के लिए।

152. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल और भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् तथा अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् के विद्वान् काउंसेलों ने यह दलील दी है किः—

(क) अनादि काल से ही इस देश में शिक्षा देने का कार्य सदा धार्मिक अधिकार माना गया है। हिन्दू धर्म और इस्लाम, दोनों ही, में उसे इस प्रकार माना गया है। उसे पूर्त उद्देश्य के रूप में भी मान्यता प्रदान की गई है। किंतु कभी भी उसे व्यापार या कारबार नहीं माना गया है। यह सेवा कार्य है, न कि व्यापार। इस देश में शिक्षा के वाणिज्यीकरण को सदा अननुगृह (अननुमोदन) की दृष्टि से देखा गया है। काफी पहले वर्ष 1956 में ही, संसद् ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम अधिनियमित करके अपना आशय व्यक्त कर दिया था, जिसमें शिक्षा के वाणिज्यीकरण के निवारण को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के एक कर्तव्य के रूप में विनिर्दिष्ट किया गया था। उसके पश्चात् संसद् और राज्य विधानमण्डलों द्वारा की गई अनेक अधिनियमितियों द्वारा यही आशय व्यक्त किया गया है।

(ख) शिक्षा प्रदान करने का कार्य राज्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृत्य है। राज्य द्वारा इस कर्तव्य का निर्वहन प्रत्यक्ष रूप से या प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं के माध्यम (परिकरण) द्वारा किया जा सकता है। किंतु जब राज्य किसी प्राइवेट निकाय या व्यक्ति को उक्त कृत्य का निर्वहन करने के प्रत्यक्ष रूप से

या प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं के माध्यम (परिकरण) द्वारा किया जा सकता है। किंतु जब राज्य किसी प्राइवेट निकाय या व्यक्ति को उक्त कृत्य का निर्वहन करने के प्रत्यक्ष रूप से या प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं के माध्यम (परिकरण) द्वारा किया जा सकता है। किंतु जब राज्य किसी प्राइवेट निकाय या व्यक्ति को उक्त कृत्य का निर्वहन करने के लिए अनुज्ञा देता है, तो यह सुनिश्चित करना उसका कर्तव्य है कि कोई भी व्यक्ति अधिक योग्य अभ्यर्थी का अहित करते हुए अपनी आर्थिक शक्ति के कारण प्रवेश या फायदा प्राप्त नहीं करता है।

(ग) शिक्षा के व्यय को संगृहीत करने की संकल्पना ही—व्यय-आधारित या स्ववित्तपोषित शिक्षा संस्थाओं की संकल्पना का यही अभिप्राय है—नैतिक रूप से तिरस्करणीय और लोक नीति के विरुद्ध है। कैपिटेशन फीस का केवल इस कारण कैपिटेशन फीस के रूप में रहना समाप्त नहीं हो जाता है कि उसे व्यय—आधारित शिक्षा का नाम दिया जाता है या संबंधित संस्था को स्ववित्तपोषित संस्था का नाम दिया जाता है। यह पद कैपिटेशन फीस संगृहीत करने के लिए, मात्र एक आवरण या बहाना है। यह शोषण ही है, और कुछ नहीं। यह संकल्पना अभिजात वर्ग की संकल्पना है, जो आधारभूत रूप से सांविधानिक दर्शन के विरुद्ध है। ऐसी शिक्षा अनुज्ञात करने से दो वर्ग अस्तित्व में आ जाएंगे। उक्त संकल्पना वर्ग-भेद (पक्षपात) से दूषित है।

(घ) यदि किसी कारण से यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि नागरिक या व्यक्ति को शिक्षा संस्था स्थापित करने का अधिकार प्राप्त है, तो उक्त अधिकार के साथ, यथास्थिति, मान्यता का अधिकार या सम्बन्धन का अधिकार संलग्न नहीं है। इस न्यायालय ने बार-बार यह अभिनिर्धारित किया कि अल्पसंख्यक शिक्षा संस्था को भी मान्यता या सम्बन्धन का कोई मूलभूत अधिकार प्राप्त नहीं है। यदि ऐसा है, तो बहुसंख्यक समुदाय के मामले में या व्यक्तियों या व्यष्टियों के मामले में ऐसे किसी अधिकार को परिकल्पित नहीं किया जा सकता है। जब एक बार यह मान लिया जाता है तब मान्यता/सम्बन्धन प्रदान करने वाले राज्य या विश्वविद्यालय को, ऐसी शर्तों को अधिरोपित करने का अधिकार प्राप्त है, जैसी वह ऋजुता, योग्यता, शिक्षा के मानक आदि के हित में उचित समझे। संक्षेप में, सरकार या विश्वविद्यालय को मान्यता/सम्बन्धन की शर्त के रूप में यह बात विहित करने का अधिकार प्राप्त है कि छात्रों का प्रवेश, चाहे वह किसी भी प्रवर्ग में क्यों न हो, योग्यता और केवल योग्यता के आधार पर ही होगा। मान्यता/सम्बन्धन अभिप्राप्त करने वाली संस्थाएं ऐसी शर्त द्वारा आबद्ध होंगी और उससे किसी प्रकार का विचलन मान्यता/सम्बन्धन को प्रत्याहृत किए जाने के लिए दायी बना देता है।

(ङ) यदि सरकार या विश्वविद्यालय अभिव्यक्त रूप से ऐसी शर्त अधिरोपित नहीं भी करता है, तब भी ऐसी शर्त इस तथ्य के आधार पर विवक्षित है कि ऐसी स्थिति में प्राइवेट शिक्षा संस्था का कार्यकलाप "राज्य कार्यवाही" के रूप में वर्णित किए जाने के लिए दायी होगा। यह तथ्य कि ये संस्थाएं एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक कृत्य का निर्वहन करती हैं, और यह तथ्य कि उनका कार्यकलाप सरकारी कार्यकलाप से निकटतापूर्वक जुड़ा हुआ है, उनकी कार्यवाही को, "राज्य कार्यवाही" के रूप में विशेषित करता है। कम से कम अध्यपेक्षा यह होगी कि छात्रों के प्रवेश के मामले में और कदाचित् उसके कर्मचारियों की भर्ती और व्यवहार के विषय में भी ऋजुतापूर्वक कार्य किया जाए। ये संस्थाएं, वैसी ही सरकारी संस्थाओं में प्रभारित की जाने वाली फीस से अधिक कोई फीस प्रभारित न करने के लिए भी आबद्ध हैं। यदि उन्हें वित्त की आवश्यकता हो, तो उन्हें दान द्वारा या धार्मिक अथवा पूर्त संगठनों की सहायता से उसे प्राप्त करना चाहिए। वे यह भी नहीं कह सकती हैं कि पहले वे कैपिटेशन-फीस संगृहीत करेंगी और उस धन से वे संस्था की स्थापना करेंगी। अधिक से अधिक, केवल संस्था को चलाने के प्रभार ही छात्रों से वसूल किए जा सकते हैं। उनसे पूंजी व्यय प्रभारित नहीं किया जा सकता।

153. इससे पूर्व कि हम पक्षकारों द्वारा दी गई परस्पर विरोधी दलीलों पर अपना कोई विचार व्यक्त करें, सुसंगत कानूनी उपबंधों की अवेक्षा करना उचित होगा।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम

154. विश्वविद्यालयों में मानकों (स्तरमानों) के समन्वय और अवधारण के लिये तथा उस प्रयोजन हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग स्थापित करने का उपबंध करने के लिये संसद् द्वारा वर्ष 1956 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम अधिनियमित किया गया। अध्याय 3 आयोग की शक्तियों और कृत्यों के संबंध में है। धारा 12 द्वारा आयोग को, विश्वविद्यालय और अन्य संबंधित निकायों से परामर्श करके, ऐसी सभी उपाय करने के लिये सशक्त किया गया है, जिन्हें वह विश्वविद्यालय शिक्षा के संवर्धन और समन्वय के लिये तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षण, परीक्षा और शोध के मानकों को बनाए रखने के लिये ठीक समझे। हमारे प्रयोजन के लिये धारा 12क सुसंगत है। उपधारा (1) के खंड (क) में "सहबद्ध करना" (संबंधन) (एफिलिएशन) पद को परिभाषित किया गया है। वह इस प्रकार है:—

> "उसके व्याकरणिक रूप भेदों सहित, "सहबद्ध करना" के अंतर्गत, किसी महाविद्यालय के संबंध में, किसी विश्वविद्यालय के साथ ऐसे महाविद्यालय के सहयोजन द्वारा ऐसे महाविद्यालय को मान्यता देना और ऐसे महाविद्यालय को विश्वविद्यालयजन्य विशेषाधिकार देना है।"

खंड (ख) में "महाविद्यालय" (कालेज) पद को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :—

> "महाविद्यालय' से कोई ऐसी संस्था, चाहे वह उस नाम से या किसी अन्य नाम से ज्ञात हो, अभिप्रेत है जो किसी विश्वविद्यालय से कोई अर्हता प्राप्त करने के लिये किसी पाठ्यक्रम की व्यवस्था करती है और जिसे ऐसे पाठ्यक्रम की व्यवस्था करने के लिये, ऐसे विश्वविद्यालय के नियमों और विनियमों के अनुसार, सक्षम माना गया है और जो ऐसे

पाठ्यक्रय का अध्ययन करने वाले छात्रों को ऐसी अर्हता के दिये जाने के लिये परीक्षा में बिठाती है।"

उपधारा (2) द्वारा आयोग को, अन्य बातों के साथ-साथ, संघटक और सम्बद्ध महाविद्यालयों में प्रभार्य फीस को विनियमित करने के लिये सशक्त किया गया है, यदि ऐसा उपाय यह सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक पाया जाता है कि कोई भी अभ्यर्थी आर्थिक शक्ति के कारण अध्ययन के ऐसे पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त नहीं करता है, और तद्द्वारा अधिक योग्य अभ्यर्थी को ऐसी पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त करने से निवारित नहीं करता है। यहां उपधारा (2) को समग्र रूप में उपवर्णित करना उचित होगा। वह इस प्रकार है:—

"धारा 12 के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यदि—

(क) किसी विश्वविद्यालय से कोई अर्हता प्राप्त करने के लिये किसी पाठ्यक्रम की प्रकृति को;

(ख) उस प्रकार के क्रियाकलापों को, जिनमें ऐसी अर्हता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के ऐसी अर्हता के आधार पर लगाए जाने की संभावना है;

(ग) ऐसे न्यूनतम स्तरमानों को, जिन्हें ऐसी अर्हता रखने वाला व्यक्ति ऐसे क्रियाकलापों से संबंधित अपने काम में बनाए रखने में समर्थ हो और जहां तक हो सके यह सुनिश्चित करने की पारिणामिक आवश्यकता को कि कोई अभ्यर्थी आर्थिक शक्ति के कारण ऐसे पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त न कर ले और ऐसा करके किसी अधिक प्रतिभाशाली अभ्यर्थी को ऐसे पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त करने से निवारित न कर दे; और

(घ) अन्य सभी सुसंगत बातों को, ध्यान में रखते हुए आयोग का यह समाधान हो जाता है कि लोक हित में ऐसा करना आवश्यक है तो वह संबंधित विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालयों से परामर्श करने के पश्चात्, विनियमों द्वारा, वे विषय जिनकी बाबत फीसें भारित की जा सकती हैं और फीसों का वह मापमान विनिर्दिष्ट कर सकेगा जिसके अनुसार उन विषयों की बाबत ऐसी तारीख से ही जो विनियमों में इस निमित्त विनिर्दिष्ट की जाए, ऐसे पाठ्यक्रम की व्यवस्था करने वाले किसी महाविद्यालय द्वारा किसी छात्र से, या उसके संबंध में, उसके ऐसे पाठ्यक्रम में प्रवेश या उसके अनुसार अध्ययन करने के संबंध में फीसें प्रभारित की जाएंगी :

परन्तु भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों या भिन्न-भिन्न प्रवर्गों के महाविद्यालयों या भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न विषय और फीसों के भिन्न-भिन्न मापमान इस प्रकार विनिर्दिष्ट किए जा सकेंगे।"

उसके पश्चात् उपधारा (3) में यह कहा गया है कि जहां उपधारा (2) में निर्दिष्ट प्रकृति के विनियम बनाए गये हैं, वहां कोई भी महाविद्यालय उस फीस से अधिक फीस उद्गृहीत या प्रभारित नहीं करेगा, जो विनिर्दिष्ट की गई है। उपधारा (4) में किसी महाविद्यालय द्वारा ऐसे विनियमों के उल्लंघन के परिणाम का उपबंध किया गया है। उपधारा (5) में यह कहा गया है कि उल्लंघन का अर्थ असम्बन्धन (सहबद्धता की समाप्ति) भी होगा। धारा 14 में आयोग की सिफारिशों का अनुपालन करने में विश्वविद्यालयों की असफलता के परिणाम विहित किये गये हैं। उनके अन्तर्गत निधियों का विधारित किया जाना भी आता है। धारा 22 की, जो अध्याय 4 में है, उपधारा (1) में यह घोषित किया गया है कि उपाधियां प्रदत्त या अनुदत्त करने के अधिकार का प्रयोग केवल केन्द्रीय अधिनियम, प्रांतीय अधिनियम या राज्य अधिनियम के अधीन या द्वारा स्थापित या निगमित विश्वविद्यालय द्वारा या धारा 3 के अधीन विश्वविद्यालय के रूप में धारणाकृत संस्था या उपाधियां प्रदत्त या अनुदत्त करने के लिये संसद् के अधिनियम द्वारा विशेष रूप से सशक्त संस्था द्वारा ही किया जाएगा। उपधारा (2) में जोर देकर यह घोषित किया गया है कि उपधारा (1) में यथा उपबंधित के सिवाय, कोई भी व्यक्ति या प्राधिकारी कोई उपाधि प्रदत्त या अनुदत्त नहीं करेगा या उपाधि प्रदत्त या अनुदत्त करने के लिये स्वयं को हकदार घोषित नहीं करेगा। उपधारा (3) में "उपाधि" पद को परिभाषित किया गया है। उससे ऐसी कोई उपाधि अभिप्रेत है, जो आयोग द्वारा केन्द्रीय सरकार के पूर्वानुमोदन से राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस संबंध में विनिर्दिष्ट की जाए। धारा 23 द्वारा किसी अधिनियमिति के अधीन स्थापित या निगमित विश्वविद्यालय या धारणाकृत विश्वविद्यालय से भिन्न किसी संस्था के नाम से विश्वविद्यालय शब्द के प्रयोग को प्रतिषिद्ध किया गया है। धारा 24 में धारा 23 और 22 के उल्लंघन के लिये शास्तियों का उपबंध किया गया है। धारा 25 द्वारा केन्द्रीय सरकार को नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है, जबकि धारा 26 द्वारा आयोग को विनियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है।

भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम

155. भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् के पुनर्गठन और भारत के लिये एक आयुर्विज्ञान (चिकित्सीय) रजिस्टर के अनुरक्षण के लिये तथा उससे संबंधित विषयों का उपबंध करने के लिये संसद् द्वारा भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम अधिनियमित किया गया। "मान्यताप्राप्त आयुर्विज्ञान (चिकित्सीय) अर्हता" पद को धारा 2 के खंड (ज) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उससे अनुसूचियों में सम्मिलित कोई भी आयुर्विज्ञान (चिकित्सीय) अर्हता अभिप्रेत है। "अनुमोदित संस्था" पद को खंड (क) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि उससे ऐसा अस्पताल, स्वास्थ्य केन्द्र या विश्वविद्यालय द्वारा ऐसी संस्था के रूप में मान्यताप्राप्त प्रत्येक ऐसी संस्था अभिप्रेत है, जिसमें कोई व्यक्ति, उसे कोई आयुर्विज्ञान (चिकित्सीय) अर्हता प्रदान किये जाने से पूर्व, उसके पाठ्यक्रम द्वारा अपेक्षित प्रशिक्षण, यदि कोई हो, प्राप्त कर सकेगा। धारा 11 में यह घोषित किया गया है कि भारत के किसी विश्वविद्यालय या आयुर्विज्ञान (चिकित्सीय) संस्था द्वारा अनुदत्त आयुर्विज्ञान (चिकित्सीय) अर्हताएं, जो अधिनियम की प्रथम सूची में सम्मिलित हैं, अधिनियम के प्रयोजन के लिये मान्यताप्राप्त आयुर्विज्ञान (चिकित्सीय) अर्हताएं समझी जाएंगी। उसमें किसी विश्वविद्यालय या (आयुर्विज्ञान चिकित्सीय) संस्था के लिये नई या अन्य अर्हताओं को मान्यता प्रदान करने हेतु केन्द्रीय सरकार को आवेदन करने की पद्धति का उपबंध किया गया है। धारा 13 में यह

कहा गया है कि भारत में की आयुर्विज्ञान संस्थाओं द्वारा अनुदत्त आयुर्विज्ञान अर्हताएं भी जो प्रथम अनूसूची में सम्मिलित नहीं हैं किन्तु तृतीय अनुसूची के भाग 1 में सम्मिलित हैं, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिये मान्यताप्राप्त आयुर्विज्ञान अर्हताएं होंगी। धारा 19 में ऐसे मामलों में मान्यता के प्रत्याहरण (वापस ले लिये जाने) का उपबंध किया गया है, जिनमें परिषद् प्रवीणता, ज्ञान या कुशलता के मानकों में कमी (गिरावट) पाती है। धारा 21 में भारतीय चिकित्सक रजिस्टर के रखे जाने का उपबंध किया गया है। धारा 27 में यह कहा गया है कि भारतीय चिकित्सक आयुर्विज्ञान परिषद् रजिस्टर में रजिस्ट्रीकृत (दर्ज) कोई व्यक्ति भारत के किसी भी भाग में चिकित्सा व्यवसायी के रूप में व्यवसाय करने और ऐसे व्यवसाय की बाबत विधि के सम्यक् अनुक्रम में ऐसे किन्ही व्ययों, प्रभारों या फीस को जिनके लिये वह हकदार हो, वसूल करने के लिये हकदार होगा। धारा 32 द्वारा सरकार को नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है जबकि धारा 33 द्वारा परिषद् को नियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है। प्रथम अनुसूची में विश्वविद्यालयों के नाम और उनके द्वारा दी जाने वाली मान्यता प्राप्त आयुर्विज्ञान अर्हताओं का उल्लेख है। तृतीय अनुसूची के भाग 1 द्वारा भी ऐसा किया गया है।

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् अधिनियम, 1987

156. संसद द्वारा यह अधिनियम, सम्पूर्ण देश में तकनीकी शिक्षा पद्धति की समुचित आयोजना और समंवित विकास के उद्देश्य से और ऐसी शिक्षा में गुणात्मक सुधार के संप्रवर्तन के उद्देश्य से और अन्य सहबद्ध विषयों के लिये अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् की स्थापना के लिये अधिनियमित किया गया। अधिनियम की धारा 3 में परिषद् की स्थापना का उपबंध किया गया है, जबकि धारा 10 में परिषद् के कृत्यों को विनिर्दिष्ट किया गया है। सामान्यतः यह निर्देश करने के अतिरिक्त कि परिषद् ऐसे सभी उपाय करेगी, जिन्हें वह तकनीकी शिक्षा के समंवित विकास और मानकों (स्तरमानों) के अनुरक्षण (बनाए रखने) को सुनिश्चित करने के लिये ठीक समझे, अधिनियम द्वारा परिषद् को, अन्य बातों के साथ-साथ, "(ञ) ट्यूशन फीस और अन्य फीस प्रभारित करने के लिये नियम और दिशा-निर्देश नियत करने; (ट) नई तकनीकी संस्थाएं आरम्भ करने और संबंधित अभिकरणों से परामर्श करके नए पाठ्यक्रम या कार्यक्रम आरम्भ करने हेतु अनुमोदन देने के लिये; और (ठ) तकनीकी शिक्षा का वाणिज्यीकरण निवारित करने के लिये सभी आवश्यक उपाय करने के लिये विनिर्दिष्ट रूप सशक्त किया गया है।" यह सच है कि अधिनियम में ऐसा कोई अभिव्यक्त उपबंध नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि कोई भी इंजीनियरी महाविद्यालय या कोई अन्य महाविद्यालय या तकनीकी शिक्षा प्रदान करने वाली कोई भी संस्था परिषद् की अनुज्ञा से ही स्थापित की जाएगी, अन्यथा नहीं। किन्तु ऐसा उस कारण हो सकता है कि ऐसी शक्ति का स्वयं परिषद् द्वारा प्रयोग किये जाना आशयित था, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझती हो। हमारी यह राय है कि धारा 10 द्वारा परिषद् को प्रदत्त व्यापक शक्तियां, जिनमें उपनिर्दिष्ट शक्तियां भी सम्मिलित हैं, उपर्युक्त आशय का आदेश जारी करने के कार्य को विस्तारित होती हैं और उसे ऐसा करने के लिये हकदार बनाती हैं। वह यह भी कह सकती है कि विद्यमान संस्थाओं में भी, कोई नया पाठ्यक्रम, संकाय या कक्षा उसके अनुमोदन से ही आरम्भ की जाएगी, अन्यथा नहीं। वह अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिये विद्यमान संस्थाओं को भी समुचित निदेश दे सकती है। वस्तुतः, परिषद् को प्रदत्त व्यापक कृत्यों के समुचित निर्वहन के लिये ऐसा आदेश आवश्यक हो सकता है।

157. परिषद् की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान काउंसेल यह बात हमारी जानकारी में लाए हैं कि परिषद् ने वचनबंध का एक प्ररूप (प्रो फार्मा) तैयार किया है, जो स्थापित किये जाने के लिये प्रस्थापित किसी संस्था के भारसाधक व्यक्ति द्वारा निष्पादित किया जाना चाहिये, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उल्लेख होना चाहिये कि ऐसी संस्था न केवल परिषद् द्वारा जारी किये गए अनेक आदेशों और अनुदेशों का अनुपालन करेगी बल्कि वह छात्रों/छात्राओं के अभिभावकों से किसी भी रूप में कोई कैपिटेशन फीस प्रभारित नहीं करेगी। प्ररूप में यह भी वर्णित किया गया है कि परिषद् द्वारा जारी किये गये किसी आदेश या निदेश या वचनबंध के किसी निबंधन का अनुपालन न किये जाने की दिशा में परिषद् को समुचित कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त होगा, जिसमें अनुमोदन या मान्यता का वापस लिया जाना भी सम्मिलित है, जिसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय और राज्य सरकारों से वित्तीय अनुदान या सहायता की समाप्ति स्वतः अंतर्वलित है। यह बात भी हमारी जानकारी में लाई गई है कि परिषद् ने, अधिनियम की धारा 23(1) द्वारा उसे प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में तारीख 15 जून, 1992 के जी॰एस॰आर॰ 320 में इंजीनियरी उपाधि (डिग्री) और इंजीनियरी डिप्लोमा पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु दिशा-निर्देश जारी किये हैं (अधिनियम की धारा 23 द्वारा परिषद् को विनियम बनाने की शक्ति प्रदत्त की गई है)।

राज्य अधिनियमितियां

158. जैसा कि इस निर्णय के भाग I में उल्लेख किया जा चुका है, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र राज्यों तथा अभी हाल ही में तमिलनाडु राज्य ने कैपिटल फीस के प्रभारित किये जाने को प्रतिषिद्ध करते हुये, विधान अधिनियमित किया है। हमने आंध्र प्रदेश वाले अधिनियम की उद्देशिका भी उपवर्णित की थी, जो उद्देशिका प्रायः ऐसी प्रत्येक अधिनियमिति में मिलती है। हमने आंध्र प्रदेश शिक्षा अधिनियम, 1982 के प्रति भी निर्देश किया था, जिसमें यह उपबंध किया गया है कि राज्य में कोई भी शिक्षा-संस्थान सक्षम प्राधिकारी की अनुज्ञा से ही स्थापित की जाएगी, अन्यथा नहीं।

भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् (संशोधन) अध्यादेश, 1992

159. अंतिम कानूनी उपबंध, जिसकी अवेक्षा की जानी है, अत्यधिक संगत उपबंध है, अर्थात् भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् (संशोधन) अध्यादेश, 1992 (1992 का अध्यादेश सं॰ 13), जो भारत के राष्ट्रपति द्वारा, तारीख 27 अगस्त, 1992 को जारी किया गया। इस अध्यादेश द्वारा, धारा 33 में संशोधन करने के अतिरिक्त, धारा 10-क से 10-ग जोड़ी गई हैं। धारा 10-क में यह उपबंध किया गया है कि भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुये भी, किसी भी चिकित्सा महाविद्यालय की स्थापना नहीं की जाएगी और न किसी विद्यमान संस्था में कोई नया या उच्चतर पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण आरम्भ किया जाएगा और न उसमें किसी पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण में प्रवेश-क्षमता में ही वृद्धि की जाएगी, सिवाय उक्त धारा के उपबंधों के अनुसार अभिप्राप्त केन्द्रीय सरकार की पूर्वतन अनुज्ञा के। उक्त धारा में आवेदन प्रस्तुत करने की प्रक्रिया और ऐसे विषय, जिनको

केन्द्रीय सरकार उक्त आवेदन पर विचार करते समय, ध्यान में रखेगी, परिषद् से अनिवार्य परामर्श और वह रीति भी विहित की गई, जिसमें आवेदन का निपटारा किया जाएगा। उसमें ऐसे विषयों का भी उपबंध किया गया है, जिन्हें परिषद् को केन्द्रीय सरकार को अपनी सिफारिश भेजते समय, ध्यान में रखना चाहिए। यह कहना पर्याप्त होगा कि ऐसे अनेक मामले, जिन्हें परिषद् और केन्द्रीय सरकार को ध्यान में रखने का निदेश दिया गया है, यह सुनिश्चित करने के लिये आशयित हैं कि उसी चिकित्सीय (आयुर्विज्ञान) शिक्षा प्रदान करने के लिये अनुज्ञात करने से पूर्व, समुचित रूप से साधन-सम्पन्न संस्था अस्तित्व में है। धारा 10-ख में ऐसी संस्थाओं द्वारा दी जाने वाली आयुर्विज्ञान अर्हताओं की मान्यता वापस लिये जाने का उपबंध किया गया है, जो केन्द्रीय सरकार या ऐसी संसथा की जो धारा 10-क में वर्णित किसी शर्त का उल्लंघन करती है, पूर्वतन अनुज्ञा के बिना स्थापित की गई हैं। धारा 10-ग में यह उपबंध किया गया है कि यदि किसी व्यक्ति ने कोई चिकित्सा महाविद्यालय स्थापित किया है या किसी विद्यमान महाविद्यालय में नया या उच्चतर पाठ्यक्रम आरम्भ किया है, तो वह अध्यादेश के आरम्भ की तारीख से एक वर्ष के अंदर धारा 10-क के अनुसार केन्द्रीय सरकार की अनुज्ञा प्राप्त करेगा।

धरातलीय (जमीनी) वास्तविकता

160. इस तथ्य के होते हुए भी कि शिक्षा, प्रतिरक्षा के पश्चात् बजटगत व्यय का द्वितीय उच्चतम क्षेत्र है, शिक्षा पर व्यय, लोगों की आवश्यकताओं को देखते हुए, दुर्भाग्य से बहुत अपर्याप्त है। जहां अनेक अन्य देश अपने सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 6 से 8 प्रतिशत भाग शिक्षा पर व्यय करते हैं, वहीं शिक्षा पर हमारा व्यय सकल राष्ट्रीय उत्पाद का केवल 3 प्रतिशत है। व्यय का 75 से 80 प्रतिशत भाग शिक्षकों और अन्य सम्बद्ध स्टाफ के वेतन का संदाय करने में चला जाता है। इसमें इससे पूर्व निर्दिष्ट "शिक्षा की चुनौती—एक नीतिगत परिप्रेक्ष्य" नामक भारत सरकार के प्रकाशन में ये कथन किए गए हैं। तथापि, समुचित पर्यवेक्षण, आत्मानुशासन और वचनबद्धता के अभाव के कारण अधिकांश सरकारी विद्यालयों और महाविद्यालयों में—सिवाय वृतिक महाविद्यालयों में के—शिक्षा की गुणवत्ता और स्तर बहुत ही दयनीय है। इससे प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को, आवश्यकता की पूर्ति करने के विषय में और विशेष रूप से शिक्षा की गुणवत्ता के विषय में दोनों ही क्षेत्रों में, शून्य को भरने का अवसर प्राप्त हो गया है। चूंकि राज्य अधिक संसाधन लगाने की स्थिति में नहीं है और आवश्यकता लगातार बढ़ रही है, अतः प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं के बिना काम चलाना सम्भव नहीं है। इस संदर्भ में, यह उचित ही नहीं बल्कि आवश्यक है कि इस संबंध में भारत सरकार के दृष्टिकोण की अवेक्षा की जाए। यह इस प्रकार है:—केन्द्रीय सरकार के पास चिकित्सीय या तकनीकी शिक्षा हेतु कोई अतिरिक्त वित्तीय उत्तरदायित्व सम्भालने के लिए संसाधन नहीं हैं; चूंकि वह वर्तमान स्तर से उच्चतर स्तर पर किसी प्राइवेट शिक्षा संस्था की वित्तीय सहायता करने में असमर्थ है, अतः केन्द्रीय सरकार की नीति, स्वीकृत नियमों और लक्ष्यों के अनुरूप, शिक्षा के क्षेत्र में प्राइवेट और स्वैच्छिक प्रयासों को अंतर्वलित करना है; तथापि प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को केवल वही फीस प्रभारित करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है, जो सरकारी संस्थाओं में प्रभारित की जाती है; वर्ष 1986 में केन्द्रीय सरकार ने 'नई शिक्षा नीति' प्रतिपादित की है—उसके अनुसार, "स्तर को बनाए रखने के लिए और अनेक अन्य विधिमान्य कारणों से तकनीकी और वृत्तिक शिक्षा के वाणिज्यीकरण पर रोक लगाई जाएगी। शिक्षा के इस अनुभाग (क्षेत्र) में प्राइवेट और स्वैच्छिक प्रयास अंतर्वलित करने के लिए वैकल्पित पद्धति तैयार की जाएगी, जो स्वीकृत नियमों और लक्ष्यों के अनुरूप होगी (देखें पैरा 6 से 20); 1987 में भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1956 में प्रस्तावित संशोधनों को अभी तक प्रभावी रूप नहीं दिया गया है; जहां तक इंजीनियरी महाविद्यालयों का संबंध है, ए॰ आई॰ सी॰ टी॰ ई॰ (अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद्) द्वारा इस शर्त के अधीन अनुज्ञा दी जा रही है कि वे कोई कैपिटेशन फीस संगृहीत नहीं करेंगे। ए॰आई॰सी॰टी॰ई॰ द्वारा जारी किए गए दिशा-निर्देशों के अनुसार, तकनीकी महाविद्यालयों को केवल छात्र-शिक्षा के औसत खर्च की श्रेणीबद्ध प्रतिशतता वसूल करने के लिए भी अनुज्ञात किया जाएगा, जो इस बात पर निर्भर करेगा कि संस्था सरकार की निधि प्राप्त करती है, सरकारी सहायता प्राप्त करती है या उसे सरकारी सहायता प्राप्त नहीं होती है। (इन दिशा-निर्देशों के अनुसार, यह बताया गया है, छात्रों से सरकारी निधि वाली संस्थाओं में 20 प्रतिशत खर्च, सरकारी सहायता प्राप्त करने वाली संस्थाओं में 30 से 35 प्रतिशत खर्च और सरकारी सहायता प्राप्त नहीं करने वाली संस्थाओं में 70 प्रतिशत खर्च का संदाय करने के लिए कहा जाएगा)। अंत में यह निवेदन किया गया है कि:—

(क) प्रत्येक नागरिक को सभी स्तरों पर शिक्षा का बिना शर्त और असीमित अधिकार प्रदान करना, जिसमें राज्य पर प्रत्यक्ष रूप से या राज्य के अभिकरणों के माध्यम से शिक्षा संस्थाएं स्थापित करने की सांविधानिक बाध्यता अंतर्वलित हो, संविधान द्वारा उचित नहीं ठहराया गया है; इसके अतिरिक्त वह यथार्थपरक और व्यावहारिक भी नहीं है।

(ख) जब सरकार प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को मान्यता प्रदान करती है, तब वह संविधान के अधीन उसकी बाध्यताओं को पूरा करने के लिए कोई अभिकरण सर्जित नहीं करती है और ऐसी स्थिति में अभिकरण की संकल्पना लाने (जोड़ने) की गुंजाइश नहीं है।

(ग) ऊपर निर्दिष्ट मोहिनी जैन वाले मामले में अभिकथित सिद्धांतों पर पुनः विचार किए जाने की आवश्यकता है।

(घ) विशेष रूप से उच्चतर शिक्षा के लिए शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था करने में प्राइवेट पहल को निरूत्साहित करना यथार्थपरक और बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा। शिक्षा के क्षेत्र में अति आवश्यक संसाधनों का संवर्धन करने के लिए प्राइवेट सेक्टर को अंतर्वलित किया जाना चाहिए और वस्तुतः उसे प्रोत्साहन भी दिया जाना चाहिए, जिससे कि इस संबंध में सांविधानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में यथासम्भव प्रगति की जा सकेगी।

(ङ) इसके साथ ही, नियामक नियंत्रण जारी रखे जाने हैं और उन्हें और सशक्त बनाया है, जिससे कि प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को शिक्षा का वाणिज्यीकरण करने से निवारित किया जा सके।

(च) यह सुनिश्चित करने के लिए नियामक

अध्युपाय किए जाने चाहिए और उन्हें सशक्त बनाया जाना चाहिए कि प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं न्यूनतम मानक और सुविधाएं बनाए रखती हैं।

(छ) सभी समूहों और प्रवर्गों में प्रवेश योग्यता पर आधारित होने चाहिए। समाज के कमजोर वर्ग और ऐसे अन्य समूहों के पक्ष में स्थानों का आरक्षण किया जा सकता है, जिन्हें "विशेष व्यवहार" की आवश्यकता है। प्रवेश के लिए नियम पूर्वावधारित और स्पष्ट होने चाहिए।

आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु राज्यों की सरकारों का आधार इससे भिन्न नहीं है।

161. वह ठोस वास्तविकता, जो इस स्थिति से उद्भूत होती है, यह है कि वर्तमान संदर्भ में प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं "आवश्यकता" हैं। उनके बिना काम चलाना सम्भव नहीं है, क्योंकि सरकारें विशेष रूप से चिकित्सीय और तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में मांग को पूरा करने की स्थिति में नहीं है, जो सारभूत व्यय की अपेक्षा करती है। शिक्षा भारतीय राज्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृत्यों में से एक है; तथापि उसका उस पर एकाधिकार नहीं है। प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को भी, जिनमें अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाएं सम्मिलित हैं, अपनी भूमिका निभानी हैं।

162. प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं सहायता प्राप्त और गैर-सहायता प्राप्त हो सकती हैं। सरकार द्वारा दी गई सहायता शत-प्रतिशत या आंशिक हो सकती हैं। जहां तक सहायता प्राप्त संस्थाओं का संबंध है, यह स्पष्ट है कि उन्हें उन सभी नियमों और विनियमों का पालन करना होता है, जो सरकार द्वारा और/या मान्यता प्रदान करने वाले/सहबद्ध करने वाले प्राधिकारियों द्वारा शिक्षकों और अन्य स्टाफ की भर्ती, उनकी सेवा शर्तों, पाठ्य-विवरण और शिक्षण के स्तर आदि के विषय में विरचित किए जाएं। विशेपतः, छात्रों के प्रवेश के विषय में, उन्हें योग्यता और केवल योग्यता के नियम का ही अनुसरण करना होता है—अनुच्छेद 15 के अधीन किए गए किन्हीं आरक्षण के अधीन। वे सरकारी संस्थाओं में समान पाठ्यक्रमों के लिए प्रभारित की जाने वाली फीस से उच्चतर फीस प्रभारित करने के लिए हकदार नहीं होंगी। ये सहायतानुदान की शर्तें हैं और मानी जाएंगी। उसका कारण सीधा-सादा और स्पष्ट है; लोक निधियां, जब वे अनुदान के रूप में दी जाती हैं, न कि उधार के रूप में, जहां कहीं भी वे जाती हैं, लोक स्वरूप साथ लिए चलती हैं; लोक निधियां प्राइवेट प्रयोजनों के लिए दान में नहीं दी जा सकती हैं। लोक स्वरूप के तत्व से अनिवार्यतः अनुच्छेद 14 और 15 के सांविधानिक आदेश के अनुरूप, सभी क्षेत्रों में ऋजु आचरण अभिप्रेत है। सभी सरकारें और शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने के भारसाधक प्राधिकारी अभिव्यक्त रूप से (अन्य शर्तों के साथ-साथ) ऐसी शर्तों का उपबंध करेंगे, यदि उनका पहले ही उपबंध नहीं किया गया हो, और उनके अनुपालन को सुनिश्चित करेंगे। पुनः सहायता के अनेक रूप हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, चिकित्सा महाविद्यालय को अनिवार्यतः अस्पताल की आवश्यकता होती है। हमें बताया गया है कि 100 स्थान वाले चिकित्सा महाविद्यालय के लिए पूर्णतः सज्जित 700 बिस्तर वाला अस्पताल अवश्य ही होना चाहिए। केवल तभी चिकित्सा महाविद्यालय को कृत्य करने की अनुज्ञा दी जा सकती है। प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालय स्वयं अपना अस्पताल स्थापित करने की स्थिति में हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। वह सरकार से अनुरोध कर सकता है और सरकार उसे महाविद्यालय के प्रयोजन के लिए सरकारी अस्पताल की सेवा का मुफ्त फायदा उठाने के लिए अनुज्ञात कर सकती है। यह भी सहायता का एक रूप होगा और पूर्वोक्त शर्तों को अधिरोपित किया जाना है—हो सकता है कि प्रभार्य फीस के विषय में कुछ ढील के साथ—और उनका अनुपालन किया जाना है। सरकारें (केन्द्रीय और राज्य) और सहायता प्रदान करने वाले अन्य सभी प्राधिकारी/प्राधिकरण तुरन्त ऐसी शर्तें अधिरोपित करेंगे, यदि उन्हें पहले ही अधिरोपित नहीं किया गया है। ये शर्तें विद्यमान और प्रस्थापित, दोनों ही प्रकार की, प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को लागू होंगी।

163. जहां तक गैर-सहायता प्राप्त संस्थाओं का संबंध है, यह स्पष्ट है कि उन्हें उसी फीस को प्रभारित करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है, जो सरकारी संस्थाओं में प्रभारित की जाती है। यदि वे ऐसा स्वैच्छिक रूप से करती है, तो उनका यह कार्य पूर्णतः अभिनन्दनीय है किंतु उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है और उसका सीधा-सादा कारण यह है कि उन्हें स्वयं अपने संसाधनों से ही शिक्षा प्रदान करने का खर्च पूरा करना होता है—और दान/खैरात के अतिरिक्त, यदि कोई हो, मुख्य स्रोत छात्रों से संगृहीत फीस ही हो सकता है। यही स्ववित्तपोषित शिक्षा संस्थाओं और व्ययाधारित शिक्षा संस्थाओं की संकल्पना सामने आती है। इस स्थिति से अनेक कठिन समस्याएं उत्पन्न होती हैं। शिक्षा का व्यय किस प्रकार अवधारित किया जा सकता है और उसे किस प्रकार और किसके द्वारा विनियमित किया जा सकता है। शिक्षा का व्यय एक ही संकाय के अंदर अलग-अलग संस्थाओं में अलग-अलग हो सकता है। उपबंधित सुविधाएं, उपस्कर, अव-संरचना, उपलब्ध शिक्षा का मानक और गुणवत्ता अलग-अलग संस्थाओं में अलग-अलग हो सकती हैं। निश्चित रूप से न्यायालय ऐसा नहीं कर सकता है। ऐसा सरकार या विश्वविद्यालय या ऐसे अन्य प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा ही किया जाना चाहिए, जिसे इस संबंध में अभिहित किया जाए। तथापि, कुछ प्रश्न उद्भूत होते हैं—क्या व्यय-आधारित शिक्षा से केवल संस्था चलाने के प्रभार ही अभिप्रेत हैं या उसके अंतर्गत पूंजी-व्यय भी सम्मिलित किया जा सकता है। प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं की स्थापना, विस्तार और सुधार/विविधीकरण के लिए किसे संदाय करने के लिए कहा जा सकता है। क्या कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का निकाय विचार रखने वाले छात्रों से पहले रकमें संगृहीत कर सकते हैं (चाहे उन्हें कोई भी नाम दिया जाए) और उक्त धन से कोई संस्था स्थापित कर सकते हैं—जो नगरों में घरों का निर्माण करने के कार्य के समान एक क्रियाकलाप है। बाद के वर्षों में आने वाले छात्रों को कितना संदाय करना चाहिए। प्रत्येक संस्था के अर्थतंत्र को किसे कार्यान्वित करना चाहिए। किसी भी प्रतिपादित समाधान में इन सभी विभिन्न बातों को ध्यान में रखा जाना है। किंतु एक बात स्पष्ट है: शिक्षा का वाणिज्यीकरण अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है और उसे अनुज्ञात किया भी नहीं जाना चाहिए। संसद् और राज्य विधानमंडलों ने इस बात को असंदिग्ध शब्दों में अभिव्यक्त किया है। हमारी परम्परा को देखते हुए और सामान्य प्रयोजन के हित के दृष्टिकोण से भी, वाणिज्यीकरण

निश्चय ही हानिकर है; वह लोक नीति के विरुद्ध है। जैसा कि हम अभी उपदर्शित करेंगे, यह अभिनिर्धारित करने का कि शिक्षा की व्यवस्था करना व्यवसाय, व्यापार, कारबार या वृत्ति नहीं हो सकता है, यह एक कारण है। अब प्रश्न यह है कि उन्हें शिक्षा का वाणिज्यीकरण करने के लिए अनुज्ञात किए बिना, प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को किस प्रकार प्रोत्साहित किया जा सकता है। यही वह कठिन प्रश्न है जो, इस समय समाज, सरकार और न्यायालयों के समक्ष कठिनाई उपस्थित कर रहा है। किंतु इससे पूर्व कि हम इस समस्या का समाधान करने के लिए किसी स्कीम को प्रतिपादित करने के लिए अग्रसर हों, हमारे समक्ष उठाए गए कुछ अन्य प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है।

शिक्षा-संस्था स्थापित करने का अधिकार

164. संविधान के अनुच्छेद 19(1) (छ) में यह घोषित किया गया है कि इस देश के सभी नागरिकों को कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा। तथापि अनुच्छेद 19 के खंड (6) में यह कहा गया है:—

> "उक्त खण्ड के उपखंड (छ) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर साधारण जनता के हित में युक्तियुक्त निर्बन्धन जहां तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी और विशिष्टतया उक्त उपखंड की कोई बात—
>
> (i) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने के लिए आवश्यक वृत्तिक या तकनीकी अर्हताओं से, या
>
> (ii) राज्य द्वारा या राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण में किसी निगम द्वारा कोई व्यापार, कारबार, उद्योग या सेवा, नागरिकों का पूर्णतः या भागतः अपवर्जन करके या अन्यथा, चलाए जाने से, जहां तक कोई विद्यमान विधि संबंध रखती है वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या इस प्रकार संबंध रखने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।"

यद्यपि हम इस प्रश्न पर कोई राय व्यक्त नहीं करना चाहते हैं कि क्या शिक्षा संस्था स्थापित करने के अधिकार के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह अनुच्छेद 19(1) (छ) के अर्थान्तर्गत कोई वृत्ति करने का अधिकार भी है, कदाचित् ऐसा ही है; तथापि, हमारी यह निश्चित राय है कि ऐसा कार्यकलाप अनुच्छेद 19(1) (छ) के अर्थान्तर्गत न तो व्यापार या कारबार हो सकता है और न वह वृत्ति ही हो सकता है। सामान्यतः व्यापार या कारबार से लाभ हेतु से चलाए जाने वाले कार्यकलाप का बोध होता है। इस देश में शिक्षा कभी भी वाणिज्य नहीं रही है। उसको वाणिज्य बनाना इस राष्ट्र के आचार, परम्परा और विवेक (समझ-बूझ) के विरुद्ध होगा। इसके विपरीत तर्क में अपवित्रता का पुट है। इस देश में अनादिकाल से शिक्षा को कभी भी व्यापार या कारबार नहीं माना गया है। उसे धार्मिक कर्तव्य माना गया है। उसे पूर्त कार्यकलाप माना गया है, किंतु व्यापार या कारबार कभी भी नहीं। हम न्या० गजेन्द्रगडकर के इस मत से सहमत हैं कि शिक्षा अपने सही रूप में सेवा भाव है, न कि वृत्ति या व्यापार या कारबार, चाहे दोनों पश्चात्वर्ती शब्दों का अर्थ कितना ही व्यापक क्यों न हो (देखें **दिल्ली विश्वविद्यालय**[1] वाला मामला) संसद ने भी (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम और ए० आई० ई० सी० टी० ई० एफ० अधिनियमित करके) बार-बार अपना यह आशय व्यक्त किया है कि शिक्षा का वाणिज्यीकरण अनुज्ञेय नहीं है और किसी भी व्यक्ति को, अपनी आर्थिक शक्ति के कारण अधिक योग्य अभ्यर्थी से अधिक लाभ उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और तमिलनाडु विधानमंडलों द्वारा भी, कैपिटेशन फीस के प्रभारित किए जाने को प्रतिषिद्ध करते हुए, अपनी-अपनी अधिनियमितियों की उद्देशिकाओं में यही आशय व्यक्त किया गया है।

165. अतः **आर० एम० डी० सी०**[2] वाले मामले में के तर्काधार को अपनाते हुए, हमारी यह राय है कि शिक्षा प्रदान करने के कार्य को व्यापार या कारबार नहीं माना जा सकता है। शिक्षा को वाणिज्य के रूप में संपरिवर्तित नहीं होने दिया जा सकता है और न याची 'वृत्ति' के व्यापक अर्थ का अवलंब लेकर, उक्त परिणाम प्राप्त करने की ईप्सा ही कर सकते हैं। 'वृत्ति' पद की अंतर्वस्तु को, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अभिनिश्चित किए जाना है कि खंड (छ) में चार पद अर्थात् 'वृत्ति', 'उपजीविका', 'व्यापार' और 'कारबार', प्रयुक्त किए गए हैं। उनके क्षेत्र अतिव्यापी हो सकते हैं किंतु उनमें से प्रत्येक की, निश्चय ही, अपनी अंतर्वस्तु है, जो दूसरे की अंतर्वस्तु से भिन्न है। बहरहाल एक बात स्पष्ट है—शिक्षा प्रदान करने का कार्य वाणिज्य नहीं है और न उसे 'वाणिज्य' होने दिया जा सकता है। विद्यमान या भावी, कोई भी विधि जो उसके (शिक्षा को वाणिज्य बनाने के) विरुद्ध स्थिति सुनिश्चित करती है, अनुच्छेद 19 के खंड (6) के अर्थान्तर्गत विधिमान्य उपाय होगी। अतः हम **दि साखरखेर्दा एजूकेशन सोसाइटी और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य,**[3] **आन्ध्र केसरी एजूकेशन सोसाइटी, ओंगोल** बनाम **आंध्र प्रदेश सरकार,**[4] **हैदराबाद और अन्य तथा बापूजी एजूकेशनल एसोसिएशन** बनाम **राज्य**[5] में प्रतिपादित विपरीत प्रतिपादना से सहमत नहीं हो सकते हैं।

166. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने अपनी इस दलील के समर्थन में कुछ विनिश्चयों का अवलंब लिया कि शिक्षा-संस्था

---

[1] [1964] 2 एस० सी० आर० 703 = ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1873.

[2] ए० आई० आर० 1957 एस० सी० 699=[1957] एस० सी० आर० 874.

[3] ए० आई० आर० 1968 बॉम्बे 91.

[4] ए० आई० आर० 1984 ए० पी० 251.

[5] ए० आई० आर० 1986 कर्नाटक 119.

स्थापित करने का अधिकार अनुच्छेद 19(1)(छ) से उद्भूत होता है। प्रथम विनिश्चय **भारत सेवाश्रम संघ** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में किया गया विनिश्चय है, जो न्या॰ ई॰ एस॰ वेंकटरामैया और न्या॰ रंगनाथ मिश्र के न्यायपीठ का विनिश्चय है। पृष्ठ 609 पर, गुजरात माध्यमिक शिक्षा अधिनियम की धारा 33 पर विचार करते समय, जिसके द्वारा सरकार को पांच वर्ष से अनधिक अवधि के लिए कुछ स्थितियों में शिक्षा-संस्था को अपने हाथ में लेने के लिए सशक्त किया गया है, विद्वान् न्यायाधीशों ने यह मत व्यक्त किया कि उक्त उपबंध साधारण जनता के हित में जोड़ा गया है और उससे संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन गारण्टीकृत प्रबंधतंत्र के मूल अधिकार पर प्रभाव नहीं पड़ता है। वस्तुतः, हमारे समक्ष इस समय जो विवाद है, वह उक्त विनिश्चय में न तो उठाया गया था और न उस पर विचार ही किया गया था। इसके अतिरिक्त, उक्त विनिश्चय में यह नहीं कहा गया है कि वह वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार है या नहीं।

इसके पश्चात् **बैंगलोर वाटर सप्लाई एंड सीवरेज़ बोर्ड** बनाम **राजप्पा**[2] वाले मामले में कुल सात न्यायाधीशों वाले न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया गया है, जिसमें न्या॰ कृष्ण अय्यर ने औद्योगिक विवाद अधिनियम में "उद्योग" पद के अर्थ पर विचार करते समय, यह मत व्यक्त किया कि शिक्षा संस्थाएं भी "उद्योग" की परिधि के अंतर्गत आएंगी। हम नहीं समझते कि एक भिन्न संदर्भ में की गई उक्त मताभिव्यक्ति यहां किस प्रकार लागू होती है।

जहां तक **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **लोक शिक्षण संस्था**[3] वाले मामले में किए गए अन्य विनिश्चय का संबंध है, न्यायालय ने केवल यही अभिनिर्धारित किया कि आपात-स्थिति के प्रवर्तन को देखते हुए, शिक्षा संस्था स्थापित करने की ईप्सा करने वाले याचियों को अनुच्छेद 19 उपलब्ध नहीं है। अनुच्छेद 358 (एक) वर्जन माना गया किंतु उक्त विनिश्चय में यह नहीं कहा गया है कि ऐसा अधिकार याचियों में निहित है।

167 हमारी यह भी राय है कि उक्त कार्यकलाप को अनुच्छेद 19(1)(छ) के अर्थान्तर्गत 'वृति' नहीं कहा जा सकता है। "कोई वृत्ति करना" शब्दों की अवेक्षा करना महत्वपूर्ण है। स्पष्टतः निर्देश ऐसी वृत्तियों के प्रति है, जो, नागरिकों, अर्थात् व्यक्तियों द्वारा की जा सकती है (देखें **एन॰ यू॰ सी॰ एम्पलाईज** बनाम **औद्योगिक अधिकरण**[4])। शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करना कल्पना की किसी उड़ान द्वारा "कोई वृत्ति करना" नहीं माना जा सकता है। शिक्षण 'वृत्ति' हो सकता है किंतु शिक्षण और गैर-शिक्षण स्टाफ नियोजित करते हुए, विद्यालय या महाविद्यालय चलाने के लिए आवश्यक अवसंरचना उपाप्त करते हुए, किसी संस्था की स्थापना करना "वृत्ति करना" नहीं है। यह कुछ भी हो सकता है, किंतु वृत्ति नहीं हो सकता। यहां हमें यह बात अवश्य ही स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि हमने इस कारण से "वृत्ति" "उपजीविका", "व्यापार" या "कारबार" पदों के प्रमित अर्थ और अंतर्वस्तु पर विचार नहीं किया है क्योंकि हमारे लिए उस दृष्टिकोण को देखते हुए, जो हम इसमें इसके पश्चात्, अपनाने जा रहे हैं, ऐसा करना आवश्यक नहीं है, जैसा कि आगामी पैराग्राफों से स्पष्ट हो जाएगा। सम्पूर्ण पूर्वगामी विवेचन में हमारा मुख्य प्रयोजन केवल यह सिद्ध करना रहा है कि शिक्षा संस्था स्थापित करने और/या चलाने का कार्यकलाप वाणिज्य का विषय नहीं हो सकता।

168. इन मामलों के प्रयोजन के लिए हम इस धारणा के आधार पर अग्रसर होंगे कि इस देश में किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के निकाय को शिक्षा संस्था की स्थापना करने का अधिकार प्राप्त है। किंतु हमें यह बात अवश्य ही स्पष्ट कर देनी चाहिए कि यह अधिकार आत्यंतिक अधिकार नहीं हैं। यह ऐसी विधि के अधीन है, जो साधारण जनता के हित में राज्य द्वारा बनाई जाए।

169. तथापि हमें यह बात स्पष्ट कर दी जानी चाहिए, और यह बात बहुत महत्वपूर्ण है, कि शिक्षा संस्था स्थापित करने के अधिकार से मान्यता का अधिकार या सहबद्ध होने का अधिकार संलग्न नहीं है। **अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कालेज सोसाइटी और एक अन्य** बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में सभी नौ विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा समान रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सहबद्ध होने (सम्बन्धन) का कोई मूल अधिकार नहीं है। मु॰ न्या॰ राय ने यह कहा कि इस न्यायालय का बराबर यही मत रहा है। उन्होंने इस तथ्य को भी स्वीकार किया कि मान्यता या सम्बन्धन (सहबद्ध होना) शिक्षा संस्थाएं स्थापित और प्रशासित करने के अधिकार के सार्थक प्रयोग के लिए आवश्यक है। मान्यता, सरकार द्वारा या मान्यता देने के लिए सशक्त किसी अन्य प्राधिकारी/प्राधिकरण निकाय द्वारा प्रदान की जा सकती है। इसी प्रकार, सम्बन्धन (सहबद्ध करना/होना) विश्वविद्यालय द्वारा या अन्य शिक्षा-संस्थाओं को सहबद्ध (सम्बद्ध) करने के लिए सशक्त किसी अन्य शैक्षिणिक या अन्य निकाय द्वारा (मंजूर) किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी व्यक्ति को शिक्षा संस्था स्थापित करने, छात्रों को प्रवेश देने, शिक्षा प्रदान करने, परीक्षा आयोजित करने और उन्हें प्रमाणपत्र देने का अधिकार प्राप्त है। किन्तु उसे या शिक्षा संस्था को इस बात का आग्रह करने का कोई अधिकार नहीं है कि ऐसी संस्था द्वारा दिए गए प्रमाणपत्रों या उपाधियों को (यदि उन्हें ऐसा कहा जा सकता है) राज्य द्वारा मान्यता प्रदान की जानी चाहिए — यह कहने का अधिकार तो उन्हें बिल्कुल ही प्राप्त नहीं है कि संस्था द्वारा प्रशिक्षित छात्रों को, यथास्थिति, विश्वविद्यालयों द्वारा या सरकार द्वारा या किसी अन्य प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा आयोजित परीक्षाओं में प्रवेश दिया जाना चाहिए। संस्था को समुचित अभिकरण से ऐसी मान्यता या सम्बन्धन (सहबद्ध होना/करना) की ईप्सा करनी होती है। मान्यता और/या सम्बन्धन की मंजूरी सामान्य अनुक्रम का विषय नहीं है और न वह कोई औपचारिकता (प्ररूपिकता) ही है। विश्वविद्यालय के विशेषाधिकारों की स्वीकृति की शक्ति का, सामान्य जनता

1 [1986]3 एस॰ सी॰ आर॰ 602=ए॰ आई॰ आर॰ 1987 एस॰ सी॰ 494.

2 [1979]1 उम॰ नि॰ प॰ 1053=[1978] 3 एस॰ सी॰ आर॰ 207=ए॰ आई॰ आर॰ 1978 एस॰ सी॰ 548.

3 ए॰ आई॰ आर॰ 1973 एस॰ सी॰ 588=[1971] सप्ली॰ एस॰ सी॰ आर॰ 879.

4 ए॰ आई॰ आर॰ 1962 एस॰ सी॰ 1080(पृ॰ 1085).

1 [1974]2 उम॰ नि॰ प॰ 1303=ए॰ आई॰ आर॰ 1974 एस॰ सी॰ 1389=[1975] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 173

और राष्ट्र के हित को ध्यान में रखते हुए, अत्यंत सावधानी के साथ प्रयोग किया जाना होता है। यह सारभूत महत्व का विषय है — वह प्राइवेट शिक्षा संस्था का प्राण ही है। सामान्यतः, कोई शिक्षा संस्था तब तक नहीं चल सकती है या जीवित नहीं रह सकती है, जब तक कि उसे सरकार द्वारा या समुचित प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा मान्यता प्रदान नहीं की जाती है और/या वह देश के किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध नहीं की जाती है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, जब तक उसे मान्यता प्रदान नहीं की जाती है, और/या सम्बद्ध नहीं किया जाता है, उसके प्रमाणपत्रों का कोई उपयोग नहीं होगा। कोई भी व्यक्ति ऐसी शिक्षा संस्था में प्रवेश नहीं लेगा। वस्तुतः, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उपबंधों के आधार पर, जिनकी ऊपर अवेक्षा की जा चुकी है, इस देश की कोई भी शिक्षा संस्था, विश्वविद्यालय को छोड़कर, उपाधियां देने के लिए हकदार नहीं है। इसी कारण से सभी प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं, उन्हें सरकार/विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परीक्षाओं में बैठने के लिए उनके द्वारा प्रशिक्षित छात्रों को भेजने हेतु समर्थ बनाने के उद्देश्य से, मान्यता और/या सम्बन्धन की ईप्सा करती हैं। उसमें यही भाव निहित है कि यदि ऐसे छात्र उक्त परीक्षा उत्तीर्ण कर लेते हैं, तो सरकार/विश्वविद्यालय उन्हें अपनी उपाधि/डिप्लोमा/प्रमाणपत्र प्रदान करेगी/करेगा। ये शिक्षा संस्थाएं सरकार/विश्वविद्यालय द्वारा विहित पाठ्य-विवरण का अनुसरण करती हैं, उनके वही पाठ्यक्रम होते हैं और वे शिक्षण और प्रशिक्षण की उसी पद्धति का अनुसरण करती हैं। वे अपने छात्रों को विश्वविद्यालय/सरकार द्वारा आयोजित परीक्षाओं के लिए तैयार करती हैं, विश्वविद्यालय/सरकार से उन्हें, उनके द्वारा आयोजित परीक्षाओं में बैठने हेतु अनुज्ञा देने और उन्हें समुचित उपाधियां देने का अनुरोध करती हैं। स्पष्टतः और असंदिग्ध रूप से, मान्यता-प्राप्त/सम्बद्ध प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं राज्य की संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले कृत्य को ही पूरा करती हैं। उनका कोई स्वतंत्र कार्यकलाप नहीं होता है बल्कि उनका कार्यकलाप राज्य के कार्यकलाप से सहबद्ध और उसका पूरक होता है। उपर्युक्त परिस्थितियों में, यह दलील देना निरर्थक है कि शिक्षा प्रदान करना किसी अन्य कारबार के समान ही एक कारबार है या वह सड़क-निर्माण, सेतु-निर्माण आदि जैसे किसी अन्य कार्यकलाप के समान ही है। संक्षेप में, स्थिति इस प्रकार है — विश्वविद्यालय को छोड़ कर कोई भी शिक्षा संस्था उपाधियां प्रदान नहीं कर सकती हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 22 और धारा 23(1) के अधीन प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं अपनी उपाधियां नहीं दे सकतीं। यदि वे अपने प्रमाणपत्र या अन्य शंसा-पत्र देती भी हैं, तब भी उनका व्यावहारिक महत्व नहीं है, क्योंकि वे राज्य के अधीन नियोजन अभिप्राप्त करने या उच्चतर पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने के लिए मान्य नहीं हैं। प्राइवेट शिक्षा संस्थाएं केवल लोगों को शिक्षित करने के राज्य के प्रयास को ही पूरा करती हैं, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। वह कोई स्वतंत्र कार्यकलाप नहीं है। वह राज्य द्वारा चलाए जाने वाले प्रधान कार्यकलाप का पूरक कार्यकलाप ही है। कोई भी प्राइवेट शिक्षा संस्था मान्यता और/या सम्बन्धन के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकती है। वे निकाय, जो मान्यता और/या सम्बन्धन देते हैं, राज्य के प्राधिकरण हैं। ऐसी स्थिति में, सामान्य जनता के हित में मान्यता या सम्बन्धन प्रदान करने वाले प्राधिकारी के लिए ऐसी शर्तों पर जोर देना बाध्यकर है, जो न केवल अपेक्षित स्तर (मानक) की शिक्षा को सुनिश्चित करने बल्कि छात्रों के प्रवेश, कर्मचारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों के विषय में ऋजुता और समान व्यवहार को सुनिश्चित करने के लिए उचित हों। चूंकि मान्यता प्रदान करने वाला/सम्बन्धन करने वाला प्राधिकरण राज्य है, अतः वह संविधान के अनुच्छेद 14 द्वारा उसके लिए व्यादिष्ट कर्तव्य के भाग के रूप में ऐसी शर्त अधिरोपित करने के लिए बाध्यताधीन है। वह स्वयं अपनी शक्ति या विशेषाधिकार का अऋजुतापूर्ण प्रयोग नहीं कर सकता है और न किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसा किए जाने की अनुज्ञा ही दे सकता है। मुख्य कार्यकलाप से संलग्न प्रसंगतियां पूरक कार्यकलाप से भी संलग्न होती हैं। सम्बन्धन/मान्यता देने का कार्य ऐसा कार्य नहीं है, जो कोई भी व्यक्ति मुफ्त या बिना शर्त प्राप्त कर सकता है। हमारी राय में, किसी भी सरकार, प्राधिकरण या विश्वविद्यालय का, ऐसी शर्तें अधिरोपित किए बिना, मान्यता/सम्बन्धन प्रदान करना न्यायोचित नहीं है और न वह ऐसा करने के लिए हकदार ही है। ऐसा करने का अर्थ भाग 3 द्वारा उसके लिए व्यादिष्ट बाध्यताओं का अधित्यजन करना होगा। उसका यह कार्यकलाप असंवैधानिक और अवैध वर्णित किए जाने के लिए दायी है। हम पुनः इस तथ्य पर बल दे रहे हैं कि जो चीज मुख्य कार्यकलाप को लागू होती है, वह पूरक कार्यकलाप को भी उसी प्रकार लागू होती है। राज्य अनुच्छेद 14 और 15 से उद्भूत होने वाली बाध्यताओं से उन्मुक्ति का दावा नहीं कर सकता है। यदि ऐसा है, तो वह सहबद्ध करने वाली संस्थाओं को ऐसी उन्मुक्ति प्रदत्त नहीं कर सकता है। तदनुसार, हमारे समक्ष हाजिर होने वाले काउंसेलों की सहायता से और इसमें इससे पूर्व निर्दिष्ट अनेक केन्द्रीय और राज्य अधिनियमितियों की निश्चयात्मक (सकारात्मक) बातों को ध्यान में रखते हुए, हमने निम्नलिखित स्कीम तैयार की है, जिसे मान्यता सम्बन्धन प्रदान करने वाला प्रत्येक प्राधिकरण ऐसी मान्यता/सम्बन्धन की ईप्सा करने वाली संस्थाओं पर अधिरोपित करेगा।

इस स्कीम में निहित भाव प्रवेश के विषय में प्रबंधतंत्र के विवेकाधिकार को पूर्णतः समाप्त करना है। प्रवेश के विषय में यह विवेकाधिकार ही अनेक बुराइयों की जड़ है, जिनके बारे में शिकायतें की गई हैं। इसी विवेकाधिकार के परिणामस्वरूप मुख्यतः शिक्षा का वाणिज्यीकरण हुआ है। 'कैपिटेशन फीस' से विधि द्वारा अनुज्ञात फीस से अधिक रकम प्रभारित करना या संगृहीत करना अभिप्रेत है; इस पद को सभी अधिनियमों में इसी अर्थ में परिभाषित किया गया है। हमें ऐसी स्थिति लाने का प्रयास करना चाहिए, जिसमें प्रबंधतंत्र के लिए या उसकी ओर से किसी व्यक्ति के लिए अनुज्ञात फीस से अधिक किसी रकम की मांग करने या संग्रहण करने की कोई गुंजाइश न रहे। हमें यह बात अवश्य ही स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं द्वारा अनुज्ञात फीस प्रभारित करना — जो समान सरकारी संस्थाओं में प्रभारित की जाने वाली फीस की तुलना में अधिक होगी ही — स्वतः कैपिटेशन फीस के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता है। कैपिटेशन फीस को प्रतिषिद्ध करने वाली चारों राज्य अधिनियमितियों में यही नीति निहित है। उन सब में प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं द्वारा उच्चतर फीस प्रभारित करने की आवश्यकता को मान्यता प्रदान की गई है। उनमें उस फीस को विनियमित करने की ईप्सा की गई है, जो उनके द्वारा प्रभारित की जा सकती है— जिसे अनुज्ञात फीस का नाम दिया जा सकता है — और उन्हें अनुज्ञात

फीस से अधिक किसी रकम को संगृहीत करने से वर्जित करने की ईप्सा की गई है, जिससे कैपिटेशन फीस अभिप्रेत है। निम्नलिखित स्कीम को तैयार करने में, ठीक-ठीक, हमारा प्रयास उक्त विधायी नीति को प्रभावी बनाना है। यह बात अत्यधिक वांछनीय होगी कि इस स्कीम को, उसे उन नियमों में सम्मिलित करके, कानूनी रूप दिया जाए, जो इन अधिनियमितियों के अधीन विरचित किए जाएं।

स्कीम

170. यहां तैयार की गई स्कीम ऐसे मार्ग निर्देशों के रूप में है, जिन्हें समुचित सरकारें और संस्थाओं को मान्यता प्रदान करने वाले और सहबद्ध करने वाले प्राधिकरण, ऐसी अन्य शर्तों और निबंधनों के अतिरिक्त, जिन्हें वे ठीक/उचित समझें, यथास्थिति, अनुज्ञा देने, मान्यता या सम्बन्धन देने के लिए शर्तों के रूप में अधिरोपित करेंगे और कार्यान्वित करेंगे। हम इस समय उक्त स्कीम को केवल वृत्तिक महाविद्यालय तक ही सीमित रख रहे हैं।

इस स्कीम में "वृत्तिक महाविद्यालय" पद के अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं:—

(i) चिकित्सा महाविद्यालय, दंत महाविद्यालय और ऐसी अन्य संस्थाएं और महाविद्यालय, जो नर्सिंग, (परिचर्या), फार्मेसी और आयुर्विज्ञान से सम्बद्ध अन्य पाठ्यक्रमों की शिक्षा दे रहे हों और जो प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं द्वारा स्थापित किए गए हों या चलाए जा रहे हों;

(ii) इंजीनियरी महाविद्यालय और इलैक्ट्रोनिकी, संगणित विज्ञान सहित, तकनीकी शिक्षा देने वाले महाविद्यालय और संस्थाएं, जो प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं द्वारा स्थापित किए गए हों और/या चलाए जा रहे हों, और

(iii) ऐसे अन्य महाविद्यालय, जिन्हें, सरकार द्वारा या मान्यता और/या सम्बन्धन प्रदान करने वाले, प्राधिकरण द्वारा यह स्कीम लागू बनाई जाती है।

"समुचित प्राधिकारी/प्राधिकरण" पद से सरकार, विश्वविद्यालय या अन्य प्राधिकारी अभिप्रेत हैं, जो किसी वृत्तिक महाविद्यालय की स्थापना या मान्यता हेतु अनुज्ञा देने के लिए सक्षम है।

इस स्कीम में, "सक्षम प्राधिकरण" पद से सरकार/विश्वविद्यालय या अन्य प्राधिकरण अभिप्रेत है, जो किसी विशेष राज्य में विभिन्न वृत्तिक महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु छात्रों को आबंटित करने के लिए सरकार/विश्वविद्यालय द्वारा या विधि द्वारा अभिहित किया जाए।

यहां यह बात स्पष्ट की जा रही है कि केवल ऐसी संस्थाएं, जो समुचित प्राधिकरण से संस्था स्थापित करने और/या मान्यता और/या सम्बन्धन के लिए अनुज्ञा चाहती हैं, इस स्कीम द्वारा आबद्ध होंगी। यह स्कीम सरकार द्वारा चलाए जाने वाले महाविद्यालयों या विश्वविद्यालय के महाविद्यालयों को लागू नहीं होती है। संक्षेप में, इसमें इसके पश्चात् वर्णित स्कीम, यथा स्थिति, अनुज्ञा, मान्यता या सम्बन्धन की शर्त बनाई जाएगी उनमें से प्रत्येक, अर्थात् अनुज्ञा, मान्यता संबंधन दिए जाने के लिए, ऐसी अन्य शर्तों के अतिरिक्त, जिन्हें समुचित प्राधिकारी/प्राधिकरण उचित समझे, ये शर्तें अनिवार्यतः अधिरोपित की जाएंगी। किसी प्राइवेट शिक्षा संस्था को अपने छात्रों को सरकार द्वारा या उसके द्वारा गठित किसी निकाय द्वारा या किसी विधि के अधीन आयोजित की जाने वाली किसी परीक्षा में या किसी विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित की जाने वाली किसी परीक्षा में बैठने हेतु भेजने के लिए अनुज्ञा नहीं दी जाएगी, जब तक कि संबंधित संस्था और सुसंगत पाठ्यक्रम को समुचित प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा यथास्थिति मान्यता प्रदान नहीं की जाती है और/या उसे समुचित विश्वविद्यालय से सम्बद्ध नहीं किया जाता है।

(1) वृतिक महाविद्यालय को केवल सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (या किसी विशेष राज्य में प्रवृत्त समरूपी अधिनियम, यदि कोई हो) के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी द्वारा या न्यास अधिनियम के अधीन या वक्फ अधिनियम के अधीन या समरूपी विधान, यदि कोई हो, अर्थात् तमिलनाडु धार्मिक और पूर्त विन्यास अधिनियम और आंध्र प्रदेश धार्मिक और पूर्त विन्यास अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत लोक न्यास, धार्मिक या पूर्त न्यास द्वारा ही स्थापित और/या प्रशासित किए जाने की अनुज्ञा दी जाएगी। ऊपर वर्णित संस्थाओं को छोड़कर, किसी भी व्यक्ति फर्म, कंपनी या व्यक्तियों के अन्य निकायों को चाहे उन्हें किसी भी नाम से पुकारा जाए, वृत्तिक महाविद्यालय स्थापित और/या प्रशासित करने के लिए अनुज्ञा नहीं दी जाएगी। ऐसे सभी विद्यमान वृत्तिक महाविद्यालयों को, जो उपर्युक्त नियम के अनुरूप नहीं हैं, आज से छह मास के अंदर उनका अनुपालन करने हेतु उचित कदम उठाने के लिए निदेश दिया जाएगा, जिसके व्यतिक्रम में दी गई मान्यता/सम्बन्धन को वापस ले लिया जाएगा [इस संबंध में महाराष्ट्र सहायतानुदान संहिता के नियम 86(2) के प्रतिनिर्देश करना उचित होगा, जिसे **महाराष्ट्र राज्य बनाम लोक शिक्षण संस्था**[1] वाले मामले में निर्दिष्ट किया गया था] और जिसमें यह उपबंध किया गया था कि ऐसे विद्यालय, जो सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, के अधीन रजिस्ट्रीकृत नहीं हैं, अनुदान (मंजूरी) के लिए पात्र नहीं होंगे। मान्यता और सम्बन्धन का प्रदान किया जाना कम महत्वपूर्ण नहीं है।

(2) कम से कम प्रत्येक वृत्तिक महाविद्यालय में 50 प्रतिशत स्थान, यथास्थिति, सरकार या विश्वविद्यालय के नामनिर्देशितियों द्वारा भरे जाएंगे, जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "मुक्त स्थान" कहा गया है। उन छात्रों का चयन सामान्य प्रवेश परीक्षा के आधार पर अवधारित योग्यता के आधार पर किया जाएगा, जहां ऐसी परीक्षा आयोजित की जाती है, या प्रवेश परीक्षा के अभाव में, ऐसे मापदण्ड द्वारा किया जाएगा जो यथास्थिति, सक्षम प्राधिकारी/प्राधिकरण या समुचित प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा अवधारित किया जाए, तथापि, इन महाविद्यालयों/संस्थाओं में प्रवेश नियमित करने के लिए सामान्य प्रवेश परीक्षा कराना वांछनीय और उचित है, जैसा कि आंध्र प्रदेश राज्य में किया जाता है। शेष 50 प्रतिशत स्थान (संदाय स्थान) ऐसे अभ्यर्थियों द्वारा भरे जाएंगे,

---

[1] ए॰ आई॰ आर॰ 1973 एस॰ सी॰ 588 = [1971] सप्ली॰ एस॰ सी॰ आर॰ 879.

जो उसके लिए विहित फीस का संदाय करने के लिए तैयार हैं और जिन्होंने रकम के अतिशेष के लिए नकद प्रतिभूति / बैंक गारण्टी दिए जाने और उसके निक्षेप से संबंधित अनुदेशों का अनुपालन किया है। संदाय-स्थानों के लिए छात्रों का आबंटन परस्पर योग्यता के आधार पर भी किया जाएगा, जो उसी आधार पर अवधारित की जाएगी, जो मुक्त स्थानों के मामले में है। प्रबंधतंत्र या किसी कुटुम्ब के लिए या किसी जाति या समुदाय के लिए कोटा आरक्षित नहीं किया जाएगा, जिसने ऐसे महाविद्यालय की स्थापना की हो। पात्रता का मापदण्ड और अन्य सभी शर्तें मुक्त स्थानों और संदाय-स्थानों, दोनों ही, की बाबत एक जैसे होंगी। एकमात्र अंतर 'संदाय-छात्रों' द्वारा उच्चतर फीस की अपेक्षा होगा। किसी वृत्तिक महाविद्यालय का प्रबंधतंत्र मुक्त स्थानों या संदाय स्थानों के लिए प्रवेश हेतु कोई अन्य और अतिरिक्त पात्रता मापदण्ड या शर्त अधिरोपित या विहित करने के लिए हकदार नहीं होगा। तथापि, वृत्तिक महाविद्यालय को सहबद्ध (सम्बद्ध) करने वाले विश्वविद्यालय के अनुमोदन से सांविधानिक रूप से अनुज्ञेय वर्गों के लिए स्थानों के आरक्षण का उपबंध करने का अधिकार प्राप्त होगा। ऐसे आरक्षण, यदि कोई हों, महाविद्यालयों के ऐसे प्रवर्ग में प्रवेश हेतु आवेदन आमंत्रित करते हुए, अधिसूचना के जारी किए जाने से कम से कम एक मास पूर्व किए जाएंगे और सक्षम प्राधिकारी / प्राधिकरण और समुचित प्राधिकारी / प्राधिकरण को अधिसूचित किए जाएंगे ऐसी स्थिति (ऐसे मामले) में सक्षम प्राधिकारी / प्राधिकरण, महाविद्यालय द्वारा उपबंधित आरक्षणों को ध्यान में रखते हुए, छात्र आबंटित करेगा। ऐसे आरक्षित प्रवर्गों में भी योग्यता के नियम का अनुसरण किया जाएगा।

(3) वृत्तिक महाविद्यालय में उपलब्ध स्थानों की संख्या (जिन्हें यह स्कीम लागू बनाई गई है) समुचित प्राधिकारी / प्राधिकरण द्वारा नियत की जाएगी। किसी भी वृत्तिक महाविद्यालय को समुचित प्राधिकारी / प्राधिकरण द्वारा दी गई अनुज्ञा या उसके प्राधिकार के अधीन ही उसकी संख्या में वृद्धि करने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

(4) कोई भी वृत्तिक महाविद्यालय पृथक् रूप से या वैयक्तिक रूप से प्रवेश हेतु आवेदन आमंत्रित नहीं करेगा। ऐसे महाविद्यालयों में उपलब्ध सभी स्थानों के लिए प्रवेश हेतु आवेदन, समान सरकारी / विश्वविद्यालय, महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु आवेदनों सहित, केवल सक्षम प्राधिकारी / प्राधिकरण द्वारा ही आमंत्रित किए जाएंगे। उदाहरणार्थ, राज्य में सभी चिकित्सा महाविद्यालयों के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए, सक्षम प्राधिकारी / प्राधिकरण द्वारा केवल एक अधिसूचना जारी की जाएगी और राज्य में सभी इंजीनियरी महाविद्यालयों के लिए एक अधिसूचना और इसी प्रकार आगे भी। प्रवेश हेतु आवेदन-पत्र (प्ररूप) सक्षम प्राधिकारी / प्राधिकरण द्वारा जारी किए जाएंगे (ऐसे कार्यालयों, केन्द्रों और स्थानों से, जो उसके द्वारा निर्दिशित किए जाएं)। आवेदन-प्ररूप में एक स्तम्भ या एक पृथक् भाग होगा, जिसमें आवेदक यह उपदर्शित कर सकता है कि वह 'संदाय-स्थान' पर प्रवेश चाहता है या नहीं, और वह तीन वृत्तिक महाविद्यालयों तक अपना अधिमान-क्रम भी उपदर्शित कर सकता है।

(5) प्रत्येक वृत्तिक महाविद्यालय सक्षम प्राधिकारी / प्राधिकरण, राज्य सरकार और संबंधित विश्वविद्यालय को उस शैक्षणिक वर्ष में आरम्भ होने वाले सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के लिए प्रभार्य फीस को अग्रिम रूप से संसूचित करेगा। संपूर्ण फीस उस पाठ्यक्रम के वर्षों सेमिस्टरों की संख्या में विभाजित की जाएगी। प्रथम बार, केवल प्रथम वर्ष / सेमिस्टर के लिए फीस संगृहीत की जाएगी। तथापि, 'संदाय-छात्रों' से शेष वर्षों / सेमिस्टरों के लिए संदेय फीस हेतु नकद प्रतिभूति या बैंक गारण्टी देने की अपेक्षा की जाएगी। प्रत्येक वृत्तिक महाविद्यालय में प्रभार्य फीस समुचित प्राधिकारी / प्राधिकरण या सक्षम न्यायालय द्वारा विहित अधिकतम सीमा के अधीन होगी। सक्षम प्राधिकारी / प्राधिकरण, समुचित प्रभारों के संदाय पर प्रवेश हेतु आवेदन प्ररूप सहित, एक विवरणिका जारी करेगा, जिसमें पाठ्यक्रमों की पूर्ण विशिष्टियां और उपलब्ध स्थानों की संख्या, महाविद्यालयों के नाम, उनकी अवस्थिति और प्रत्येक ऐसे वृत्तिक महाविद्यालय द्वारा प्रभार्य फीस की विशिष्टियां भी दी जाएंगी। उक्त विवरणिका में न्यूनतम पात्रता शर्तें, प्रवेश की पद्धति (प्रवेश-परीक्षा द्वारा या अन्यथा) और अन्य सुसंगत विशिष्टियां भी विनिर्दिष्ट की जाएंगी।

(6) (क) प्रत्येक राज्य सरकार, यथास्थिति वृत्तिक महाविद्यालय या वृत्तिक महाविद्यालयों के वर्ग द्वारा प्रभार्य फीस पर अधिकतम सीमा नियत करने के लिए तुरन्त एक समिति गठित करेगी। उक्त समिति में कुलपति, शिक्षा सचिव (या ऐसे संयुक्त सचिव, जिसे वह नामनिर्देशित करे) और निदेशक, चिकित्सीय शिक्षा / निदेशक, तकनीकी शिक्षा, होंगे। समिति ऐसी जांच करेगी, जैसी वह उचित समझे। तथापि, वह वृत्तिक महाविद्यालयों को (या उनके संगम / संगमों को, यदि कोई हों) ऐसी सामग्री प्रस्तुत करने के लिए अवसर प्रदान करेगी, जैसी वह ठीक समझे। किंतु वह किसी व्यक्ति को वैयक्तिक सुनवाई का अवसर देने या विधि के किन्हीं तकनीकी नियमों का अनुसरण करने के लिए आबद्ध नहीं होगी। समिति की और तीन वर्ष में एक बार या ऐसे दीर्घतर अंतरालों पर, जैसे वह उचित समझे, एक बार फीस नियत करेगी।

(ख) यह उचित ही होगा कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, उस फीस को विनियमित करने के लिए, जिसे प्रभारित करने के लिए सम्बद्ध महाविद्यालय, जो 'कोई सहायतानुदान नहीं' आधार पर चलाए जा रहे हों, हकदार हैं, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 12-क(3) के अधीन विनियम विरचित करता है। तकनीकी शिक्षा परिषद् उस फीस को विनियमित करने के लिए, जो तकनीकी शिक्षा प्रदान करने वाली प्राइवेट गैर-सहायता प्राप्त शिक्षा-संस्थाओं में प्रभारित की जा सकेगी, ए०आई०सी०टी०ई० ऐक्ट (अखिल भारत तकनीकी शिक्षा परिषद् अधिनियम) की धारा 10 के अधीन निदेश जारी करने के औचित्य पर भी विचार कर सकेगी। भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् और केन्द्रीय सरकार भी धारा 10-क के अधीन नयी चिकित्सा-महाविद्यालयों को अनुज्ञा दिए जाने हेतु शर्त के रूप में ऐसे विनियम के औचित्य और धारा 10-ग के अधीन विद्यमान महाविद्यालयों पर ऐसी शर्त अधिरोपित करने के औचित्य पर भी विचार कर सकेगी।

(ग) उप-पैरा (क) और (ख) में वर्णित ऐसे प्राधिकारी / प्राधिकरण यह विनिश्चय करेंगे कि क्या कोई प्राइवेट शिक्षा-संस्था केवल उस फीस को प्रभारित करने के लिए ही हकदार है, जो महाविद्यालय को चलाने के लिए अपेक्षित है, या क्या महाविद्यालय की

स्थापना करने में अंतर्वलित पूंजी-व्यय भी छात्रों से प्रभारित किया जा सकता है और यदि हां, तो किस रीति में। सामान्य जनता और राष्ट्र की आवश्यकता और हित को ध्यान में रखते हुए, इस संबंध में नीतिगत विनिश्चय किया जा सकता है। यह अधिक उचित होगा, यदि केन्द्रीय सरकार और ये विभिन्न प्राधिकरण/प्राधिकारी (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् और अखिल भारत तकनीकी शिक्षा परिषद्) अपने प्रयासों को समन्वित करें और इस संबंध में मोटे रूप से समान मापदण्ड तैयार करें। जब तक केन्द्रीय सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् और अखिल भारत तकनीकी शिक्षा परिषद् इस संबंध में आदेश/विनियम जारी नहीं करते हैं, तब तक इस पैरा के उप-पैरा (क) में निर्दिष्ट समिति प्रवर्तनशील होगी। दूसरे शब्दों में, समिति का कार्यकरण और आदेश, यथास्थिति केन्द्रीय सरकार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् या अखिल भारत तकनीकी शिक्षा परिषद् द्वारा जारी किए गए आदेश/विनियमों के अधीन होंगे।

(घ) यहां हम यह भी बता देना उचित समझते हैं कि हमने इस खण्ड में जो कुछ कहा है वह संबंधित विधानों द्वारा, अर्थात् 1983 के आंध्र प्रदेश अधिनियम सं० 5 की धारा 7; 1988 के महाराष्ट्र अधिनियम सं० 6 की धारा 4; 1984 के कर्नाटक अधिनियम की धारा 5 और 1992 के तमिलनाडु के अधिनियम सं० 5 की धारा 4 द्वारा आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों की सरकारों पर अधिरोपित कर्तव्य, बल्कि बाध्यता, की पुनरावृत्ति मात्र है। अन्य राज्यों के यहां भी ऐसे अनेक उपबंध हो सकते हैं, जिन्हें कानूनी बल प्राप्त है।

(7) ऐसा कोई भी अभ्यर्थी, जो पात्रता की शर्तों को पूरा करता है, प्रवेश हेतु आवेदन करने के लिए हकदार होगा। वृत्तिक महाविद्यालयों में 'मुक्त स्थानों' के भरे जाने के पश्चात्, अभ्यर्थियों (छात्रों) को 'संदाय-स्थानों' के लिए प्रवेश हेतु विकल्प व्यक्त करने के लिए कम से कम दस दिन का समय दिया जाएगा। अभ्यर्थी तीन महाविद्यालयों के लिए (यदि उपलब्ध हों) अपना विकल्प उपदर्शित करने के हकदार होंगे। ऐसे मामले में, उच्चतम फीस प्रभारित करने वाली संस्था को आधार मानते हुए— वह दस दिन की उक्त अवधि के अन्दर निक्षेप और नकद प्रतिभूति/बैंक गारण्टी की अध्यपेक्षाओं का अनुपालन करेगा। यदि उसे, कम फीस प्रभारित करते हुए, संस्था में प्रवेश दिया जाता है, तो अंतर वाली रकम का उसे प्रतिदाय कर दिया जाएगा। (नकद प्रतिभूति या बैंक गारण्टी सक्षम प्राधिकारी/प्राधिकरण के पक्ष में होगी, जो उसे समुचित महाविद्यालय के पक्ष में अंतरित करेगा, यदि उक्त छात्र को प्रवेश दिया जाता है)।

(8) आयोजित प्रवेश परीक्षा यदि कोई हों, के परिणाम, कम से कम दो मुख्य समाचारपत्रों में—एक अंग्रेजी के और अन्य देशी भाषा के — प्रकाशित किए जाएंगे। 'संदाय — अभ्यर्थी,' योग्यता-एवं-पसंद के आधार पर विभिन्न वृत्तिक महाविद्यालयों को आबंटित किए जाएंगे। आबंटन सक्षम प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा किया जाएगा। वृत्तिक महाविद्यालय इस प्रकार आबंटित छात्रों को प्रवेश देने के लिए आबद्ध होगा। आकस्मिक रिक्तियां या अपूरित रिक्तियां भी, यदि कोई हों, उसी रीति में भरी जाएंगी। वृत्तिक महाविद्यालय के प्रबंधतंत्र को, यथास्थिति, 'मुक्त स्थान' या 'संदाय-स्थान' के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा आबंटित छात्र से भिन्न किसी अन्य छात्र को प्रवेश देने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा। यहां यह बात स्पष्ट की जा रही है कि आरक्षित प्रवर्गों के मामलों में भी, यदि कोई हो, परस्पर-योग्यता के सिद्धांत का अनुसरण किया जाएगा। सभी आबंटन, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, दो मुख्य समाचारपत्रों में प्रकाशित किए जाएंगे, और संबंधित महाविद्यालयों के सूचनापट पर तथा ऐसे अन्य स्थानों पर भी प्रकाशित किए जाएंगे, जिनके बारे में सक्षम प्राधिकारी/प्राधिकरण निदेश करे, और उनके साथ, यथास्थिति, सुसंगत प्रवेश परीक्षा या अर्हक परीक्षा में प्रत्येक अभ्यर्थी द्वारा अभिप्राप्त अंक भी प्रकाशित किए जाएंगे। कोई भी वृत्तिक महाविद्यालय उसे आबंटित किसी छात्र से चाहे उसे मुक्त स्थान के लिए आबंटित किया गया हो या संदाय स्थान के लिए, किसी अन्य या अतिरिक्त संदाय या रकम की मांग करने के लिए हकदार नहीं होगा। भले ही उसे किसी नाम से क्यों न पुकारा जाए।

(9) आबंटन करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी/प्राधिकरण सुसंगत परीक्षण/परीक्षा में उनके द्वारा प्राप्त अंकों सहित, अभ्यर्थियों की प्रतीक्षा-सूची तैयार और प्रकाशित करेगा। प्रवेश को अंतिम रूप दिए जाने के पश्चात् उत्पन्न होने वाली किन्हीं भी आकस्मिक रिक्तियों या छोड़ कर चले जाने के कारण होने वाली रिक्तियों को भरने के लिए उक्त सूची का अनुसरण किया जाएगा। ये रिक्तियां ऐसी तारीख तक भरी जाएंगी, जो सक्षम प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा विहित की जाएं। ऐसी तारीख के पश्चात् भी शेष रहने वाली रिक्तियां प्रबंधतंत्र द्वारा भरी जा सकती हैं।

यहां यह बात स्पष्ट की जा रही है कि समुचित प्राधिकारी/प्राधिकरण और सक्षम प्राधिकारी/प्राधिकरण को ऐसे अतिरिक्त अनुदेश या निदेश जारी करने का प्राधिकार प्राप्त होगा, जिन्हें वह इस स्कीम से संगत रूप में उचित समझे।

यह स्कीम शैक्षणिक वर्ष 1993-94 से आरम्भ होने वाले वृत्तिक महाविद्यालयों में प्रवेश को लागू होगी।

हम इस तथ्य से अवगत हैं कि चालू शैक्षणिक वर्ष के आरम्भ होने तक, आंध्र प्रदेश प्राइवेट गैर-सहायता प्राप्त इंजीनियरी महाविद्यालयों में स्थान भरने के मामले में कुछ भिन्न प्रतिमान का अनुसरण कर रहा था। यद्यपि सभी उपलब्ध स्थान संयोजक (राज्य) के आबंटितियों द्वारा भरे जा रहे थे—और प्रबंधतंत्रों को स्वयं अपनी ओर से किसी छात्र को प्रवेश देने की अनुज्ञा नहीं दी गई थी—तथापि सभी छात्रों से एक समान फीस संगृहीत की गई थी। अतः "मुक्त स्थान" और "संदाय-स्थान" की संकल्पनाएं, ऐसी स्थिति में, संगत नहीं थी;—सभी स्थान केवल 'संदाय स्थान' थे। हम यह नहीं कह सकते हैं कि ऐसी पद्धति सांविधानिक रूप से अनुज्ञेय नहीं है। किन्तु इस स्कीम को तैयार करने में हमारा अभिप्राय योग्य छात्रों को अधिक अवसर प्रदान करना रहा है, जो ऐसे महाविद्यालयों के लिए सरकार द्वारा विहित बढ़ाई गई फीस का संदाय करने में समर्थ न हों। हमारे द्वारा तैयार की गई पद्धति से 'संदाय छात्रों' पर, अपेक्षाकृत अधिक वित्तीय भार अभिप्रेत होगा, जबकि पूर्वोक्त पद्धति में (जो आंध्र प्रदेश में प्रचलित है) वित्तीय भार सभी छात्रों में समान रूप से विभाजित किया जाता है। हमारी पद्धति का सैद्धांतिक आधार यह है कि ऐसे अभ्यर्थी/छात्र से, जो अपनी आर्थिक शक्ति के कारण अपने साथी से आगे जा रहा है,

न केवल स्वयं अपने लिए संदाय करने के लिए बल्कि एक अन्य योग्य छात्र के लिए संदाय करने के लिए भी कहा जाना चाहिए। इस स्कीम के खण्ड (2) में विहित पचास प्रतिशत के नियम का यही सामाजिक औचित्य है। एकरूपता के लिए और उपर्युक्त सामाजिक सिद्धांत को देखते हुए, हम आंध्र प्रदेश राज्य को, हमारे द्वारा तैयार की गई पद्धति का अनुसरण करने के लिए निदेश देते हैं।

171. उपर्युक्त विवेचन को देखते हुए, हम प्रश्न सं॰3 पर विचार करना या उसका उत्तर देना आवश्यक नहीं समझते हैं। हमारी राय में, उक्त प्रश्न पर गहराई से विचार-विमर्श किए जाने की आवश्यकता और इस प्रक्रम पर, उस पर किसी प्रकार की राय का व्यक्त किया जाना वस्तुतः आवश्यक नहीं है।

भाग 4

आंध्र प्रदेश शिक्षा संसथाएं (प्रवेश का विनियमन और कैपिटेशन फीस का प्रतिषेध) अधिनियम, 1983 की विधिमान्यता

172. 1992 के आंध्र प्रदेश संशोधन अधिनियम सं॰ 12 द्वारा जोड़ी गई पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 3-क इस प्रकार हैः—

> *"धारा 3 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु ऐसे नियमों के जो इस संबंध में बनाए जाएं और आंध्र प्रदेश शिक्षा संस्थाएं (प्रवेश का विनियमन) आदेश, 1974 के अध्यधीन रहते हुए, किसी गैर-सहायता प्राप्त प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालय, चिकित्सा महाविद्यालय, दंत महाविद्यालय और गैर-सहायता प्राप्त शिक्षा-संस्थाओं के ऐसे अन्य वर्ग के प्रबंधतंत्र के लिए, जिसे सरकार द्वारा इस संबंध में अधिसूचित किया जाए, ऐसे अभ्यर्थियों, से, जिन्होंने धारा 3 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट यथास्थिति, सामान्य प्रवेश परीक्षा या अर्हक परीक्षा में अर्हता प्राप्त की है, स्थानों की कुल संख्या के 1/2 भाग की सीमा तक ऐसे महाविद्यालयों या शिक्षा-संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश देना विधिपूर्ण होगा; और ऐसा करते समय ऐसे परीक्षण या परीक्षा में उन्हें दिए गए क्रम का विचार नहीं किया जाएगा। तथा धारा 5 की कोई बात ऐसे प्रवेशों को लागू नहीं होगी।"

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "Notwithstanding anything contained in Section 3, but subject to such rules as may be made in this behalf and the Andhra Pradesh Educational Institutions (Regulation of admission) Order, 1974, it shall be lawful for the management of any unaided private engineering college, medical college, dental college and such other class of unaided educational institutions as may be notified by the Government in this behalf to admit students into such colleges or educational institutions to the extent of one half of the total number of seats from among those who have qualified in the common entrance test or in the qualifying examination, as the case may be referred to in sub-section (i) of Section 3 irrespective of the ranking assigned to them in such test or examination and nothing contained in Section 5 shall apply to such admissions."

आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ ने इस उपबंध को इस आधार पर कि उससे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है, और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 12-क के विरुद्ध होने के आधार पर भी विखण्डित कर दिया है। उक्त विनिश्चय की शुद्धता को ही हमारे समक्ष चुनौती दी गई है। (देखें: **क्रांति संग्राम परिषद्** बनाम **श्री एन॰ जे॰ रेड्डी**[1] वाले मामले में किया गया विनिश्चय।)

173. वस्तुतः यह धारा अधिनियम के अन्य उपबंधों के अपवाद के रूप में है। उसमें यह कहा गया है कि धारा 3 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो इस संबंध में सरकार द्वारा विरचित किए जाएं, उसमें वर्णित प्रकार की प्राइवेट शिक्षा-संस्थाएं छात्रों को, ऐसे अभ्यर्थियों में से आधे स्थानों की संख्या तक प्रवेश देने के लिए हकदार होंगी, जिन्होंने यथास्थिति सामान्य प्रवेश परीक्षा या अर्हक परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर ली हो। इस कथन की दो महत्वपूर्ण बातें हैं, अर्थात् (क) ऐसे छात्रों का प्रवेश इस बात पर विचार किए बिना हो सकता था कि उन्हें यथास्थिति, सामान्य प्रवेश परीक्षा या अन्य अर्हक परीक्षा में कौन-सा स्थान प्राप्त हुआ है; (2) यह बात स्पष्ट की गई है कि धारा 5 की कोई भी बात ऐसे प्रवेशों को लागू नहीं होगी। यहां यह स्मरण कराना उचित होगा कि धारा 3 में यह उपबंध किया गया है कि सभी प्रवर्गों में प्रवेश पूर्णतः योग्यता के अनुसार किए जाने हैं। उक्त धारा का समग्र रूप से परिशीलन करने पर निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं:—

(क) प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं को उतनी रकम प्रभारित करने का अधिकार प्राप्त है, जितनी वे प्रवेश हेतु प्रभारित कर सकते हों। यह संस्था और प्रवेश चाहने वाले छात्र के बीच सौदेबाजी का विषय है।

(ख) प्रवेश, संदाय करने वाले छात्रों की परस्पर योग्यता के प्रतिनिर्देश किए बिना किया जा सकता है। संस्था ऐसी विचारणाओं के आधार पर, जैसी वह ठीक समझे, आवेदकों में से अभ्यर्थियों को चयन करने के लिए हकदार है।

(ग) धारा 5, जिसमें किसी शिक्षा-संस्था द्वारा कैपिटेशन फीस का संग्रहण प्रतिषेध किया गया है, ऐसे प्रवेशों को अभिव्यक्त रूप से, लागू नहीं होगी। ऐसा निष्प्रयोजन (प्रयोजन के बिना) नहीं है। उसका प्रयोजन संस्थाओं को उतनी रकम प्रभारित करने के लिए अनुज्ञात किया गया है, जितनी वे विहित ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) के संग्रहण के अतिरिक्त प्रभारित कर सकती हैं।

174. हम इसमें इससे पूर्व यह अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं का शैक्षणिक कार्यकलाप राज्य के मुख्य प्रयास का पूरक प्रयास है और जो चीज मुख्य कार्यकलाप को लागू होती है, वह पूरक कार्यकलाप को भी उसी प्रकार लागू होती है। यदि संविधान का अनुच्छेद

[1](1992) 3 ए.एल.टी. 99.

14 राज्य संस्थाओं को लागू होता है—और निस्संदेह वह लागू होता है—और उन्हें योग्यता के आधार पर और केवल योग्यता के आधार पर ही (निस्संदेह अनुज्ञेय सीमाओं के अधीन रहते हुए—और यहां भी परस्पर-योग्यता के सिद्धात का अनुसरण किया जाना है) छात्रों को प्रवेश देने के लिए बाध्य करता है तो अनुच्छेद 14 की उपयोग्यता (लागू होना) को पूरक प्रयास/कार्यकलाप से अपवर्जित नहीं किया जा सकता है। अतः राज्य विधानमण्डल को यह कहने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है कि प्राइवेट शिक्षा-संस्था, योग्यता का विचार किए बिना, अपनी पसंद के छात्रों को प्रवेश देने के लिए हकदार होगी या वह उतनी रक़म प्रभारित करने के लिए हकदार है, जितनी वह कर सकती है; जिसका अर्थ यह होगा कि उसे शोषण करने की खुली छूट प्राप्त है, और अधिक विशेष रूप से इसका अर्थ शिक्षा का वाणिज्यीकरण करना होगा, जो विधि में अमुज्ञेय नहीं है। ऐसी किसी सांविधानिक बाध्यता से ऐसी उन्मुक्ति का कोई दावा नहीं किया जा सकता है और न राज्य विधानमण्डल द्वारा ऐसे उन्मुक्ति दी ही जा सकती है। एकमात्र इसी आधार पर उक्त दावा विखण्डित किए जाने योग्य है।

इन परिस्थितियों में, हमारे लिए इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या उक्त धारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 12-क के विरुद्ध होने के कारण अविधिमान्य है। यह कहना पर्याप्त है कि उक्त धारा ऊपर दिए गए कारणों से अनुच्छेद 14 का भी उल्लंघन करती है और तद्नुसार उसे अविधिमान्य घोषित किया ही जाना चाहिए। हम इस बात से सहमत हैं कि धारा 3-क के उल्लंघनकारी भागों को उक्त धारा के मुख्य भाग से अलग नहीं किया जा सकता और इसलिए संपूर्ण धारा विखंडित किए जाने योग्य है।

यह बात हमारी जानकारी में नहीं लाई गई है कि अन्य तीन राज्य, अर्थात् कर्नाटक, तमिलनाडु और महाराष्ट्र, की अधिनियमितियों में भी इसी प्रकार के उल्लंघनकारी उपबंध हैं। वस्तुतः, उनमें ऐसे उपबंध नहीं हैं। उनके उपबंधों में से किसी भी उपबंध में यह नहीं कहा गया है कि प्राइवेट शिक्षा-संस्था का प्रबंधतंत्र, "ऐसे परीक्षण (प्रवेश-परीक्षा) या परीक्षा में उन्हें दिए गए क्रम का विचार किए बिना" 'संदाय-स्थानों' पर छात्रों को प्रवेश दे सकता है। उनका यह कहना तो बिल्कुल भी नहीं है कि ऐसे प्रवेशों को कैपिटेशन फीस प्रतिषिद्ध करने वाला उपबंध लागू नहीं है। यह सच है कि उनमें यह बात अभिव्यक्त रूप से नहीं कही गई है कि ऐसे प्रवेश योग्यता के आधार पर किए जाएंगे, किंतु हमारे मतानुसार, यह बात उनमें विवक्षित है। यदि तद्धीन जारी की गई अधिसूचनाओं या आदेशों में अन्यथा उपबंध किया गया है, अभिव्यक्त रूप से या विवक्षा द्वारा, तो वे भी उपर्युक्त कारणों से उसी प्रकार अविधिमान्य होंगी।

175. अब जबकि धारा 3-क को विखण्डित कर दिया गया है, तो यह प्रश्न उद्भूत होता है कि उन छात्रों का क्या होगा जिन्हें इस राज्य में प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालयों द्वारा उपलब्ध स्थानों के 50 प्रतिशत की सीमा तक स्वविवेकानुसार प्रवेश दिया गया था। उच्च न्यायालय ने इन प्रवेशों को अविधिमान्य घोषित किया है किंतु वे इस न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए रोक आदेश के आधार पर अब भी अध्ययन जारी रखे हुए हैं। एक तथ्य, जो इस संबंध में ध्यान में अवश्य ही रखा जाना चाहिए, यह है कि पूर्व वर्ष तक, आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा इन प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालयों को, उन्हें आबंटित सभी छात्रों से उच्चतर फीस संगृहीत करने की अनुज्ञा देती रही है (हमें यह बताया गया है कि संगृहीत किए जाने के लिए अनुज्ञात फीस गत वर्ष के लिए प्रति वर्ष दस हजार रुपए थी)। निस्संदेह, सभी उपलब्ध स्थान सामान्य प्रवेश परीक्षा के आयोजक द्वारा आबंटित छात्रों द्वारा भरे गए थे; किसी भी छात्र को इन महाविद्यालयों द्वारा स्वयं अपनी ओर से प्रवेश नहीं दिया जा सका। अब, चालू वर्ष के लिए, इन महाविद्यालयों ने स्वविवेकानुसार पचास प्रतिशत छात्रों को प्रवेश दिया—जिसका अनिवार्यतः यह अर्थ हुआ कि उन्होंने अपने निजी कारणों से कैपिटेशन फीस का संग्रहण किया और/या मनमाने ढंग से प्रवेश दिया। इसके साथ ही, ये महाविद्यालय आयोजक द्वारा आबंटित छात्रों से और स्वयं उनके द्वारा प्रवेश दिए गए छात्रों से भी वही फीस (प्रति वर्ष दस हजार रुपए) संगृहीत करते रहे हैं। इस प्रकार उन्होंने दोहरा फायदा उठाया है।

176. इन छात्रों के विद्वान् काउंसेल श्री शान्तिभूषण ने यह निवेदन किया है कि "उनके मुवक्किल निर्दोष हैं और उन्होंने इस सद्भाविक विश्वास के अधीन प्रवेश प्राप्त किया था कि उनके प्रवेश समुचित रूप से किए जा रहे थे। वे तभी से अध्ययन कर रहे हैं और कुछ मास पश्चात् उनका शैक्षणिक वर्ष समाप्त हो जाएगा। उनका कहना है कि ऐसा हो सकता है कि प्रबंधतंत्र अनियमितता के दोषी हों; किन्तु जहां तक छात्रों का संबंध है, उन्होंने विधि के विपरीत ऐसी कोई बात नहीं की है, जिससे कि वे उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए दंड के योग्य सिद्ध हों।

177. जैसा कि उच्च न्यायालय, द्वारा उपदर्शित किया गया है, यह सच है कि ये प्रवेश जल्दबाजी में किए गए थे किंतु यह तथ्य फिर भी शेष रहता है कि वे गत लगभग चार मास से इस न्यायालय के आदेशों के अधीन उक्त पाठ्यक्रम में अध्ययन कर रहे हैं। जैसा कि इसमें इससे पूर्व बताया जा चुका है, अनेक परिस्थितियों के एक साथ मिल जाने, अर्थात् धारा 3-क के अधिनियमन, आयोजक द्वारा केवल पचास प्रतिशत की सीमा तक छात्रों के आबंटन और सरकार की आयोजक की गलतफहमी को तुरन्त दूर करने में असफलता, के कारण वर्तमान स्थिति पैदा हुई है। इन परिस्थितियों में, हमारा यह समाधान नहीं हुआ है कि इस प्रक्रम पर इन छात्रों को बाहर कर दिया जाना चाहिए। हो सकता है कि यह परिणाम दुर्भाग्यपूर्ण है किंतु हमें सभी सुसंगत परिस्थितियों को देखना है। इसके साथ ही हमारी यह राय है कि इन प्राइवेट इंजीनियरी महाविद्यालयों के प्रबंधतंत्रों को ऊपर निर्दिष्ट दोहरा फायदा नहीं उठाने दिया जाना चाहिए। चूंकि उन्होंने पचास प्रतिशत की सीमा तक अपनी पसंद के छात्रों को प्रवेश दिया है और चूंकि इस बात का अन्वेषण या सत्यापन करना सम्भव नहीं है कि ये प्रवेश किस प्रतिफल के लिए किए गए थे, अतः हम यह निदेश देना उचित समझते हैं कि इन महाविद्यालयों को 50 प्रतिशत 'मुक्त छात्रों' से केवल वही फीस प्रभारित करनी चाहिए, जो

संबंधित विश्वविद्यालयों के इंजीनियरी महाविद्यालयों में समान पाठ्यक्रमों के लिए प्रभारित की जाती है।

अपने पाठ्यक्रम के शेष वर्षों के लिए, ये महाविद्यालय केवल उक्त फीस संगृहीत करेंगे, जिसे सुविधा के लिए 'सरकारी फीस' का नाम दिया जा सकता है। शेष रकम, जिसे वे इस वर्ष के दौरान पहले ही संगृहीत कर चुके हैं, आज से 6 सप्ताह के अंदर सरकारी खाते में विप्रेषित (जमा) की जाएगी, जिसके व्यतिक्रम में इन महाविद्यालयों को दी गई मान्यता और सम्बनधन प्रत्याहृत माना जाएगा। दूसरे शब्दों में, जो कोई भी महाविद्यालय उपर्युक्त निदेश का अनुपालन करने में असफल रहता है, वह आज से 6 मास की समाप्ति पर असम्बद्ध हो जाएगा और समुचित प्राधिकारी/प्राधिकरण द्वारा उसे प्रदान की गई मान्यता भी, यदि कोई हो, प्रत्याहृत मानी जाएगी।

178. जहां तक 1992 की रिट याचिका सं॰ 855 का संबंध है, उसमें महाराष्ट्र से बाहर के छात्रों के मामले में दोहरी ट्यूशन फीस (शिक्षण-शुल्क) प्रभारित करने की शिकायत की गई है। **डी॰पी॰जोशी** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के संविधान पीठ के विनिश्चय द्वारा याचियों के विरुद्ध मामला निर्णीत (समाप्त) हो गया है। तद्नुसार यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

179. अब हम महात्मा गांधी मिशन द्वारा फाइल की गई सिविल अपील सं॰ 3573/1992 पर आते हैं। मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हम आक्षेपित आदेश के प्रवर्तन पर रोक लगाना उचित समझते हैं, जो केवल अंतर्वर्ती आदेश है, और जो केवल तब तक प्रभावी है, जब तक कि मुख्य रिट याचिका का निपटारा नहीं कर दिया जाता है। उक्त रिट याचिका का विधि के अनुसार और इस निर्णय के प्रकाश में निपटारा किया जा सकता है।

भाग-5

180. उपर्युक्त कारणों से रिट याचिकाओं और सिविल अपीलों का, रिट याचिका (सिविल) सं॰ 855/1992, सिविल अपील सं॰ 3573/1992, और विशेष अनुमति याचिका सं॰ 13913/1992 और 13940/92 से उद्भूत होने वाली सिविल अपीलों को छोड़कर, निम्नलिखित रीति में निपटारा किया जाता है:—

(1) इस देश के नागरिकों को शिक्षा का मूल अधिकार प्राप्त है। उक्त अधिकार अनुच्छेद 21 से उद्भूत होता है। तथापि यह अधिकार आत्यंतिक अधिकार नहीं है। उसकी अन्तर्वस्तु और प्राचलों को अनुच्छेद 45 और 41 के प्रकाश में अवधारित किया जाना है। दूसरे शब्दों में, इस देश के प्रत्येक बालक/नागरिक को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क शिक्षा का अधिकार प्राप्त है। तत्पश्चात् शिक्षा का उसका अधिकार राज्य की आर्थिक सामर्थ्य (क्षमता) और विकास की परिसीमाओं के अध्यधीन है।

(2) संविधान के अनुच्छेद 41, 45 और 46 द्वारा सर्जित बाध्यताओं का राज्य द्वारा स्वयं अपनी ओर से संस्थाएं स्थापित करके या प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं की सहायता करके, मान्यता प्रदान करके और/या सम्बन्धन प्रदान करके निर्वहन किया जा सकता है। जहां प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं को सहायता नहीं दी जाती है और केवल मान्यता या सम्बन्धन ही प्रदान किया जाता है; वहां इस बात पर जोर नहीं दिया जा सकेगा कि प्राइवेट शिक्षा-संस्था केवल वही फीस प्रभारित करेगी, जो सरकारी संस्थाओं में समान पाठ्यक्रमों के लिए प्रभारित की जाती है। प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं को इस संबंध में नियत अधिकतम सीमा से अनधिक, उच्चतर फीस प्रभारित करनी होती है और वे ऐसा करने के लिए हकदार भी हैं। इन प्राइवेट शिक्षा-संस्थाओं में छात्रों के प्रवेश और फीस प्रभारित करने के अधिकार को इस निर्णय के भाग 3 में यथा उपवर्णित, इसमें तैयार की गई स्कीम लागू होगी।

(3) इस देश के नागरिक को शिक्षा-संस्था स्थापित करने का अधिकार प्राप्त हो सकता है किंतु किसी भी नागरिक, व्यक्ति या संस्था को राज्य की ओर से मान्यता या सम्बन्धन या सहायतानुदान का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है मूल अधिकार का तो कोई प्रश्न ही नहीं। राज्य द्वारा मान्यता और/या सम्बन्धन केवल इस निर्णय के भाग 3 में अंतर्विष्ट स्कीम में वर्णित शर्तों के अध्यधीन और उनके अनुसार ही दिया जाएगा। कोई भी विश्वविद्यालय या प्राधिकारी/प्राधिकरण उक्त स्कीम के अनुसार ही मान्यता या सम्बन्धन प्रदान करने के लिए सक्षम होगा, अन्यथा नहीं। उक्त स्कीम, ऐसी अन्य शर्तों और निबंधनों के अतिरिक्त, जिन्हें ऐसी सरकार, विश्वविद्यालय या अन्य प्राधिकारी/प्राधिकरण अधिरोपित करना चाहे, यथास्थिति, ऐसी मान्यता या सम्बन्धन की शर्त गठित करेगी।

तथापि, सहायता प्राप्त करने वाली शिक्षा-संस्थाएं ऐसे सभी निबंधनों और शर्तों के अधीन होंगी, जिन्हें सहायता देने वाला प्राधिकारी/प्राधिकरण सामान्य जनता के हित में अधिरोपित करे।

(4) आंध्र प्रदेश शिक्षा-संस्थाएं (प्रवेश का विनियमन और कैपिटेशन फीस का प्रतिषेध) अधिनियम, 1983 की धारा 3-क से अनुच्छेद 14 में सन्निविष्ट समता खण्ड का उल्लंघन होता है और तद्नुसार उसे शून्य घोषित किया जाता है। इस संबंध में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की घोषणा की पुष्टि की जाती है।

(5) रिट याचिका सं॰ 855/1992 खारिज की जाती है।

1992 की सिविल अपील सं॰ 3573 मंजूर की जाती है और आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। मुख्य रिट याचिका का, जिसमें उक्त अंतरिम आदेश पारित किया गया है, अब विधि के अनुसार निपटारा किया जा सकता है।

(6) विशेष अनुमति याचिका सं॰ 13913/1992 और 13940/1992 से उद्भूत होने वाली सिविल अपीलें (जो उन छात्रों द्वारा फाइल की गई थीं, जिन्हें सामान्य प्रवेश परीक्षा के

---

[1] [1955] 1 एस॰ सी॰ आर॰ 1215=ए॰ आई॰ आर॰ 1955 एस॰ सी॰ 334.

आयोजक से आबंटन के बिना, आंध्र प्रदेश में प्राइवेट गैर-सहायता प्राप्त इंजीनियरी महाविद्यालयों द्वारा प्रवेश दिया गया था) मंजूर की जाती हैं। ऐसे छात्रों को जिन्हें शैक्षणिक वर्ष 1992-93 के लिए प्रवेश दिया गया था, उक्त पाठ्यक्रम में अध्ययन जारी रखने के लिए अनुज्ञात किया जाए किंतु प्रबंधतंत्र इसमें इससे पूर्व पैरा 77 में दिए गए निदेशों का अनुपालन करेगा।

याचिकाओं और अपीलों का निपटारा किया गया।

न०

[1995] 1 उम० नि० प० 270

रमाकांत त्रिपाठी

बनाम

भारत संघ

5 फरवरी, 1993

मु० न्यायमूर्ति एल० एम० शर्मा, न्यायमूर्ति जे० एस० मोहन और न्यायमूर्ति एस० पी० भरूचा

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951—धारा 52 [लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अध्यादेश, 1992 (1992 का अध्यादेश सं० 1) द्वारा यथा संशोधित]—भारत का संविधान, अनुच्छेद 14—अभ्यर्थी की मृत्यु हो जाना—अभ्यर्थी की मृत्यु हो जाने पर निर्वाचन का प्रत्यादिष्ट किया जाना—उक्त संशोधन, जो किसी मान्यता प्राप्त दल के अभ्यर्थी की मृत्यु होने पर ही निर्वाचन के प्रत्यादिष्ट किए जाने की अनुमति देकर उक्त अधिनियम की धारा 52 के क्षेत्र को संकुचित करता है, न तो मनमाना है और न ही अविधिमान्य।

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951—धारा 30 (घ) [लोक प्रतिनिधित्व (द्वितीय संशोधन) अध्यादेश, 1992 (1992 का अध्यादेश सं० 2) द्वारा तथा संशोधित]—भारत का संविधान, अनुच्छेद 14—मतदान की तारीख का नियत किया जाना—संशोधन से पूर्व इस कालावधि का अभ्यर्थिता के वापस लिए जाने के बाद 20 दिन होना—संशोधन द्वारा इसे 14 दिन विहित किया जाना—उक्त धारा में 20 दिन की कालावधि को 14 दिन की कालावधि से प्रतिस्थापित करने वाला संशोधन न तो मनमाना है और न ही अविधिमान्य।

निर्वाचन अर्जीदार ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन आवेदन फाइल करके लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 52 को संशोधित करने वाले 1992 के अध्यादेश सं० 1 को तथा उक्त अधिनियम की धारा 30(घ) को संशोधित करने वाले अध्यादेश सं० 2 को चुनौती दी। अर्जीदार के विद्वान् काउंसेल ने पुरजोर दलील दी कि आक्षेपित संशोधन ने किसी मान्यताप्राप्त राजनीतिक दल द्वारा खड़े किए गए किसी अभ्यर्थी तथा किसी अन्य अभ्यर्थी के बीच जो प्रभेद किया है वह कृत्रिम, निर्वाचन विधि की भावना से असंगत और विभेदमूलक है। जहां तक द्वितीय अध्यादेश का संबंध है उसने यह आक्षेप किया कि संशोधन द्वारा प्रतिस्थापित की गई 14 दिन की कालावधि अत्यल्प है तथा 20 दिनों की कालावधि का कम किया जाना मनमाना कार्य है जो उस बृहत्तर हित को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है जिसके लिए निर्वाचन आयोजित किए जाते हैं। रिट आवेदन को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—उक्त संशोधन से पूर्व यथा विद्यमान धारा 52 के उपबंध इन दोनों आकस्मिक परिस्थितियों में निर्वाचन के प्रत्यादिष्ट किए जाने की व्यवस्था करते थे—(i) यदि वह अभ्यर्थी जिसका नाम निर्देशन धारा 30 के अधीन संवीक्षा पर विधिमान्य ठहराया गया हो और जिसने धारा 37 के अधीन अपनी अभ्यर्थिता वापस न ली हो, मर गया हो और उसकी मृत्यु की बाबत रिपोर्ट निर्वाचन लड़ने वाले अभ्यर्थियों की सूची का प्रकाशन धारा 38 के अधीन होने से पूर्व मिल गई हो, (ii) यदि निर्वाचन लड़ने वाला अभ्यर्थी मर गया हो और उसकी मृत्यु की बाबत रिपोर्ट मतदान के प्रारंभ होने से पूर्व मिल गई हो। निर्वाचन को प्रत्यादिष्ट करने पर रिटर्निंग अधिकारी उक्त तथ्य की सूचना निर्वाचन आयोग को देगा और उस निर्वाचन के बारे में सभी कार्यवाहियां सब बातों में नए सिरे से ऐसे प्रारंभ की जाएंगी मानो वे किसी नए निर्वाचन के लिए हों। उक्त उपबंधों को केवल ऐसे मामलों तक सीमित करके, जिनमें किसी मान्यताप्राप्त राजनीतिक दल का कोई अभ्यर्थी मर गया हो, निर्वाचन के प्रत्यादिष्ट किए जाने को लागू होने वाले उपबंधों का क्षेत्र प्रथम अध्यादेश द्वारा संकुचित कर दिया गया है। (पैरा 2)

मत देने का अधिकार अथवा निर्वाचन के लिए किसी अभ्यर्थी के रूप में खड़े होने का अधिकार न तो कोई मूल अधिकार है और न ही कोई सिविल अधिकार। (पैरा 8)

यह बात महसूस की गई है कि किसी प्रबल रूप से संदित प्रजातांत्रिक सरकार के लिए यह आवश्यक है कि उसके पास संसद् में बहुमत तथा अल्पमत दोनों हों जिससे कि संविवादग्रस्त मुद्दों के संबंध में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण सामने आ सकें और उनके संबंध में संसद् के सदन में वाद-विवाद किया जा सके। यह उद्देश्य दलीय प्रणाली अपनाकर सर्वोत्तम रूप से प्राप्त किया जा सकता है, जिससे कि राष्ट्र की समस्याओं पर विचार-विमर्श करके उन्हें रचनात्मक भावना से सुलझाया जा सके। दलीय प्रणाली का उन्मूलन करना अथवा उसकी अवज्ञा करना किसी सुव्यवस्थित विवेचन के स्थान पर सामूहिक असंगत टिप्पणियां करने की अनुमति देना होगा। सर आइवर जेनिंग्स ने अपनी पुस्तक कैबिनेट गवर्नमेंट (द्वितीय संस्करण) के पृष्ठ 16 पर बहुत सटीक टिप्पणी की है "इस प्रकार प्रजातांत्रिक प्रणाली के कार्यकरण के लिए दलीय विग्रहकर्म (पार्टी-वार केयर) अनिवार्य है। अतः यह सुझाव देना निरर्थक होगा कि सच्चा गणतांत्रिक समाज स्थापित करने के लिए दलीय प्रणाली की अवज्ञा करनी चाहिए। हमारे संविधान ने इस प्रणाली का महत्व स्पष्ट रूप से पहचाना है जिस पर उसमें दसवीं अनुसूची जोड़कर और भी बल दिया गया है। निर्वाचन प्रतीक (आरक्षण और आबंटन) आदेश भी इसी दिशा में उठाया गया एक कदम है। (पैरा 9)

इस दलील में भी कोई गुणवत्ता नहीं है कि राजनीतिक दलों